उत्तरसीताचरित महाकाव्य का काव्यशास्त्रीय अध्ययन

Poetry Study of Uttarsitacharit Epic

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
की
पीएच. डी. (संस्कृत) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–सारांश

कला संकाय
संस्कृत

शोधार्थी
जयनन्दिनी सिंह

शोध-निर्देशक
डॉ. अल्का बागला
संस्कृत विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड़ (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

वर्ष 2018

प्रमाण–पत्र

मुझे यह प्रमाणित करते हुए प्रसन्नता है। कि शोध प्रबन्ध उत्तरसीताचरितम् महाकाव्य का काव्यशास्त्रीय अध्ययन शोधार्थी जयनन्दनी सिंह ने कोटा विश्वविद्यालय कोटा के पीएच.डी. के नियमों के अनुसार निम्नलिखित आवश्यकताओं के साथ पूर्ण किया है–

1. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के नियमानुसार कोर्स वर्क किया हैं।
2. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के 200 दिन के आवासीय आवश्यकता नियम को पूरा किया है।
3. शोधार्थी ने नियमित रूप से अपना कार्य प्रगति प्रतिवेदन दिया है।
4. शोधार्थी ने विभाग एवं संस्था प्रधान के समक्ष अपना शोध कार्य प्रस्तुत किया है।
5. शोधार्थी का बताई गई शोध पत्रिका में शोध पत्र का प्रकाशन हुआ है।

मैं इस शोध प्रबन्ध को कोटा विश्वविद्यालय कोटा के पीएच.डी. (संस्कृत विभाग) की उपाधि हेतु मूल्यांकनार्थ प्रस्तुत करने की अनुमति देती हूँ।

दिनांक.....

डॉ. अल्का बांगला

(शोध पर्यवेक्षक)

शोध सार

क्रान्तदर्शी कवि की नवनवोन्मेष शालिनी प्रज्ञा स्वर्णावरण से आवृत मिथ्या के भीतर अन्तः सत्ता का साक्षात्कार करती है तो कवि सन्वेदना अजस्त्र काव्यधारा के रूप में प्रवाहित हो उठती है चिन्तन एवं काव्य के सहज प्रस्फुटन की इस प्रक्रिया में कवि मानव हृदय से एकाकार होकर उसकी संवेदना को महसूस करता है तथा उसके हृदय में अन्तास्थल तक जाकर उसकी पीड़ाओं को समाधान की दिशा देकर जीवन को आनन्दरूपी उत्सव से परिपूर्ण कर देता है और निश्चित रूप से काव्य का यही लक्ष्य है। कवि की हृदयानुभूति की परस्पर पूर्णता प्रदान करने वाले शब्दार्थ रूप में सम्यक अभिव्यक्ति पूरे समाज को, उसकी पीड़ा को उसके मन को विचारों को संवेदनाओं को भावों को प्रतिबिम्बित करती है एवं उनको समाधान की एक दिशा प्रदान करती हे।

कवित्व प्रतिभा के धनी महामहोपाध्याय श्री रेखा प्रसाद द्विवेदी सनातन द्वारा 19वीं शताब्दी में प्रणीत उत्तरसीता चरितं 10 सर्गो का महाकाव्य है। सीता का चरित्र सहस्त्राब्दियों से देश, काल तथा परिस्थित्यानुसार साहित्य सर्जकों को नित नूतन उद्भावनाओं द्वारा उन्मीलित करता रहा है। साहित्य मर्मज्ञों सामाजिकों मनीषियों तथा दर्शनिकों द्वारा अधीत व अध्यापित किया जाता रहा है। आज सतत् बढ़ रही अपसंस्कृति के परिणाम स्वरूप हमारा समाज भोगवाद तथा भौतिकवाद के दलदल में धंसता जा रहा है। ऐसे संक्रमित होते हुए काल में पौनः पुण्येन अनुशीलन से ही समाज एवं राष्ट्र का कल्याण होगा और हमारी सभ्यता, संस्कृति, संस्कार, परम्परा, धर्म, दर्शन और जीवन मूल्य संरक्षित हो सकेगें। चरित्र पर ही भारतीय राष्ट्र की नींव टिकी हुई है। इसी दृष्टि को लेकर महाकवि ने इस ग्रन्थ का प्रणायन किया है।

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में काव्य, नाट्य, कथा एवं समीक्षाग्रन्थों को अपनी पारखी दृष्टि व नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा अर्थगार्म्भीय व पदलालित्य से उत्कृष्टता के शिखर पर पहुंचाने वाले महामहोपाध्याय रेवाप्रसाद द्विवेदी के महाकाव्य को सुधी पाठकों के समक्ष रखना ही मेरा मुख्य उद्देश्य है। इसी दृष्टि को लेकर प्रस्तुत महाकाव्य का काव्यशास्त्रीय अध्ययन विषय के प्रथम अध्याय में महाकवि के

व्यक्तित्व एवं कर्तव्य का निरूपण किया है। द्वितीय अध्याय में काव्यशास्त्रीय परम्परा में अधतन उपलब्ध काव्यशास्त्रों का कालानुक्रमिक विवरण प्रस्तुत किया है। तृतीय अध्याय में काव्यशास्त्रीय परम्परा के अनुसार उत्तरसीताचरितम् महाकाव्य में पात्रों का विवेचन किया है। जिसके अन्तर्गत महाकाव्यों की पात्रसूची नायिका का काव्यशास्त्रीय स्वरूप उत्तरसीताचरित की नायिका का विवरण फिर नायक का काव्यशास्त्रीय स्वरूप व अन्य पात्रों का परिचय। चतुर्थ अध्याय में रस को निरूपित किया है महाकावि ने मुख्य रस के रूप में वीर व करूण रस को स्वीकारा है तथा अन्यरसों का वर्णन सामान्य है। पंचम अध्याय में महाकाव्य का शिल्प विमर्श कया गया है जिसके अन्तर्गत शीतिविवेचन, गुणविवेचन अलंकार विवेचन, छन्द विवेचन और इन सबका उत्तरसीताचरित में प्रयोग का वर्णन किया है। षष्ठ अध्याय में महाकवि की भाषाशैली के अर्न्तगत सुक्ति प्रयोग, मुहावरा प्रयोग लोकोक्ति प्रयोग नूतन शब्दों का प्रयोग तथा अन्य कवियों का द्विवेदी जी की भाषाशैली पर प्रभाव का वर्णन किया है। सप्तम अध्याय में समसामयिक दृष्टि से मूल्यांकन तथा उपसंहार के सप्तम अध्याय का समापन किया हे। इस महाकाव्य में निबद्ध विचार दर्शमिक है, अभिव्यक्ति कवित्वमयी भाषातेजोमयी तथा मथानक प्रवाहमय है।

घोषणा– पत्र (शोधार्थी)

मै घोषणा करती हूँ कि शोध–प्रबन्ध ''उत्तरसीताचरितम् महाकाव्य का काव्यशास्त्रिय अध्ययन'' मेरे द्वारा प्रस्तुत किया गया है वह पीएच.डी. (संस्कृत) की उपाधि के लिए आवश्यक है मैने यह शोध कार्य डॉ. अल्का बागला व्याख्याता संस्कृत विभाग राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड़ के निदेशन में पूर्ण किया है। और जहां दूसरे शब्दों का प्रयोग किया गया है। वह मेरे द्वारा विभिन्न मान्य स्त्रोतो से लिये गये हैं। अपरिहार्य स्थिति में ली गई ऐसी हर सामग्री का यथास्थान सन्दर्भ एवं आभार व्यक्त कर दिया गया है जो कार्य इस शोध प्रबन्ध में प्रस्तुत किया गया है।

मै इसकी घोषणा करती हूँ कि मैने विश्वविद्यालय के सभी अकादमिक नियमों का निष्ठा एवं ईमानदारीसे पालन किया है तथा किसी तथ्य को गलत नहीं प्रस्तुत किया है। मै समझती हूँ कि किसी भी नियम के उल्लघन पर मेरे खिलाफ प्रशासनिक कार्यवाही की जा सकती है और मेरे खिलाफ जुर्माना भी लगाया जा सकता है। यदि मैने किसी स्त्रोत से बिना उसका नाम दर्शाये या जिस स्त्रोत से अनुमति की आवश्यकता हो, बिना अनुमति के लिया हो।

दिनांक :

जयनन्दिनी सिंह
(शोधार्थी)

प्रमाणित किया जाता है कि शोधार्थी जयनन्दिनी सिंह द्वारा उपर्युक्त सभी सूचनायें मेरी जानकारी के अनुसार सही है।

दिनांकः

डॉ. अल्का बांगला
(शोध पर्यवेक्षक)

प्राक्कथन

सनातन कवि रेवाप्रसाद द्विवेदी जी प्रणीत यह 10 सर्गों का महाकाव्य है। क्रमशः 1968, 75, 90 में इसका प्रकाशन कालिदास संस्थान वाराणसी से हुआ है। महाकवि का नाम नवीन प्रतिमानों के संस्थापक आचार्यों की परम्परा में अग्रणी है। एतदर्थ प्रकृत महाकाव्य भी नवप्रस्थापना परम्परा का प्रमुख महाकाव्य है। रामायण उत्तरकाण्ड की कथा पर आधृत यह महाकाव्य सर्वथा मौलिक तथा नवीन आयामों को उन्मीलित करने वाला है। यह महाकाव्य आधुनिक नारीवादी युग के अनुरूप प्रणीत किया गया है। सीता का चरित्र सहस्त्रब्धियों से देश, काल तथा परिस्थित्यानसार साहित्य मर्मज्ञों को प्रोत्साहित करता रहा है। तो यह प्रश्न उठना तो स्वाभाविक ही है कि – सीता चरित्र ही क्यों ? यद्यपि इस विषय पर साहित्य सार्जकों द्वारा अत्यधिक लेखन कार्य किया गया हैं फिर राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय में अध्ययन के दौरान डॉ. वत्सला के उद्‌बोधन से अभिप्रेरणा पाकर मेरे अर्न्तमन में रचना धर्मिता की दिशा में कुछ सिसृक्षा जागृत हुई जिसके परिणामस्वरूप मैंने यह शोध प्रबन्ध लिखने का निर्णय लिया तदर्थ मैं उनके लिए ह्रदय से कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। मेरे लेखन कार्य में मेरी सुयोग्या विद्यानुरागिणी, तेजस्विनी शोध निर्देशिका डॉ. अल्का बागला ने स्वप्न को साकार रूप प्रदान किया।

शोध प्रबन्ध को परीक्षार्थ प्रस्तुत करने के इस शुभ लग्न में सभी उपदेशक व सहायक लोगों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। इसी क्रम में हाड़ौती के प्रतिष्ठित कवि तथा साहित्यकार पूर्व विभागाध्यक्ष के.बी. भारतीय जी के प्रति भी हार्दिक श्रृद्धा निवेदित करती हूं तदोपरान्त शोध का प्रारूप व विषय विस्तार को सुनिश्चित करने में डॉ. अशोक कँवर शेखावत जी ने मेरी जो सहायता की है उसके लिए उन्हें ह्रदय से धन्यवाद देती हूँ। इसके बाद विभाग के सभी गुरूजनों के प्रति भी अपना आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने परोक्ष व अपरोक्ष रूप से अपने सुझावों से मुझे लाभान्वित किया है।

आधुनिक युग में अभिनव प्रस्थापनों की प्रतिष्ठापना में मूर्धाभिषिक्त एवं मार्तण्ड की तरह प्रकाशमान सम्प्रति काशी में विराजमान श्री रेवाप्रसाद द्विवेदी के

व्यक्तित्व व कृतिव्य को उनके सुयोग्य व विद्वान पुत्र श्री सदाशिव द्विवेदी जी ने जो का.ही.वि.वि. वाराणसी, कला संकाय, संस्कृत विभाग के पद पर शोभायमान हैं, उन्होंने शोध प्रबन्ध से सम्बन्धि सामग्रियों को रजिस्टर्ड डाक से मेरे पास प्रेषित किया उनके लिए भी मैं ह्रदय से कृतज्ञ हूँ।

मैं अपने परमपूजनीय, आदरणीय, श्रद्धेय एवं सम्माननीय माता श्रीमती फूलकुमारी व पिता श्री ब्रम्हासिंह एवं श्वश्रु श्रीमती रामा देवी व श्वसुर श्री हरिबक्श सिंह के प्रति शिरसा प्रस्तुत हूँ। जिनके स्नेह व सतत् प्रोत्साहन के बिना यह कार्य कदापि पूर्ण न हो पाता अपने परिवार के स्नेहिल भाई–बहिन की सहायता भी मेरे लिए अमूल्य रही है मैं विशेष आदर के साथ अपने पति श्री गुलाब सिंह की सोत्साह सहायता का स्मरण करती हूँ। साथ ही अपने भाई विश्व प्रताप, सूर्य प्रताप, भावना, रत्नाकर, रोहिणी, त्रीवेणी के प्रति भी अपना धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ।

शोधकार्य में पुस्तकालय की अनिवार्यता अपरिहार्य है, इसलिए पुस्तकालय की पुस्तकों के प्रति भी चिरऋणी हूँ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के टंकणकर्ता श्री रईस बेग जी को धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने अल्पावधि में विशुद्ध टंकण कार्य सम्पन्न किया।

अन्त में विद्वानों के समक्ष शोध प्रबन्ध को प्रस्तुत करती हुई नम्र निवेदन है कि पर्याप्त प्रयास करने पर भी यदि अज्ञान, अनवधान, अनभिज्ञता के कारण इसमें कुछ त्रुटियाँ रह गई हो तो उन्हें क्षमा की दृष्टि से देखने का अनुगृह करेंगे। यह शोध प्रबन्ध काव्यशास्त्रीय परम्परा में शोधार्थियों के लिए सहायक व मार्क प्रशस्त करने वाला होगा।

प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय

रेवाप्रसाद द्विवेदी

(1) जीवनवृत्त :–

विश्वविश्रुत आधुनिक संस्कृत साहित्य के मूर्धाभिषिक्त मूर्धन्य महाकवि महामहोपाध्याय 'श्री रेवाप्रसाद द्विवेदी' जी का जन्म मध्य–प्रदेश में पुण्यसलिला नर्मदा जी के तट पर स्थित साँची के नादनेर ग्राम में 22.08.1935 में हुआ था। जो वर्तमान में 'नन्दनगर' है। आपके पिता स्व. पण्डित नर्मदा प्रसाद द्विवेदी व माता श्रीमती लक्ष्मी देवी का स्वर्गवास तभी हो गया था जब आप प चम् कक्ष्या के छात्र थे। तत्पश्चात् आपकी शिक्षा आपके मामा प. शालिग्राम जी परसाई के सान्निध्य में हुई। इसके बाद मध्यमा की परीक्षाएँ प्रथमश्रेणी में उत्तीर्ण कर आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत महाविद्यालय से शास्त्री एवं शास्त्राचार्य की परीक्षा प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान पाकर उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् आप वेद विज्ञान के अध्ययन के लिए जयपुर आये। पुनः काशी आकर 1959 में आपने एम.ए. की परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में प्रथमस्थान पाकर उत्तीर्ण की। शोध पत्र में नामा न के साथ ही आपको मध्यप्रदेश के दूधाधारी श्री वैष्णव– संस्कृत महाविद्यालय में व्याख्याता पद पर नियुक्त किया गया। इसके बाद 1970 में का हि.वि.वि. वाराणसी में साहित्य विषय के रीडर तथा साहित्य विभागाध्यक्ष के पद पर कार्यरत रहे। 1973 में आपको प्रोफेसर पद के लिए चुना गया। का.हि.वि.वि. में 18 वर्षों तक साहित्य विभाग के अध्यक्ष और तीन बार स ाय प्रमुख रहे। 1990 में सेवानिवृत्ति के बाद का हि.वि.वि. कार्यकारिणी समिति के सदस्य के रूप में 3 वर्ष तक कार्य किया। का.हि.वि.वि. कार्यकारिणी द्वारा आपको पुनः प्रोफेसर पद पर (1992–1995) नियुक्त किया गया। इसके अतिरिक्त आपको बाहर से भी प्रोफेसर पद के लिए आमंत्रित किया जाता रहा, किन्तु आप बाहर मिले प्रोफेसर पद पर नहीं गये। सेवानिवृत्ति के बाद विश्व विद्यालय अनुदान आयोग द्वारा 'अमेरीटस फैलो' नामक दुर्लभ पद पर दो वर्षों के

लिए आपको चुना गया। का.हि.वि.वि. द्वारा भी 1993 में 'अमरीटस प्रोफेसर' की सम्मानित' नियुक्ति प्रदान की गयी। शासकीय सेवा में रहते हुए देशभर के संग्रहों से प्राप्त तेइस हस्तलेखों के आधार पर विश्वभर में पहली बार 'रघुवंशदर्पण' नामक हेमाद्रिकृत रघुवंश टीका का सम्पादन किया और उसी पर 1935 में रविश र विश्वविद्यालय से पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। सम्पादित टीका को पटना के काशी प्रसाद जायसवाल शोधसंस्थान ने 1973–74 में प्रकाशित भी किया। इसी अवधि में आपके छपे ग्रन्थों–i) आनन्दवर्धन ii) अल ारविमर्शिनी सहित 'अल ारसर्वस्व' पर जबलपुर विश्वविद्यालय ने 'डॉ. ऑफ लेटर्स' की उपाधि आपको 1974 में प्रदान की।

(2) समय–

संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञों एवं रसिकों के लिए यह परम हर्ष का विषय है कि भावयित्री और कारयित्री प्रतिभा के धनी संस्कृतज्ञ श्री रेवाप्रसाद द्विवेदी सनातन जी हमारे बीच जीवित हैं। हम बाबा विश्वनाथ से उनके सुदीर्घ जीवन की प्रार्थना करते हैं जिससे वे अपनी वार्त्थरूपी वाग्देवी से संस्कृत साहित्य को समृद्ध करते रहें।

सम्प्रति ग .ा के पावन तट पर बसी बाबा विश्वनाथ की नगरी काशी (वाराणसी) में निवास कर अपने शोधों, अपनी नवीन उद्भावनाओं से वाग्देवी की सेवाकर संस्कृत साहित्य को भारत तथा विश्व की अनमोल धरोहर के रूप में प्रतिष्ठित' करने के कार्य में मनसा, वाचा, कर्मणा संलग्न है। आपके निवास स्थान का पता :–

श्री रेवाप्रसाद द्विवेदी
28/महामनापुरी कॉलोनी,
नरिया, वाराणसी

(3) रचनाएं –

महामहोपाध्याय रेवाप्रसाद द्विवेदी जी द्वारा संस्कृत वा मय को 5 दशकों में दी गयी कृतियाँ निम्न हैं –

क) महाकाव्य –

महाकवि द्वारा तीन महाकाव्य लिखे गये हैं –

i) उत्तरसीताचरित ii) स्वतंत्रसम्भव iii) कुमारविजयमहाकाव्य

i) उत्तरसीताचरित :– इस महाकाव्य में 10 सर्ग हैं। महाकवि ने वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा को अपनी नवीन, मौलिक उद्‌भावनों के साथ छन्दबद्ध किया है। कालिदास संस्थान वाराणसी से इसका प्रकाशन 1968, 1975, 1990 में हुआ है। इस महाकाव्य में महाकवि ने सीता चरित्र के साथ अनेक सामाजिक विषयों को भी उकेरा है।

ii) स्वतंत्रसम्भव :– 56 सर्गों के इस महाकाव्य में महाकवि ने भारत का वर्तमान मानवधर्म, देशभक्ति तथा साम्प्रदायिक सद्‌भाव को रसमयी उक्तियों के द्वारा प्रकट करने का प्रयास किया है। 1–28 सर्ग के प्रकाशित अंश पर 4 उत्कृष्ट पुरस्कार मिले हैं जिनका उल्लेख किया जा चुका है।

iii) कुमारविजयमहाकाव्य :– 11 सर्गों के इस महाकाव्य में महाकवि ने तारकासुर नामक राक्षस को बिना रक्तपात के ही समाप्त करने के लिए अंहिसा व्रत को अपनाया है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन का.स.वा. में 2000 में हुआ।

ख) गीतिकाव्य (खण्डकाव्य) :–

महाकवि द्वारा लिखित गीतिकाव्य निम्नलिखित हैं–

i) शतपत्रम् :– इसमें 111 पद्य हिन्दी अनुवाद सहित हैं 1987 में का.स.वा. से प्रकाशित है।

ii) प्रमथः :– इसमें अणुयुग पर 9 पद्य हैं 1988 में का.स.वा. से प्रकाशित है।

iii) रेवाभद्रपीठम् :– इस गीतिकाव्य में पवित्र नदी के ऊपर 167 पद्या हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित है प्रथम संस्करण 1988 में द्वितीय संस्करण 2003 में प्रकाशित हुआ है।

iv) संस्कृतहीरकम् :– B.H.U. के संस्कृत संकाय के इतिहास पर 560 पद्य हैं।

v) ब्रह्मास्त्रम् :– यह गीतिकाव्य भारतवर्ष के 50वीं वर्षगांठ पर लिखा गया है संस्कृत संस्थान लखनऊ की पत्रिका 'परिशीलन' में 1999 में प्रकाशित हुआ है।

vi) शकटारम् :– इस गीतिकाव्य में 108 पदों का संग्रह है। यह खण्डकाव्य दक्षिण अफ्रीका के लोकप्रिय नेता नेल्सनमण्डेला को 25 वर्षों से भी अधिक कारावास से मुक्त किये जाने पर कवि की चेतना में अद्‌भुत भावों का उच्छलन है। हिन्दी अनुवाद के साथ इसका प्रकाशन का.स.वा. से 2000 में हुआ है।

vii) मतान्तरम् :– इस गीतिकाव्य में 111 पद्य हैं। इसमें वर्तमान सामाजिक विडम्बनाओं तथा व्यक्ति के जीवन में बदलते मूल्यों का पारदर्शी एवं यथार्थ चित्रण किया गया है। यह का.स.वा. से हिन्दी अनुवाद के साथ 2001 में प्रकाशित हुआ है। इसे महाकवि ने 'युगान्तरनान्दी' यह नाम दिया है।

viii) शरभ म् :– इस खण्डकाव्य में 108 पद्य हैं तथा दण्डकारण्य में निवास कर रहे महर्षि शरभ के चरित्र के आध्यात्म विद्या (गुप्त विद्या) का वर्णन किया गया है। यह खण्डकाव्य हिन्दी अनुवाद के साथ का.स.वा. से 2001 में प्रकाशित हुआ है।

ix) शरश्य्या :– इसमें 3 गीतिकाव्यों का संग्रह है।

a) सुगतोब्रवीति :– इसमें 117 पदों में भगवान बुद्ध के ऐतिहासिक वस्तु स्थिति के क्षय का वर्णन है।

b) वृद्ध कुमारी :– 129 पदों के इस गीतिकाव्य में मुगलशासक के अविवाहित पुत्रियों के जीवन का वर्णन है जिनका जीवन अतुलनीय था। और जो अन्ततोगत्वा अविवाहित ही मर गयी थी।

c) शरश्य्या :– 103 पदों के इस गीतिकाव्य में कवि ने कौरव पाण्डवों के

पितामह (भीष्मपितामह) को परिवेदना का वर्णन किया है। कवि को ऐसा महसूस होता है कि वे जन्म से ही शरश्य्या पर थे।

उपर्युक्त तीनों खण्डकाव्य (गीतिकाव्य) कवि के द्वारा का.स.वा. से शरश्य्या शीर्षक के अन्तर्गत 2002 में प्रथम संस्करण तथा 2007 में द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ है।

xii) रामपरिसंख्या :– 547 पदों के इस खण्डकाव्य में वर्तमान समय में अयोध्या की स्थिति का वर्णन है। का.स.वा. 2008 में इसका प्रकाशन हुआ है।

xiii) अमरिका वैभवम् :– 321 पदों के इस गीतिकाव्य में वर्तमान समय के अमेरिका की स्थिति का वर्णन है तथा इन पदों को कवि ने U.S.A. मे 2001 में लिखा है जब वे वहाँ निवास कर रहे थे। 2008 में यह प्रकाशित हुआ है।

iv) हरिहरवादनम् :– 253 पदों के इस गीतिकाव्य में स्वामी, करपात्री जी महाराजा के जीवन और भारतीय धर्म एवं संस्कृत की सुरक्षा में योगदान का वर्णन है। जो की भारतीय संस्कृति के धार्मिक राजनैतिक व आध्यात्मिक गुरू थे। यह का स.वा. से 2008 में प्रकाशित है।

xv) अवदानलतिका (230 पद) :– अप्रकाशित

xvi) अहमरम्यहमेव (153 पद) :– अप्रकाशित

xvii) कुन्तनाथ :– अप्रकाशित

xviii) Etattu Yacamahe :– अप्रकाशित

ग) कथाएँ–

महाकवि ने तीन लघु कथाओं का प्रणयन किया है :–

i) त्रिपादी **ii) कस्य दोष** **iii) कोऽसौ**

उपर्युक्त तीनों कथाएँ साहित्य अकादमी दिल्ली की पत्रिका 'संस्कृत प्रतिभा' में प्रकाशित हैं।

घ) नाटक –

महाकवि के द्वारा लिखे गये 2 नाटक उपलब्ध होते हैं :–

i) यूथिका :– यह 4 अ ों का नाटक है जिसका आधार शेक्सपियर का रोमियो और जूलियट है। का.स.वा. से 1976 में प्रकाशित हुआ है और U.P. सरकार द्वारा पुरूस्कृत है।

ii) सप्तर्षिकांग्रेसम् :– यह 10 अ ों का नाटक है जिसमें 1977 के लोकसभा के आम चुनाव में हुई कांग्रेस की पराजय का जीवित तथा चित्रोपम इतिहास अंकित है। का.स.वा. से सन् 2000 में प्रकाशित हुआ है।

) शास्त्र :–

साहित्यशास्त्र पर निम्नलिखित ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं –

i) काव्यालंकार कारिका :– 263 कारिकाओं में साहित्य शास्त्र के नवीन सिद्धान्तों पर नवीन आलोचनाएँ लिखी गयी इसका प्रकाशन चौखम्भा संस्कृत सीरिज से 1977 में हुआ है। इस ग्रन्थ पर संस्कृत संस्थान उत्तर प्रदेश से पुरस्कार तथा भोजन पुरस्कार संस्कृत साहित्य परिषद भोपाल से प्रदान किया गया है। इस ग्रन्थ में काव्य और नाटक की आत्मा के रूप में अलंकार को प्रतिष्ठित किया गया है।

ii) नाट्यानुशासनम् – 411 कारिकाओं में नाट्यकला का दर्शन लिखा गया है। जिसका प्रकाशन 1996 में का. स.वा. से हुआ है। इसके 5 खण्ड हैं –

a) नाट्यानुशासनम् **b) भरतदर्शनम** **c) नाट्याशरीरकम्**

d) कलासमाधिः **e) रसभोगः।**

इन पांचो अध्यायो में भारतीय नाट्यकला के सिद्धान्तों पर नया प्रकाश डाला गया है।

iii कर्मप चाशिका :– (अप्रकाशित 50 कारिकाएं शास्त्रीय परम्परा पर)

iv) सौन्दर्यप चाशिका :– (50 कारिकाएं सौन्दर्य शास्त्र पर लिखी है अप्रकाशित)

च) संस्कृत अल ार शास्त्र का आलोचनात्मक इतिहास (300 ई.पू.– 2005 ई.उ.) –

इसमें सम्पूर्ण साहित्य शास्त्री परम्परा का नवीन वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। इसका प्रकाशन 2007 में का.स.वा. से हुआ है।

छ) साहित्य संस्कारम् –

संस्कृत साहित्य शास्त्र के इतिहास को नवे रूप में स्थापित किया गया है। इसका प्रकाशन सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से 1998 में हुआ है।

ज) समालोचनात्मक संस्करण –

महाकवि के द्वारा निम्नलिखित समालोचनात्मक संस्करण का प्रकाशन किया गया है –

1) पहली बार रघुवंशदर्पण नामक हेमाद्रीकृत रघुंवंश की टीका (1500 ई.उ.) का सम्पादन किया और उसी पर 1965 में रविश र विश्वविद्यालय, रायपुर से पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की सम्पादित टीका को पटना के काशीप्रसाद जायसवाल शोध–संस्थान ने 1973–74 में प्रकाशित भी किया है।

ii) कालिदास ग्रन्थावली (कालिदास का सम्पर्ण कृतित्व) :–

कालिदास के सम्पूर्ण कृतित्व को मूलपाठ नागर बंगाली तथा कश्मीरी मूल टीका के साथ प्रकाशित किया गया है।

प्रथम प्रकाशन 1976 में और द्वितीय प्रकाशन 1986 में बी.एच.यू. वाराणसी द्वारा किया गया है। मध्यप्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा व्यास पुरस्कार प्रदान किया गया है।

iii) ऋतुसंहारम् –दस हस्तलिखित तथा दस आलोचनात्मक संस्करण के आधार पर सम्पादित किया गया है। जो कि साहित्य अकादमी से 1990 में प्रकाशित हुआ है।

iv) रघुवंशम् – दस हस्तलिखित प्रतियों तथा दस गुण दोष विवेचनात्मक संस्करण जो भारत तथा विदेशों से प्रकाशित हुआ था। उसका सूक्ष्मरूप से सम्पादन किया गया। जो 1993 में साहित्य अकादमी दिल्ली से प्रकाशित हुआ।

v) कुमार सम्भवम् (1–8) – हस्तलेख को अपने लेखन द्वारा तैयार किया गया है।

vi) मेघद्वतम् (111 श्लोक) – हस्तलेख को अपने लेखन द्वारा तैयार किया गया है।,

vii) **A. मम्मट कृत काव्य प्रकाश** :– मूलपाठ तथा टीका

B. कौमुदी या विमर्शिनी द्वारा भट्टगोपाल

C. सुधासागर द्वारा भीमसेन दीक्षित

viii) अभिधावृत्तिमातृका :– 900 ई.उ. हिन्दी अनुवाद और व्याख्या के साथ चौखम्भा संस्कृत सीरिजवा. से प्रकाशित तथा संस्कृत संस्थान लखनऊ में पुरस्कृत किया गया है।

ix) शब्दव्यापार विचार :– मम्मट कृत हिन्दी अनुवाद के साथ चौखम्ब संस्कृत सीरिज 1974 में प्रकाशित।

x) अलंकारसर्वस्वम् :– 1200 ई.उ. रूय्यक तथा अलंकार विमर्शिनी – जयरथ 1300 ई.उ.दोनों के एक भाग का प्रकाशन हिन्दी अनुवाद और व्याख्या के साथ चौखम्ब संस्कृत सीरिज वा. से 1971 में भाग दो पर (डी.लिट., शोध प्रबन्ध) मित्र पुरस्कार साहित्य परिषद म.प्र. सरकार भोपाल द्वारा प्रदान किया गया है।

xii) कुमार सम्भवम् :–(1–8 खण्ड) अरूणगिरीनाथ तथा नारायण पण्डित कृत टीका के साथ सम्पादित तथा 2003 में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से प्रकाशित।

xiii) रघुवंशम् :– अरूणगिरीनाथ तथा नारायण पण्डित कृत टीका के साथ सम्पादित तथा 2003 में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से प्रकाशित।

xiv) भरतनाट्यशास्त्र :– हिन्दी अनुवाद और आलोचना के साथ 22 अध्यायों का सम्पादन न. 1–3, 6, 7, 13–27, 35–36, (37 और 38) के साथ भरतनाट्यशास्त्र

का भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान शिमला से 2004 में प्रकाशन।

xv) भोजकृत श्रृंगार प्रकाश – (1–36 अध्याय) इसका समाशोधन तथा आलोचनात्मक सम्पादन। इन्द्रिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली का स.वा.से 2007 में प्रकाशित।

xvi) कालिदासग्रन्थावली :– (कालिदास का सम्पूर्ण कृतित्व) ह्यूटन पुस्तकालय, हारर्बड और यू.एस.ए. में सुरक्षित तथा दुर्लभ हस्तलिखित प्रतियों से कालिदास के सम्पूर्ण कृतित्व के तृतीय आलोचनात्मक संस्कृरा का हिन्दी अनुवाद के साथ सम्पादन। सन् 2008 में का.स. अकादमी, उज्जैन से दो भागों में प्रकाशन के लिए स्वीकृत।

झ) अनुवाद, व्याख्या और संशोधन –

1–2 हिन्दी अनुवाद और व्याख्या महिम भट्टकृत व्यक्ति विवेक (1050 ई.उ.) और रुय्यक कृत टीका 1200 ई.उ. चौखम्भा स.सीरिज से 1964 में प्रकाशित। साहित्य परिषद म.प्र. सरकार द्वारा मित्र पुरस्कार से पुरूस्कृत।

3–4 काव्यालंकार कारिका व उसकी वृत्ति का हिन्दी व अंग्रेजी में अनुवाद।

ञ) लेख और शोध प्रबन्ध –

i) आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक पर 608 पन्नों का हिन्दी में लेख जो कि 1972 में हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल से मुद्रित और प्रकाशित हुआ। ध्वन्यालोक के नये सिद्धान्तों और उपलब्धियों का प्रथम भाग जो की डी.लिट. का शोध प्रबन्ध था।

ii) भारतीय काव्यमीमांसा में अलंकार सिद्धान्त पर 400 पन्नों का लेख जो कि 1981 में मैक्मिलन एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली से 1981 में प्रकाशित हुआ। इसमें सभी स्वीकृत–अस्वीकृत (मान्य–अमान्य) दोनों अलंकारों का वर्णन किया गया है। उत्तर प्रदेश साहित्य परिषद से पुरस्कृत है।

iii) साहित्य सन्दर्भ :– 1970 तीन संस्कृत शोधलेखों का संग्रह है। (1970)

iv) कालिदास–मानवशिल्पी :– महाकवि, 1973 में संस्कृत परिषद सागर से प्रकाशित उत्तर प्रदेश सरकार से पुरस्कृत।

v) कालिदास–अपनी बात :– महाकविकालिदास पर 350 पन्नों का लेख जो कि का.स.वा. से 2004 में प्रकाशित है।

vi) कालिदास भारती :– महाकविकालिदास के साहित्यिक लेखों का 370 पन्नों का संग्रह और 2005 में प्रकाशित।

vii) अलंब्रह्म :– 303 पन्नों का साहित्यशास्त्र के लेखों का संग्रह। 2005 में प्रकाशित अलंकार शास्त्र को ब्रह्मविद्या की कोटि में स्थापित करने वाला वर्तमान शताब्दी के सर्वोत्तम नवीन तथा क्रांतिकारी सिद्धान्तों का प्रवर्तक है।

ट) नवीन हस्तलेख –

i) कालिदास के सप्तपर्णी कृतियों को अपने हाथों से नागरीलिपि में तैयार किया।

ii) मेघदूत के 1–111 श्लोकों की हस्तप्रतिकों तथा रघुवंश के प्रथम सर्ग को अशोक के काल की ब्रह्मीलिपि से तैयार किया गया।

iii) नये हस्तप्रतियों में आनन्दवर्चन की ध्वनिकारिकाओं को नागरी लिपि में बनाया।

ठ) कालिदास साहित्य सन्दर्भ कोश –

यह कोश काशी में तैयार किया जा रहा है। इस परियोजना के सलाहकार काशी हिन्दू विश्व विद्यालय, वाराणसी के संस्कृतज्ञ रेवाप्रसाद द्विवेदी जी है। इस परियोजना हेतु विश्व विद्यालय अनुदान आयोग ने 6 लाख 18 हजार रु. की राशि स्वीकृत की है। यह कार्य आगामी दो वर्षों में पूरा हो जायेगा। का.स. अकादमी उज्जैन ने इसके प्रकाशन का स ल्प लिया है। यह विश्व का पहला प्रमाणिक कोश होगा।

ड) शोध निर्देशन –

महाकवि के निर्देशन में लगभग 17 शोधार्थी पी.एच.डी. ग्रहण कर चुके हैं

इनके द्वारा लिखित 125 शोधलेध संस्कृत हिन्दी अंग्रेजी भाषाओं में विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। पाँचवे विश्व संस्कृत सम्मेलन के महाकवि संयोजक थे जो 1981 में काशी हि.वि.वि.वा. में सम्पन्न हुआ था।

महाकवि ने अनेक देशों की विदेश यात्राएं भी की हैं षष्ठ विश्वसंस्कृत सम्मेलन में भारत सरकार के प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य के रूप में जो 1984 में फिलाडेल्फिया U.S.A. में आयोजित हुआ था भारत का प्रतिनिधित्व किया। सप्तम विश्व संस्कृत सम्मेलन में का.हि.वि.वि. के प्रतिनिधिमण्डल के सदस्य के रूप में जो 1986 में लिडेन में हुआ था प्रतिनिधित्व किया। 1994 में विशेष आमंत्रित विद्वान के रूप में नेपाल की यात्रा की।

ढ) सदस्यता –

महाकवि उ.प्र.सरकार, म.प्र. सरकार, तथा का.हि.वि.वि.वा. के विभिन्न समितियों के कार्यकारिणी के सदस्य भी रहे हैं जिनका विवरण इस प्रकार है :–

1) 1979 – 1981 तक का हि.वि.वि.वा. के कार्यकारिणी परिषद् के सदस्य।

2) केन्द्रिय संस्कृत बोर्ड भारत सरकार के दो बार सदस्य।

3) कालिदास समिति म.प्र. सरकार भोपाल के सदस्य।

4) कालिदास संस्कृत विक्रम वि.वि. उज्जैन के सदस्य।

5) का.स.उ.प्र.सरकार लखनऊ के सदस्य।

6) शैक्षणिक कार्यकारिणी का. हि.वि.वि.वा. के 1970–1990 तक सदस्य।

7) संस्कृत संकाय का हि.वि.वि.वा. के 1970–1990 तक सदस्य।

8) अलीगढ़, रायपुर, रीवा, ग्वालियर, जगलपुर, भोपाल, जयपुर, बरेली आदि विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम समिति के सदस्य।

1984 द्विवेदी जी वाराणसी में कालिदास स ठन/कालिदास अकादमी के संस्थापक भी रहें जो वर्तमान में 28, महामनापुरी कॉलोनी, वाराणसी में स्थित हैं।

4. स्वर्ण पदक पुरस्कार, सम्मान तथा उपाधि –

अपने द्वारा सृजित काव्यों, उपलब्धियों पर महाकवि को विभिन्न प्रदेशों की सरकारों द्वारा विभिन्न पुरस्कारों, सम्मानो तथा उपाधियों से नवाजा गया है।

क) स्वर्णपदक एवं पुरस्कार :–

1. चौबे विश्वेश्वरनाथ स्वर्णपदक, आचार्य कक्षा में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त करने के लिए 1956 में काशीहिन्दूविश्विद्यालय, वाराणसी द्वारा प्रदान किया गया।
2. म.म. पी.वी. काणे स्वर्णपदक, मुम्बई की रॉयल एशियाटिक सोसायटी द्वारा काव्यशास्त्र पर प्रशंसनीय कार्य के लिए 1983 में प्रदान किया गया।
3. सीनियर एकेडमिक अवार्ड अथवा विशिष्ठ शैक्षिक पुरस्कार, 1985, काशी हि. वि.वि.वा.।

ख) वित्तीय पुरस्कार :–

1. सर्टिफिकेट ऑफ ऑनर, भारतीय राष्ट्रपति द्वारा वार्षिक मुद्रा सम्बन्धित अनुदान 15 अगस्त 1978 से
2. साहित्य अकादमी पुरस्कार – साहित्य अकादमी दिल्ली द्वारा, 1991 में।
3. कल्पवल्ली पुरस्कार – भारतीय भाषा परिषद् कलकत्ता द्वारा, 1993 में।
4. वाचस्पति पुरस्कार – के.के. बिरला फॉण्डेशन नई दिल्ली द्वारा, 1993 में।
5. श्रीवाणी पुरस्कार – रामकृष्ण जयदयाल डाल्मिया श्रीवाणी ट्रस्ट दिल्ली द्वारा, 1999 में। यह पुरस्कार प्रधानमंत्री निवास पर प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के हाथों प्रदान किया गया।

उपर्युक्त क्रम संख्या दो से लेकर पांच तक 4 पुरस्कार स्वतंत्र सम्भवम् महाकाव्य के (1–28) सर्गों पर दिया गया।

6. विशिष्ठ पुरूस्कार – उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान द्वारा 2002 में।

7. वाल्मीकि पुरूस्कार – उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान द्वारा 2004 में।

8. विश्वभारती पुरूस्कार – यू.पी. संस्कृत संस्थान द्वारा 2005 में।

9. नौ विभिन्न प्रकार के पुरस्कार ग्रन्थों के लिए उत्तर प्रदेश सरकार तथा मध्यप्रदेश सरकार द्वारा दिये गये। जिनमें – दो मित्र पुरूस्कार एक भोजपुरूस्कार, एक व्यास पुरस्कार।

10. राष्ट्रीय संस्कृत वेद व्यास पुरूस्कार – वर्ष 2007 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने वर्ष 2005 के राष्ट्रीय संस्कृत वेदव्यास सम्मान से अलंकृत करने पर दिया।

ग) सम्मान –

1. रत्न सदस्य – का.स.आ. उज्जैन के स्वर्ण जयन्ती समारोह 2007 में प्रदान किया गया।

2. शास्त्रकला निधि सम्मान – मद्रास संस्कृत कॉलेज, मद्रास के शतकवर्ष 2006 में प्रदान किया गया।

3. ऑनररिफेलो ऑफ एशियाटिक सोसायटी, मुम्बई 1995 से।

4. मालवीय सम्मान – का.हि.वि.वि.वा. द्वारा 1985 में।

5. अमेरीटस प्रोफेसर – का. हि.वि.वि.वा. द्वारा 1993 से..... ।

6. शास्त्री कलानिधि पंडितरत्न – श्री रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय चित्रकुट द्वारा 2008 में।

घ) उपाधि –

1. महामहोपाध्याय की उपाधि – केन्द्रीय विद्यापीठ तिरूपति द्वारा, 1999 में।
2. महामहोपाध्याय की उपाधि – हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद द्वारा, 2003 में।

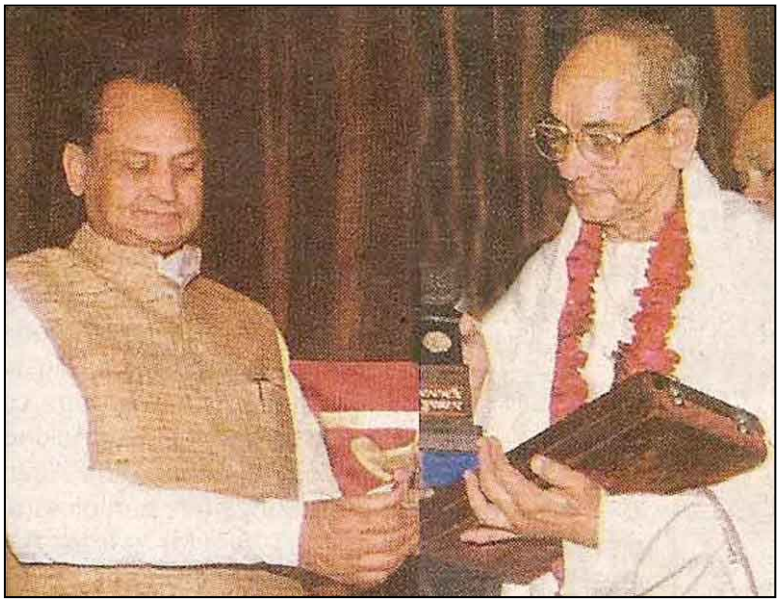

मुख्यमंत्री अशोक गहलोत जयपुर में प्रो.रेवाप्रसाद द्विवेदी को वाचस्पति पुरस्कार प्रदान करते हुए
(राजस्थान पत्रिका में दिनांक 11.03.2000 में प्रकाशित)

द्वितीय अध्याय

द्वितीय अध्याय

संस्कृत महाकाव्य परम्परा : संक्षिप्त परिचय

(i) प्राचीन महाकाव्य परम्परा –

महाकाव्य ''महत्'' विशेषण सहित ''काव्य'' शब्द के योग से निर्मित है। संस्कृत में काव्य रचना का इतिहास अति प्राचीन है। सर्वप्रथम ऋग्वेद में हमें काव्यत्व के दर्शन होते हैं। वैदिक सूक्तों की छन्दोबद्धता एवं अलंकृत शैली की मुख्यधारा ही लौकिक काव्यधारा के उद्‌गम का बीज रही है। वेदों के उपरान्त पुराणों में पुराकथा को काव्यमयी भाषा में लिखकर प्रस्तुत किया गया अतः पुराणों का योगदान भी महत्वपूर्ण माना जाता है। पुराणकाल के उपरान्त ऋषियों ने जिस लौकिक काव्य धारा का प्रवर्त्तन किया, उसके आदि स्रोत थे, रामायण एवं महाभारत। ये दोनों काव्य के उपजीव्य हैं। वाल्मीकि ने इसी तथ्य को ध्यान में रखकर अपनी कृति को ''नूतनश्छन्दसामवतारः'' कहा था।

महाकाव्य की महत्ता स्वरूपजन्य नहीं है, प्रत्युत गुणजन्य है। कोई भी काव्य अपने वृहदाकार के कारण महाकाव्य की संज्ञा से अभिहित नहीं किया जा सकता। बल्कि कवित्व बीज संस्कार विशेष कवि प्रतिभा से महाकाव्य का सृजन होता है। पद्य काव्य के अन्तर्गत महाकाव्य को विशिष्ट स्थान मिला। महाकाव्य श्रव्यकाव्य के अन्तर्गत आने वाले प्रबन्धकाव्य का प्रथम भेद है। महाकाव्य के रचना मूल में अनेक तथ्य निर्धारित किए गए तथा उसके अन्तर्गत उन सब तथ्यों का समावेश कर दिया गया जो तद्‌युगीन महाकाव्यों के लक्षणों में मूलरूप से दृष्टिगोचर होते थे। प्राचीन काव्य शास्त्रियों ने अपने युग की माँग के अनुरूप महाकाव्य का लक्षण प्रस्तुत किया है। अग्निपुराण साहित्य का विश्वकोष माना जाता है अतः प्रथमतया अग्नि पुराण में उपलब्ध महाकाव्य के लक्षण का निरूपण करेंगे। तत्पश्चात् अलंकारशास्त्रियों भामह, दण्डी, रुद्रट, हेमचन्द्र, विद्यानाथ और आचार्य विश्वनाथ द्वारा प्रतिपादित महाकाव्य के लक्षणों को आरेखित करेंगे। अग्निपुराण में प्रतिपादित महाकाव्य का लक्षण है :–

1. पुराणों के अन्तर्गत 'अग्निपुराण' में महाकाव्य का लक्षण है –

सर्गबन्धो महाकाव्यमारब्धं संस्कृतेन यत्।

तादात्म्यमजहत्तत्र तत्समं नातिदुष्यति।।

इतिहासकथोद्भूतमितरद् वा सदाश्रयम्।

मन्त्रदूतप्रयाणाजिनियतं नातिविस्तरम्।।[1]

मात्रयाऽप्यपरः सर्गः प्राश्स्त्येषु च पश्चिमः।

कल्पोतिनिन्दितस्तस्मिन्निव शेषानादरः सताम्।।

नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रार्काश्रमपादपैः।

उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवैः।।

दूतीवचनविन्यासैरसतीचरिताद्भुतैः।

तमसामरुताऽप्यन्यैर्विभावैरतिनिर्भरैः।।

सर्ववृत्तिप्रवृत्तं च सर्वभावप्रभावितम्।

सर्वरीतिरसैः स्पृष्टं पुष्टं गुणविभूषणैः।।[1]

अतएव महाकाव्यं तत्कर्त्ता च महाकविः।

वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्।।

पृथक्प्रयत्ननिर्वर्त्यं वाग्विक्रमणि रसाद्वपुः।

चतुर्वर्गफलं विश्वविख्यातं नायकाख्यया।।[2]

सर्गबद्ध रचना को, जो संस्कृत भाषा में अथवा विशुद्ध एवं परिमार्जित भाषा में लिखी गयी हो, 'महाकाव्य' कहते हैं। महाकाव्य के स्वरूप का त्याग न करते हुए उसके समान अन्य रचना भी हो तो वह दूषित नहीं मानी जाती। 'महाकाव्य' इतिहास की कथा को लेकर निर्मित होता है अथवा उसके अतिरिक्त किसी उत्तम आधार को लेकर भी उसकी अवतारणा की जाती है। उसमें यथास्थान गुप्तमन्त्रणा,

दूतप्रेषण, अभियान और युद्ध आदि के वर्णन का समावेश होता है। वह अधिक विस्तृत नहीं होता। सज्जनों के अनादर की पद्धति निन्दनीय होने के कारण त्याज्य होनी चाहिये। महाकाव्य में विभिन्न लोकातिशायी तत्व, नगर, वन, पर्वत, समुद्र, ऋतु, चन्द्र, सूर्य, आश्रम, पादप, उद्यान, जलक्रीडा, तथा मद्यपान आदि उत्सवों के साथ–साथ दूती के वचन, कुलटाओं के विस्मयजनक चरितों का समावेश होना चाहिए। अन्धकार, वायु तथा रति को व्यक्त करने वाले अन्य उद्दीपन–विभावों से भी वह अलंकृत होना चाहिए।

कथानक सब प्रकार की वृत्तियों, प्रवृत्तियों, भावों और रीतियों से संयुक्त होते हुए अलंकारों से पुष्ट होना चाहिए। इन समस्त गुणों से युक्त महाकाव्य की रचना करने वाला महाकवि कहा जाता है। नायक विश्वविख्यात होना चाहिए, उसके नाम से पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति का वर्णन करना चाहिए। महाकाव्य में विविध वाक् कौशलों की प्रधानता होते हुए भी काव्य का आत्म तत्व रस ही होता है। अतः कवि को व्यर्थ वाग्विक्रम का त्याग कर रससिक्त कलेवर तैयार करना चाहिए।

2. भामह ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार' में महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार प्रस्तुत किया हैः–

सर्गबन्धो महाकाव्यं महता×च महच्च यत्।

अग्राम्यशब्दमर्थच सालंकारं सदाश्रयम्।।

मन्त्र दूत प्रयाणाजिनायकाभ्युदयैश्च यत्।

प×चभिः सन्धिभिर्युक्तं नातिव्याख्येयमृद्धिमत्।।

चतुर्वर्गाभिधानेऽपि भूयसार्थोपदेशकृत्।

युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक्।।

नायकं प्रागुपन्यस्य वंशवीर्यश्रुतादिभिः।

न तस्यैव वधं स्यादन्योत्कर्षाभिधित्सया।।[1]

अर्थात् महाकाव्य में वस्तु, नेता और रस की दृष्टि से निम्नलिखित विशेषताएँ होनी आवश्यक है :–

कथावस्तु की दृष्टि से महाकाव्य सर्गबद्ध होते हुए गम्भीर विषय से युक्त होना चाहिये। इसमें महापुरुषों की कथा का वर्णन होना चाहिये अथवा महान् कार्यों का उल्लेख होना चाहिये और मन्त्र, दूत, प्रयाण, युद्ध आदि नायक के अभ्युदयान्वित तत्वों के साथ–साथ ऋतु, चन्द्रोदय, उद्यान, पर्वतादि का रम्य वर्णन होना चाहिए। नाटकीय पञ्च संधियों का प्रयोग आवश्यक होना चाहिए किन्तु अत्यन्त विस्तृत नहीं होना चाहिए।

महाकाव्य का नायक उच्चवंश का, पराक्रमी और इतिहास प्रसिद्ध होना चाहिए। नायक का उत्कर्ष वर्णन करके किसी अन्य के लिए उसका वध वर्णित नहीं किया जाना चाहिए। फल प्राप्ति का आधान होना चाहिए। काव्य में समस्त रसों का समावेश होना चाहिए और अलंकारों का भी प्रयोग आवश्यक है।

3. 'काव्यादर्श' नामक ग्रन्थ में दण्डी द्वारा निरूपित महाकाव्य का लक्षण :–

सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।

आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्।।

इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम्।

चतुर्वर्गफलोपेतं चतुरोदात्तनायकम्।।

नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रार्कोदयवर्णनैः।

उद्यानसलिलक्रीडाः मधुपानरतोत्सवैः।।

विप्रलम्भैर्विवाहैश्चं कुमारोदयवर्णनैः।

मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैरपि।।

अलंकृतमसंक्षिप्तं रसभावनिरन्तरम्।

सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्रव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः।।

सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरंजकम्।

काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायेत सदलंकृति।।

न्यूनमप्यत्र यैः कैश्चिदंगैः काव्यं न दुष्यति।

यद्युपात्तेषु संपत्तिराराध्यति तद्विदः।।[1]

दण्डी के उपुर्यक्त लक्षण में कुछ नवीनता समाहित है जो इस प्रकार है :–

महाकाव्य सर्गबन्ध होना चाहिए, उसके प्रारम्भ में आशीर्वचन, नमस्कार अथवा वस्तुनिर्देश होना चाहिए। महाकाव्य की कथावस्तु ऐतिहासिक अथवा अन्य किसी काल्पनिकता से युक्त श्रेष्ठ कथा या पात्र पर आश्रित होनी चाहिए। नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, चन्द्रोदय, सूर्योदय, उद्यान, सलिल आदि के वर्णन के साथ–साथ क्रीड़ा, मधुपान, रतोत्वस, विवाह तथा सर्गान्त में छन्द परिवर्तन होना चाहिए।

राजनीतिक मन्त्रणा, दूत–संप्रेषण, विजय यात्रा, युद्ध, नायक–विजय आदि वर्णनों से अलंकृत, अतिविस्तार रहित, परस्पर सम्बद्ध एवं भिन्न घटनाओं से युक्त कथावस्तु मुख, प्रतिमुख आदि नाट्य संधियों से गठित होनी चाहिए।

नायक व्यवहार कुशल उदात्तादि गुणों से युक्त होना चाहिए, उसके चतुवर्ग–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का भी वर्णन होना चाहिए, विप्रलम्भ श्रृंगार मुख्य रूप से काव्य में रहते हुए अन्य समस्त रसों तथा भावों का प्रवाह निरन्तर चलता रहना चाहिए। श्रेष्ठ अलंकारों से सुशोभित, सहृदयजन मनोहारी महाकाव्य चिरस्थायी कीर्तिवाला होता है।

काव्य का रसास्वाद सिद्ध हो जाने पर लक्षणानुसार काव्य में कुछ अंगों का समावेश न हो तो भी कोई दोष उपस्थित नहीं हो सकता है ध्वन्यालोक तृतीय उद्योत् में आनन्दवर्धन ने भी प्रबन्ध काव्य का उल्लेख किया है।[1]

4 रुद्रट ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार' में महाकाव्य के विषय में कुछ तथ्यों को प्रस्तुत किया। आचार्य रुद्रट द्वारा काव्य विवेचन में महाकाव्य की परिभाषा विस्तृत रूप में दी गई है जिसमें संस्कृत के रामायण, महाभारत काव्य ग्रन्थों के अतिरिक्त प्राकृत, अपभ्रंश के काव्य भी सम्मिलित हैं, जैसे –

तत्र महान्तो येषु च विततेष्वभिधीयते चतुर्वर्गः।

सर्वे रसाः क्रियन्ते काव्यस्थानानि सर्वाणि।।

तत्रोत्पाद्ये पूर्वं सन्नगरीवर्णनं महाकाव्ये।

कुर्वीत तदनु तस्यां नायक वंश प्रशंसां च।।

तत्र त्रिवर्गसक्तं समिद्धशक्तित्रयं च सर्वगुणम्।

रक्तसमस्तप्रकृतिं विजिगीषुं नायकं न्यस्येत्।।

विधिवत्परिपालयतः सकलं राज्यं च राजवृत्तं च।

तस्य कदाचिदुपेतं शरदादिं वर्णयेत्समयम्।।

स्वार्थं मित्रार्थं वाधर्मादिं साधयिष्यतस्तस्य।

कुल्यादिष्वन्यतमं प्रतिपक्षं वर्णयेद् गुणिनम्।।[2]

स्वचरात् वद्दूताद्वा कुतोऽपि वा शृण्वतोऽरिकार्याणि।

कुर्वीत सदसि राज्ञा क्षोभं क्रोधेद्वचितं गिराम्।।

सम्मन्त्र्य समं सचिवैर्निश्चित्य च दण्डसाध्यतां शत्रोः।

तं दापयेत्प्रयाणं दूतं वा प्रेषयेन्मुखरम्।।

अथ नायकप्रयाणे नागरिकाक्षोभजनपदादिनदीः।

अटवी काननसरसिजमरूजलधिद्विपभुवनानि।।

स्कन्धावारनिवेशं क्रीडां यूनां यथायथं तेषु।

ख्यरतमयं संध्यां सतमसमथोदयं शशनिः।।

रजनी च तत्र यूनां समाजसंगीतपान शृंगारान्।

इति वर्णयेत्प्रसंगात्कथां च भूयो निबध्नीयात्।।[3]

प्रतिनायकमपि तद्वत्तदभिमुखममृष्य भाणमायान्तम्।

अभिदध्यात् कार्यवशान्नगरीरोधस्थितं वापि।।

योद्धव्यं प्रातरिति प्रबन्धमधुपीति निशिकलत्त्रेभ्यः।

स्ववधं विशंकमानान् संदेशान् दापयेत् सुभटान्।।

सन्नह्य कृतव्यूहं सविस्मयं युध्यमानयोरुभयोः।

कृच्छ्रेण साधु कुर्यादभ्युदयं नायकस्यान्ते।।

सर्गाभिधानि चास्मिन्नवान्तरं प्रकरणानि कुर्वीत्।

सन्धीनपि संश्लिष्टांस्तेषामन्योन्यं सम्बन्धात्।।[1]

उपर्युक्त लक्षणानुसार रुद्रट कहते हैं कि वे प्रबन्ध महान् कहलाते हैं, जिनके विस्तृत आयाम में चारों वर्गों का वर्णन होता है, सब रसों तथा काव्य में वर्णनीय स्थानों को निरूपित किया जाता है। आचार्य महाकाव्य का स्वरूप निर्देशित करते हुए कथावस्तु के सम्बन्ध में कहते हैं कि महाकाव्य में उत्पाद्य कथा हो और उसके प्रकरणों के द्वारा मुख आदि सन्धियाँ सुगठित होनी चाहिए जिसमें नायक प्रसङ्ग से कवि, नागरिकों का समुदाय, समुद्र, द्वीप, भुवन, छावनी की स्थापना, यथावसर युवकों का खेलकूद, संध्यावर्णन, चन्द्रोदय, रात्रि वर्णन और युवकों द्वारा संगीत, मद्यपान आदि प्रसंगों से कथा का नियोजन करना चाहिए।

महाकाव्य में उच्चकुलीन, सर्वगुणसम्पन्न, समस्त विश्व को जीतने की इच्छा वाला महान, वीर, त्रिवर्ग की प्राप्ति में संलग्न, तीन राज शक्तियों, प्रभाव, मंत्र और

उत्साह से सम्पन्न, व्यवहार कुशल, नीतिज्ञ नायक का वर्णन होना चाहिये। नायक को मंत्रियों आदि से सलाह करके, अपने शत्रु की दण्डसाध्यता का निश्चय करके उसके प्रति प्रयाण अथवा वाक्पटु दूत भेजने, गुप्तचरों आदि से शत्रु के कार्यों को जानकर, सभा में क्रोध से प्रदीप्त मन और वाणी वाले सहायक, राजाओं को क्षुब्ध अर्थात् शत्रु के विरुद्ध उत्तेजित करने आदि की नीतियों में कुशल राजा के रूप में चित्रित करना चाहिए।

नायक की ओर असहनशील होकर आते हुए अथवा आक्रमण के उद्देश्य से नगरी का घेरा डालकर ठहरे हुए प्रतिनायक का भी वर्णन होना चाहिए। सन्नद्ध होकर व्यूह की रचना करते हुए और आश्चर्यजनक रूप में परस्पर युद्ध करते हुए, दोनों पक्षों में नायक की ही कष्टपूर्ण विजय प्राप्ति दिखाई जानी चाहिये।

निष्कर्षतः रुद्रट ने महाकाव्य के लक्षण में व्यापकता हेतु अपनी समन्वयात्मक एवं विश्लेषणात्मक दृष्टि अपनाई है।

5. आचार्य हेमचन्द्र ने अपने 'काव्यानुशासन' ग्रन्थ में महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार दिया है–

पद्यं प्रायः संस्कृतप्राकृतापभ्रंशग्राम्यभाषानिबद्धभिन्नान्त्य–वृत्तसर्गा–

श्वाससंध्यवस्कन्धकबन्ध सत्संधि शब्दार्थवैचि×योपेतं महाकाव्यम्

छन्दोविशेषरचितं प्रायः संस्कृतादिभाषानिबद्धैर्भिन्नान्त्य–वृत्तैर्यथासंख्यं

सर्गादिभिर्निर्मितं सुश्लिष्टमुखप्रतिमुखगर्भविमर्शनिर्वहणसंधिसुन्दरं शब्दार्थवैचि×योपेतं

महाकाव्यम्।

हेमचन्द्र के मत में संस्कृत भाषा के अतिरिक्त, प्राकृत, अपभ्रंश तथा ग्राम्य भाषाओं में भी महाकाव्य की रचना हो सकती है। संस्कृत भाषा में सर्गबद्ध, प्राकृत में आश्वासक बन्ध, अपभ्रंश में सन्धिबंध और ग्राम्यापभ्रंश में अवस्कन्धकबन्ध महाकाव्य होते हैं। पर कभी–कभी संस्कृत में सर्ग के स्थान पर आश्वासक–बन्ध, नाम से विभाजन दृष्टिगत होता है। वह नाटकादि संधियों–मुख, प्रतिमुख गर्भ, विमर्श, निर्वहण तथा शब्दार्थ वैचिx्य, से युक्त होता है। आचार्य हेमचन्द्र ने महाकाव्य के लक्षणों को शब्दवैचिx्य, अर्थवैचिx्य और उभयवैचिx्य में विभाजित किया है। साथ ही छन्द, सर्गबद्धता, संधिसंगठन, उक्तिवैचिx्य आदि को वर्णित किया है।

6. विद्यानाथ द्वारा रचित 'प्रतापरुद्रयशोभूषण' में महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार उपलब्ध होता है –

नगरार्णवशैलर्त्तुचन्द्रार्कोदयवर्णनम्।

उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवैः।।

विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनम्।

मंत्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदया अपि।

एतानि यत्र वर्ण्यन्ते तन्महाकाव्यमुच्यते।।[1]

उपर्युक्त महाकाव्य लक्षण भी पूर्व काव्य शास्त्रियों द्वारा निरूपित तथा दण्डी द्वारा प्रदत्त लक्षण के सदृश ही है।

7. कविराज विश्वनाथ ने अपने पूर्ववर्ती सभी आचार्यों के मतों का समाहार करते हुए तथा यत्र तत्र नवीन लक्षणों या तत्वों का निर्देश करते हुए, मौलिकता से युक्त महाकाव्य का लक्षण प्रतिपादित किया है। इन्होंने महाकाव्य में वस्तु, नेता, रस की दृष्टि से अग्रलिखित विशेषताओं को प्रमुख स्थान पर दर्शाया है, जैसे –

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।।

सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः।

एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।।

शृ›ारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।

अ›ानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः।।

इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।

चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्।।

आदौ नमस्क्रियाशीर्वाद वस्तुनिर्देश एव वा।

क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्।।

एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।

नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।।

नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते।

सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।।

संध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः।

प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः।।[2]

संभोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः।

रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः।।

वर्णनीया यथायोगं सा›ापा›ा अमी इह।

कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा।।

नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु।

अस्मिन्नार्षे पुनः सर्गा भवन्त्याख्यानसंज्ञकाः।।

प्राकृतैर्निर्मिते तस्मिन्सर्गा आश्वाससंज्ञकाः।

छन्दसा स्कन्धकेनैतत्क्वचिद्गलितकैरपि।।

अपभ्रंशनिबद्धेऽस्मिन् सर्गाः कुडवकाभिधाः।

तथापभ्रंशयोग्यानिच्छन्दांसि विविधान्यपि।।[1]

अर्थात् कविराज के मतानुसार महाकाव्य सर्गबन्ध होना चाहिए अथवा जो सर्गबन्धात्मक काव्य है उसे महाकाव्य कहते हैं। महाकाव्य का आरम्भ मंगलाचरण से होना चाहिए जो नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक या वस्तुनिर्देशात्मक होना चाहिए। कथावस्तु की दृष्टि से कोई भी ऐतिहासिक अथवा किसी महापुरुष से सम्बद्ध कोई लोकप्रसिद्ध वृत्त प्रयोग किया जा सकता है। संस्थान रचना की दृष्टि से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप पुरुषार्थ चतुष्टय का काव्यात्मक निरूपण किया जाना चाहिए, लेकिन परमफल के रूप में किसी एक पुरुषार्थ का ही सर्वतोभद्र उपनिबन्ध उचित माना जाता है।

किसी भी महाकाव्य में 8 से कम सर्ग नहीं होने चाहिये। ये सर्ग न तो बहुत छोटे हों, न बहुत बड़े और प्रत्येक सर्ग किसी एक छन्द में बद्ध होना चाहिए। किसी–किसी महाकाव्य में नानावृत्तों से बद्ध पद्यों में भी सर्ग रचना की जा सकती है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में प्रयुक्त छन्द को छोड़कर दूसरे छन्द में पद्य रचना करनी चाहिए। सर्ग के अन्त में उसके अगले सर्ग में आने वाले कथानक की संक्षिप्त सूचना देना आवश्यक है। किसी–किसी महाकाव्य में खलनिन्दा (दुर्जनों की निन्दा) और सज्जन प्रशंसा भी निहित रहती है।

इसके अतिरिक्त कथावस्तु में सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, प्रदोष, अंधकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन–उपवन, समुद्र, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह, सभा आदि पुरुषार्थ चतुष्टय, पुत्र जन्म आदि विषयों का भी वर्णन किया जाना चाहिए।

विश्वनाथ ने महाकाव्य के नामकरण के विषय में भी दृष्टिपात किया है कि कवि के नाम पर, वर्ण्य–चरित्र के नाम पर अथवा नायक के नाम पर महाकाव्य का नामकरण किया जा सकता है या अन्य किसी आधार पर भी नाम रखा जा सकता है। वर्ण्य–वृत्त के अनुसार उसके सर्गों का भी नाम रखा जाना चाहिए।

नायक की दृष्टि से महाकाव्य में एक नायक का चरित्र चित्रित करते हुए उसे धीरोदात्त गुणों से युक्त दिखाना चाहिए। वह कोई देवविशेष अथवा विख्यात राजवंश का राजा होना चाहिए। कभी–कभी किसी महाकाव्य में एक राजवंश में उत्पन्न अनेक कुलीन राजाओं का चित्रण भी किया जा सकता है।

रसाभिव्यंजन की दृष्टि से विश्वनाथ ने श्रृंगार, वीर, शांत तीनों में से एक रस को प्रधान या अंगी रस होना स्वीकार किया है। अन्य सभी रस अप्रधान रूप से अभिव्यक्त होते हुए अंगीरस को परिपुष्ट करते हुए वर्णित किये जा सकते हैं।

संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत व अपभ्रंश भाषाओं में भी महाकाव्य की रचना की जा सकती है। प्राकृत में रचित महाकाव्य में सर्ग के स्थान पर ''आश्वास'' और अपभ्रंश में ''कुडवक'' शब्दों का प्रयोग किया जाता है। आश्वासों में प्रयुक्त छन्द प्रायः स्कन्धक या गलितक नामक होते हैं। आर्ष महाकाव्यों में सर्ग के स्थान पर ''आख्यान''(पर्व) का प्रयोग हुआ है।

निष्कर्ष :– उपुर्यक्त समस्त आचार्यगणों के ग्रन्थानुसार महाकाव्य के लक्षण का विवेचन करने पर हमें ज्ञात होता है कि भामह से लेकर विश्वनाथ तक महाकाव्य के विषय में अनेक तत्वों को सभी कवियों ने समान स्थान प्रदान किया है जिनमें सर्गयुक्त होना, उदात्तगुणों से युक्त नायक होना, रसादि का वर्णन, इतिवृत्त का प्रख्यात होना (इतिहास पुराण) आदि से ग्रहण होना सभी ने स्वीकार्य किया है। अतः इन सभी लक्षणों में समानता होते हुए कतिपय भिन्नताएँ भी हैं जो लक्षण में प्रतिपादित की जा चुकी है।

महाकाव्य के उपर्युक्त लक्षणों के उपरान्त संस्कृत साहित्य के प्राचीन महाकाव्यों की परम्परा में उल्लेखित महाकाव्यों का विवरण निम्नवत् है :–

प्राचीन महाकाव्य –

आर्ष महाकाव्य :–

1. वाल्मीकि कृत– रामायण
2. वेदव्यास कृत– महाभारत

ये दोनों ग्रन्थ हमारे उपजीव्य काव्य हैं।

महाकाव्यों की प्राचीन परम्परा के सन्दर्भ में कुछ उल्लेख प्राप्त होते हैं–

अपने ग्रन्थ अष्टाध्यायी के सूत्रों में पाणिनि ने शिशुक्रंदीय, यमसभीय तथा इन्द्रजननीय–इन काव्यों का प्रसंगवश उल्लेख किया है। इन काव्यों के वर्णन से ज्ञात होता है कि पाणिनि से पूर्व भी प्रबंधकाव्य की परम्परा में वाल्मीकि की रामायण या व्यास की महाभारत के अतिरिक्त अन्य अनेक काव्यों का निर्माण हुआ था। किन्तु ये काव्य उपलब्ध नही होते हैं। महाकाव्य की रचना करने वाले कालिदास के पूर्व दो महान् कवियों के नाम उपलब्ध होते हैं – पाणिनि तथा वररुचि या कात्यायन।

इन दो व्याकरण शास्त्रियों के द्वारा रचे गये महाकाव्य लुप्त हो चुके हैं। सुदुक्तिकर्णामृत में उद्धृत एक पद्य में दाक्षी पुत्र पाणिनि का नाम सुबन्धु, रघुकार (कालिदास), भवभूति आदि श्रेष्ठ कवियों की श्रेणी में रखा गया है। पाणिनि ने व्याकरण के ग्रन्थ के साथ जांबवतीजय महाकाव्य की भी रचना की थी, कहीं–कहीं पातालविजय नाम के रूप में भी जांबवतीजय महाकाव्य का उल्लेख मिलता है। पं. बलदेव उपाध्याय का कथन है कि – आर्षकाव्यों के पश्चात् जांबवतीजय या पातालविजय संस्कृत का प्रथम महाकाव्य है।[1] यह महाकाव्य श्रीकृष्ण द्वारा पाताल में पहुँचकर स्यमंतक मणि का पता लगाना और जांबवती से उनके विवाह कथा पर आधृत होना प्रतीत होता है।

महाभाष्यकार पतंजलि ने 'वाररुचंकाव्यम्'के नाम से कात्यायन व वररूचि के महाकाव्य का प्रस्तुतीकरण किया है। कुछ विद्वान् कात्यायन के महाकाव्य को

'स्वर्गारोहण' के नाम से भी उद्धृत करते हैं।[2] महाकाव्य का उद्भव ईस्वी पूर्व की अष्टम सदी में ही पाणिनि द्वारा हो चुका था।[3]

उपर्युक्त विवरण के पश्चात् संस्कृत साहित्य के प्राचीन प्रमुख महाकाव्यों का संक्षिप्त अवलोकन प्रस्तुत करेंगे –

1. कालिदास :–

संस्कृत महाकाव्यकारों में कालिदास मूर्धाभिषिक्त महाकवि हैं। महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के ही नहीं, अपितु समग्र भारतीय संस्कृति के आदर्श महाकवि हैं। कालिदास को भारत का शेक्सपीयर कहकर उनके राष्ट्रीय व्यक्तित्व को स्वीकार किया गया है। कालिदास ने दो महाकाव्यों रघुवंश तथा कुमारसम्भव की रचना की है :–

i. **'रघुवंश महाकाव्य'** में 19 सर्ग प्राप्त होते हैं, जिसमें रघु के जन्म से लेकर महाकाव्य का आरम्भ होता है और दिलीप के गोचारण से रघु का जन्म, अज – इन्दुमती विवाह, दशरथ व राम से लेकर अग्निवर्ण तक अनेक राजाओं के चरित्रों का चित्रण कवि ने किया है। इनको 'रघुकार' नाम से अभिहित किया गया है।

ii. **'कुमारसम्भव'** भी 17 सर्गों से युक्त महाकाव्य है जिसमें शिव – पार्वती का विवाह, कार्त्तिकेय का जन्म तथा तारकासुर का वध कथानक के रूप में प्रयुक्त हुआ है। कालिदास का वर्णन वैचित्र्य कुमार सम्भव में माधुर्य तथा प्रसाद गुण से युक्त पूर्ण परिनिष्ठित रूप को प्राप्त हुआ है। महाकवि ने अपने इस महाकाव्य में बाह्य प्रकृति का अत्यन्त मनोरम चित्रण प्रस्तुत किया है।

2. अश्वघोष :–

ये एक बौद्ध कवि थे। महाकवि अश्वघोष ने दो महाकाव्य लिखे हैं – सौन्दरनन्द तथा बुद्धचरित।

(i) सौन्दरनन्द :–यह 18 सर्गों का महाकाव्य है। इस महाकाव्य का कथानक सिद्धार्थ तथा उनके शिष्य आनन्द की प्रेरणा से सिद्धार्थ के छोटे भाई नन्द का अपनी पत्नी सुन्दरी के साथ अपने विलासितापूर्ण जीवन का परित्याग कर बौद्धधर्म में दीक्षित होना दर्शाया गया है। इस महाकाव्य में कवि ने श्रृंगार रस को उत्कृष्ट स्थान प्रदान करते हुए, भाषा की सरलता व भावों की कोमलता को अपनाते हुए सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है।

(ii) बुद्धचरित :–इस महाकाव्य में कुल 28 सर्ग हैं, जिनमें से 17 सर्ग प्राप्त होते हैं। यह बौद्धकाव्यों में सर्वप्रमुख है। 28 सर्गों का सम्पूर्ण महाकाव्य चीनी व तिब्बती भाषा के अनुवाद के रूप में है, जिसको आधार बनाकर 18 से 28 वें सर्ग की कथा को अमृतानन्द योगी ने पुनः संस्कृत में रूपान्तरित किया हैं कवि ने अपने महाकाव्य में भावों व शैली का अत्यन्त सौन्दर्यपूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया है।

3. महाकवि भारवि :–

भारवि अलंकृत काव्यशैली के प्रवर्त्तक होने से संस्कृत – साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। भारवि ने 'किरातार्जुनीय' महाकाव्य की रचना की है जो कि वृहत्त्रयी में माना जाता है। कवि के इस महाकाव्य में उनके अद्‌भुत अर्थ कौशल के दर्शन होते हैं। महाकाव्य का कथानक 'महाभारत' के वनपर्व से उद्‌धृत है, जिसमें द्यूतक्रीड़ा में पराजय के उपरान्त पाण्डवों का द्वैतवन में निवास करने इत्यादि वर्णनों के साथ अन्त में शिवजी द्वारा किरातवेश धारण कर अर्जुन की परीक्षा हेतु उसके साथ युद्ध वर्णन तथा शिवजी को प्रसन्न कर अर्जुन द्वारा पाशुपतास्त्र प्राप्त करने का उल्लेख है।

संस्कृत साहित्य में भारवि का महाकाव्य ही शास्त्रीय लक्षणों की कसौटी पर अधिकाधिक खरा उतरता है, इस महाकाव्य में 18 सर्ग हैं, इसका इतिवृत्त प्रख्यात है और इसका नायक अर्जुन सद्‌वंशी क्षत्रिय है जो कि धीरोदात्त है। इसमें वीररस अंगी है तथा श्रृंगार आदि गौण रस के रूप में है। मुख, प्रतिमुख सन्धियों का प्रयोग

हुआ है। इसमें प्रारम्भ में मंगलाचरण तथा सर्गान्त में छन्द परिवर्त्तन विद्यमान है। प्रकृति वर्णन के मनोरम दृश्यों के साथ यात्रा का भी वर्णन किया गया है।

4. महाकवि भट्टि –

महाकवि भट्टि व्याकरणशास्त्र के ज्ञाता हैं और उनके द्वारा ही संस्कृत में 'शास्त्रकाव्य' लिखने की परम्परा का प्रवर्त्तन हुआ। भट्टि द्वारा रचित 'रावणवध' महाकाव्य जो कि भट्टिकाव्य भी कहलाता है उसके अन्तर्गत मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र के जन्म से लेकर राम के राज्याभिषेक तक की घटना को आधार बनाया है। इस महाकाव्य में 20 सर्ग हैं।

कवि ने इस महाकाव्य का विभाजन चार काण्डों में किया है – प्रकीर्णकाण्ड, अधिकारकाण्ड, प्रसन्नकाण्ड तथा तिङन्तकाण्ड। इसमें प्रकृति के जड़ और चेतन दोनों ही रूपों का अलङ्कृत शैली में वर्णन विद्यमान है साथ ही पात्रों के चरित्र चित्रण में उत्कृष्ट कोटि की प्रतिभा का परिचय प्राप्त होता है। महाकाव्य में कई पात्रों के कथनों में काव्यगत गुणों एवं भाषण – सम्बन्धी विशेषताओं का पूर्ण नियोजन है।

5. महाकवि कुमारदास –

'जानकीहरण' कुमारदास की एकमात्र रचना है। इसके 20 सर्गों में सम्पूर्ण रामायण की घटना निबद्ध है, किन्तु सम्पूर्ण कथा का केन्द्र बिन्दु जानकी के हरण को बनाया गया है। जानकीहरण का समय सप्तम शती का उत्तरार्द्ध माना जाता है।

कुमारदास पर महाकवि कालिदास का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। ये दोनों कवि एक दूसरे के समकालीन माने जाते हैं। राजशेखर ने कवि कुमारदास के विषय में लिखा है –

जानकीहरणं कर्त्तुं रघुवंशे स्थिते सति।

कविः कुमारदासश्च रावणस्य यदि क्षमौ।।

महाकवि व्याकरणपटु होने के कारण अपने महाकाव्य में छन्दों का समुचित प्रयोग करते हैं, जिससे काव्य में सांगीतिक सौन्दर्य दिखायी पड़ता है।

6. महाकवि माघ –

सर्वशास्त्रविशारद महाकवि माघ संस्कृत साहित्य के महाकाव्यकारों में अग्रणी हैं। माघ की एकमात्र रचना 'शिशुपालवध' महाकाव्य संस्कृत – साहित्य की वृहत्त्रयी में सर्वश्रेष्ठ है। इसमें 20 सर्ग है। इस महाकाव्य का कथानक मूलरूप से श्रीमद्भागवत है तथा गौण रूप से महाभारत का सभा–पर्व है। माघ के काव्य में अलंकृतता व कृत्रिमता का उचित समागम देखने को मिलता है अतः माघ संस्कृत साहित्य के कलावादी कवियों में मूर्धन्य माने जाते हैं। 'शिशुपालवध' महाकाव्य में माघ ने कृष्ण व शिशुपाल की शत्रुता तथा युद्धभूमि में श्रीकृष्ण के द्वारा शिशुपाल के वध करने की घटना को अपने काव्य कौशल से मण्डित कर महाकाव्य को श्रेष्ठ रूप प्रदान किया है। वैदग्ध्यपूर्ण काव्यविच्छिति माघ की विशेषता है।

संस्कृत साहित्य में माघ का समय सातवीं सदी का उत्तरार्द्ध माना जाता है। माघ 'पण्डित–कवि' हैं तथा उनके वर्णन में अपूर्ण सजीवता विद्यमान रहती है अर्थात् जड़ चेतन दोनों ही का वर्णन माघ बड़ी ही स्वाभाविकता के साथ करते हैं। संस्कृत साहित्य में अकेले माघ ही ऐसे कवि हैं जिनकी रचना में कालिदास की उपमा का सौन्दर्य, भारवि का अर्थगौरव तथा दण्डी का पदलालित्य यह तीनों ही गुण सर्वोत्कृष्ट रूप में विद्यमान हैं अतः विद्वज्जनों की ''माघे सन्ति त्रयो गुणाः'' यह उक्ति सुप्रसिद्ध है।

7. महाकवि शिवस्वामी –

शिवस्वामी कश्मीर के निवासी होने के साथ ही वहाँ के विद्वान् महाकवि की उपाधि से मण्डित थे। इन महाकवि का जन्म कश्मीर नरेश अवन्ति वर्मा के (858–885 ई.) शासनकाल में हुआ था। इनके द्वारा रचित बौद्ध साहित्य का महाकाव्य 'कफ्फिणाभ्युदय' 20 सर्गों का महाकाव्य है। इसमें दक्षिण देश के राजा कफ्फिण जो कि लीलावती नगर का निवासी है, उसका श्रीवस्ती नरेश प्रसेनजित्

को परास्त करना तथा पुनः बुद्ध की कृपा से प्रसेनजित् का युद्ध में कफ्फिण को हराकर उस पर विजय प्राप्ति का वर्णन इस महाकाव्य में दर्शाया गया है।

अंलकृत महाकाव्य का यह श्रेष्ठ उदाहरण है। वीर व शृंगार रस तथा वैदर्भी रीति का उचित प्रयोग किया गया है। शैली की स्वाभाविकता से काव्य विशिष्ट बन गया है।

8. महाकवि रत्नाकार –

रत्नाकर काश्मीरी कवि है। रत्नाकर का उपनाम 'बालबृहस्पति' भी प्राप्त होता है। यह काश्मीरी नरेश चिप्पट जयापीड के सभापण्डित थे। रत्नाकर बचपन से ही अद्वितीय प्रतिभा के धनी थे। उनको दो कश्मीरी श्रेष्ठ उपाधियाँ प्राप्त थीं –'राजानक' और 'वागीश्वर'। रत्नाकर के पिता का नाम 'अमृतभानु' था।

रत्नाकर की तीन रचनाएँ हैं –हरविजय, वक्रोक्तिप×चाशिका व ध्वनिगाथापञ्जिका। किन्तु इनका हरविजय महाकाव्य ही सुप्रसिद्ध है। काव्यगुणों के चमत्कार की दृष्टि से रत्नाकर का हरविजय श्रेष्ठ एवं अद्वितीय महाकाव्य है। इस महाकाव्य में कुल 50 सर्ग हैं। इसमें भगवान शिव के द्वारा अन्धकासुर नामक राक्षस के वध की कथा को आधार बनाया गया है। रत्नाकार ने अपनी कृति को ''चन्द्रार्धचूडचरिताश्रयचारु'' कहा है। यह महाकाव्य अलंकृत काव्यशैली का श्रेष्ठ उदाहरण है। भाषा का सौन्दर्य, ललित पदों की मैत्री, नवीन चमत्कारी अर्थ की कल्पना, अभिनव वर्णन इत्यादि इस महाकाव्य की विशेषता है।

9. महाकवि पद्मगुप्त परिमल –

काश्मीर निवासी पद्मगुप्त धारा के परमारवंशीय 'वाक्पतिराज' की उपाधि से विभूषित, विद्या–प्रेमी राजा मु ज के सभापण्डित थे। मु ज की विद्वत्ता से पद्मगुप्त अति प्रभावित थे और मु ज नरेश की मृत्यु के उपरान्त उनके अनुज सिन्धुराज जिनका उपनाम 'नवसाहसाऽ' था उसने परिमल महाकवि को अपने राज्याश्रय से

सम्मानित स्थान दिया। सिन्धुराज के प्रति कृतज्ञता स्वरूप परिमलगुप्त ने उनके गुणगान हेतु 'नवसाहसाŠचरित' महाकाव्य की रचना की।

'नवसाहसाŠचरित' 18 सर्गों का प्रथम ऐतिहासिक महाकाव्य है। इस महाकाव्य का वर्ण्य विषय धारा के विश्रुत नरेश भोज के पिता सिन्धुराज के विवाह से सम्बन्धित है जो कि सिन्धुराज ने नागवंशी क्षत्रियों के शत्रु वजांकुश राजा को पराजित कर नागराज शंखपाल की शशिप्रभा नामक राजकुमारी से विवाह किया था। महाकवि की शैली प्रसादमयी तथा हृदय को आकृष्ट करने वाली है। वीर रस के साथ कवि ने श्रृंगार रस का भी श्रेष्ठ प्रयोग किया है।

10. महाकवि अभिनन्द–

काश्मीर निवासी अभिनन्द के विषय में इतिहास में उपलब्ध होता है कि यह एक ही नाम वाले दो व्यक्ति थे। एक तो कादम्बरी–कथासार तथा योगवसिष्ठसार के रचियता अभिनन्द जिनके पिता जयन्तभट्ट थे। दूसरे नाम वाले अभिनन्द के पिता शतानन्द थे। शतानन्द के पुत्र अभिनन्द ने 'रामचरित' नामक 36 सर्गों के महाकाव्य का प्रणयन किया है। यह महाकाव्य अधूरा ही है तथा इसमें किष्किन्धा से लेकर युद्धकाण्ड तक की कथा वर्णित है। रामचरित महाकाव्य में कवि ने अपने कुशल व स्वाभाविकता से युक्त सरल पद्यों का प्रयोग किया है साथ ही वैदर्भी रीति को काव्य में प्रमुख स्थान दिया है। क्षेमेन्द्र के शब्दों में रामचरित महाकाव्य के रचयिता अभिनन्द अनुष्टुप् छन्द के प्रयोग में निष्णात है।

11. महाकवि बिल्हण–

इनका जन्म कश्मीर के खोनमुष ग्राम में हुआ था। इनका समय 11 वीं शती का उत्तरार्द्ध माना जाता है। इनके पिता ज्येष्ठकलश और माता नागादेवी के ये मध्यम पुत्र थे। इनके पिता ज्येष्ठकलश व्याकरणकार थे। बिल्हण का विवाह राजकन्या शशिकला (अन्य नाम–यामिनिपूर्णतिलका) से हुआ था।

बिल्हण ने दक्षिण भारत के कल्याण नगर के चालुक्यवंशीय नरेश विक्रमादित्य षष्ठ का गुणगान अपने काव्य में किया और उसे अपने आश्रयदाता के नाम से मण्डित कर 'विक्रमाŠदेवचरित' महाकाव्य का स्वरूप दिया। बिल्हण की बुद्धिमता से प्रसन्न हो विक्रमादित्य ने उन्हें 'विद्यापति' की उपाधि प्रदान की थी। 18 सर्गों के इस महाकाव्य में कवि ने अंतिम सर्ग में अपनी जानकारी प्रस्तुत की है। इस काव्य में वीर रस प्रधान होने के साथ ही भावों में सहजता, सरलता एवं माधुर्य भी निहित हैं।

12. महाकवि कल्हण–

आढ्यवंशीय ब्राह्मण कल्हण का वास्तविक नाम उनके गुणानुरूप 'कल्याण' था। कल्हण के पिता 'चणपक' काश्मीरी नरेश हर्ष के महामात्य थे। कल्हण बाल्यकाल से ही निष्पक्षवादी थे, फलस्वरूप यह गुण उनके ऐतिहासिक महाकाव्य 'राजतरंगिणी' में भी लक्षित होता है। राजतरंगिणी की रचना महाकवि ने 2 वर्षों (1148–1150 ई.) में पूर्ण की थी। 8 तरंगों में लिखे इस महाकाव्य में आदिकाल से लेकर 12वीं शताब्दी तक के कश्मीर का इतिहास वर्णित है। अंतिम आठवाँ तरंग समग्र ग्रन्थ के परिणाम में बढ़कर है जिसमें उस समय की राजनीतिक स्थिति का वर्णन है।

वर्णनात्मकता से युक्त इस इतिहास प्रसिद्ध महाकाव्य में शान्त रस प्रधान है तथा भावों में पर्याप्त गतिशीलता, अर्थ की सहजता व साहित्यिक चारूता भी दृष्टिगोचर होती है।

13. महाकवि क्षेमेन्द्र–

सरस्वती के वरदपुत्र शारदा देश (कश्मीर) के निवासी व औचित्यविचारचर्चा ग्रन्थ के कर्त्ता क्षेमेन्द्र का जन्म 1000 ईस्वी के लगभग स्वीकार किया जाता है। इनके आदर्श 'महर्षि वेदव्यास' थे। अतः इन्हें 'व्यासदास' भी कहा जाता था। आचार्य अभिनवगुप्त इनके साहित्य गुरु थे और विष्णुतन्त्र के अुनसार इनके दीक्षागुरु 'भागवताचार्य सोमपाद' थे। क्षेमेन्द्र के पुत्र का नाम 'सोमेन्द्र' प्राप्त होता है।

क्षेमेन्द्र ने रामायणमंजरी, भारतमंजरी, बृहत्कथामंजरी, दशावतारचरित तथा अवदानकल्पलता नामक महाकाव्यों का निर्माण, जनमानस को उदात्त चरित्र सम्पन्न तथा शीलवान् बनाने के लिये किया। इनके काव्य में विदग्धता के साथ चारूता भी विद्यमान है। इनके काव्य में वर्ण न होने के पर भी मूलग्रन्थ के बारे में पूर्ण जानकारी का प्राप्त होना कवि की कुशलता को प्रकट करता है। कवि ने अपने काव्य में प्रसादयुक्त शैली को स्थान देकर भावार्थ में कल्पना व रस का गुम्फन किया है।

14. महाकवि म™क–

काश्मीर नरेश जयसिंह के मंत्री म™क के गुरु 'अलŠारसर्वस्व' नामक प्रसिद्ध शास्त्रीय ग्रन्थ के रचयिता 'राजानकरूय्यक' थे। म™क ने 25 सर्गों के महाकाव्य में महादेव और त्रिपुर के युद्ध का बड़ा ही साहित्यिक वर्णन प्रस्तुत किया है। इसका मूल कथानक लघु होने के बाद भी कवि की वर्णनशक्ति से काव्य में रस, वैदर्भी रीति व प्राकृतिक वर्णनों के प्रयोग से यह काव्य श्रेष्ठ प्रतीत होता है। महाकवि का समय 12वीं शती का पूर्वार्द्ध माना जाता है।

15. महाकवि श्रीहर्ष–

अलंकृत काव्यशैली के श्रेष्ठ महाकवि श्रीहर्ष के पिता 'हीर' अतिविद्वान् व माता 'मामल्लदेवी' थीं। इनके पिता काशी नरेश गहड़वालवंशीय भूपति विजयचन्द्र के सभापण्डित थे। हर्ष ने भी कन्नौज नरेश 'जयचन्द्र' का राज्याश्रय प्राप्त किया था। श्रीहर्ष कवि पण्डित हीं नही थे अपितु एक प्रचण्ड साधक व योगी भी थे। हर्ष ने गुरु से दीक्षा लेकर चिन्तामणि मन्त्र को सिद्धकर भगवती त्रिपुरा से अतुलनीय पाण्डित्य का वरदान प्राप्त किया था। काश्मीरवासी इन्हें बड़ा सम्मान देते थे। श्रीहर्ष ने 'नैषधीयचरित' महाकाव्य में 22 सर्गों तथा 2830 श्लोकों में निषध देश के राजा नल के पावन चरित का उत्तम वर्णन किया है। हर्ष ने काशी में अपने महाकाव्य की रचना की थी। नैषधीयचरित की कथावस्तु महाभारत के नलोपाख्यान से ली गयी है इसमें नल–दमयन्ती प्रणय, विवाह, मिलन, विरह, सौन्दर्य–चित्रण इत्यादि का सरस

व मौलिक कल्पनाओं द्वारा वर्णन प्रस्तुत किया है। पद्यों का लालित्य व विदग्धता इसमें एक साथ दिखायी पड़ती है। व्य जनात्मकता, पदों की नादात्मकता, प्रणय की सहजता, सौन्दर्य व नीति बोध इत्यादि की उपलब्धता से नैषधमहाकाव्य विद्वानों के लिये भी औषधि बन गया है इसलिये कहा गया है–

''नैषधं विद्वदौषधम्।''

निष्कर्ष :– उपर्युक्त महाकवियों का महाकाव्य काव्यशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित महाकाव्य के लक्षणों की कसौटी पर खरा उतरता है।

(ii) आधुनिक महाकाव्य परम्परा :– महाकाव्य की परम्परा प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक अक्षुण्ण बनी हुई है। आधुनिक काल के समय सीमा के सन्दर्भ में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कुछ विद्वान् 19 वीं से 20 वीं शताब्दी (दो सौ वर्षों) को आधुनिक संस्कृत साहित्य का काल मानते है।

प्रो.वर्णेकर जी ने अपने मराठी ग्रन्थ 'अर्वाचीन संस्कृत साहित्य' में अर्वाचीन काल का आरम्भ 17 वीं शताब्दी से माना हैं, किन्तु इनके विचार से असहमत आचार्य पं.बलदेव उपाध्याय जी ने अर्वाचीनकाल को 1750 ई. से माना हैं।[1]

मुसलगाँवकर जी बलदेव उपाध्याय से असहमत होते हुए 17वीं शती से आधुनिक काल का प्रारम्भ मानते है। डॉ. हीरालाल शुक्ल ने आधुनिक काल का आरम्भ 19वीं शती (1835) से मानते है।[2] किन्तु अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी ने 1784 ई. से आधुनिक काल का प्रारम्भ माना है। आधुनिक काल को भी उन्होनें पुनर्जागरण काल (1784–1884), स्थापना काल (1884–1950) तथा समृद्धिकाल (1950 – अब तक) के रूप में तीन उपकाल खण्डों में भी विभाजित किया है।[3]

आधुनिक कालखण्ड अर्थात् 1784 से लेकर 1950 और 1950 से लेकर 2000 इस कालखण्ड में महाकाव्य के लेखन की परम्परा अनवरत बनी रही और संस्कृत साहित्य के उद्भट विद्वानों ने अपने मौलिक चिन्तन तथा काल विशेष की धारा के अनुरूप प्राचीन काव्यशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत महाकाव्य के लक्षणों में परिवर्तन, परिवर्धन व समार्जन कर नवीन लक्षण को उपस्थापित किया है। इन तिथियों से आधुनिक काल की तिथि का निर्धारण करना मुश्किल कार्य नहीं है। सुविधा की दृष्टि से इन तिथियों में से 1884 को आधुनिक काल का प्रारम्भ मानते हुए 1884 से लेकर 21वीं शताब्दी तक के महाकाव्यों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करेगें। आधुनिक महाकवियों में अभिराज राजेन्द्र मिश्र, राधा वल्लभ त्रिपाठी, रहस बिहारी द्विवेदी द्वारा महाकाव्य का लक्षण प्रस्तुत किया गया है।

राजेन्द्र मिश्र जी ने अपने ग्रन्थ 'अभिराजयशोभूषणम्' में महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार उद्धृत किया है :–

महाकाव्यलक्षणम् –

सर्गबन्धो महाकाव्यं लोकवन्द्यजनाश्रयम्।

ख्यापयद्विश्वबन्धुत्वं स्थापयद्विश्वम›लम्।।

नायकस्तत्र देवः स्यात्प्रजाबन्धुरथो नृपः।

चारुचर्यो·थवा को·पि सज्जनश्चरितोज्ज्वलः।।

प्रातस्सन्ध्यानिशीथेन्दुभास्करोदयतारकाः।

वनोद्याननदीसिन्धुप्रपाताद्रिबलाहकाः।।

ग्रामाश्रमपुरा·रामदुर्गसैन्यरणोद्यमाः।

पुत्रजन्मादिवृत्तान्ताः पामरावाससšथाः।।

इतिवृत्तानुरोधात्तु वर्णनीया न चा·न्यथाः।

प्रसह्य वर्णने तेषां न च तृप्तिर्न वा यशः।।

यच्छिवं यच्च सत्यं स्यादथवा लोकम›लम्।

वर्णनीयं प्रकल्प्यापि कथांशीकृत्य सादरम्।।

सर्गा अष्टाधिकाः सन्तु कथाविस्तृतिसम्मताः।[1]

अष्टत्रिगुणतां यावत्सर्गसंख्या प्रथीयसी।।

नोद्वेगः कविना कार्यः पाठकानां रसात्मनाम्।

सर्गसंख्यादिविस्तारैर्वर्णनैर्वाऽनपेक्षितैः।।

लोकवृत्तं न हातव्यं मूलवृत्तोपकारकम्।

लोकचित्रणगर्भं हि महाकाव्यं महीयते।।

त्रयाणां पुरुषार्थानां कश्चिदेको भवेद्ध्रुवम्।

महाकाव्यफलं रम्यं धर्मकामार्थसम्मतम्।।

शृ›ारवीरशान्तानां कश्चिदन्यतमो रसः।

सयत्नम›ाकर्तव्यः कविना प्रतिभावता।।[2]

छन्दोऽलङ्कारसन्दर्भा भूरिवैविध्यमण्डिताः।

महाकाव्ये प्रयोक्तव्या भावुकानां प्रतुष्टये।।

लोकोत्तरगुणादर्शः पुरुषो नायको भवेत्।

महीयसी पुरन्ध्री वा नाऽत्र कार्या विचारणा।।

कथावैशिष्ट्यमालक्ष्य समज्ञां नायकस्य वा।

करणीयं महाकाव्यस्याभिधानं यशस्करम्।।

प्रतिष्ठापयितुं नूत्नं महाकाव्ये स्वयं कविः।

आचार्यप्रतिभो नूनं यदि वा भवति क्षमः।।[1]

अर्थात्ः–

लोकवन्द्य नायक पर आश्रित, विश्वबन्धुत्व को प्रख्यापित करने वाला तथा विश्वमंगल की स्थापना करने वाला सर्गबन्ध (प्रबन्ध काव्य) महाकाव्य होता है।

उस महाकाव्य में नायक (कोई) देवता हो, प्रजावत्सल नरपति हो अथवा समुज्जवल चरित वाला तथा सौम्य आचरण वाला कोई सत्पुरुष।

प्रातः, सन्ध्या, अर्धरात्रि, चन्द्रोदय, सूर्योदय, नक्षत्रोदय, वन, उद्यान, नदी सागर, प्रपात, पर्वत, मेघ (इनका वर्णन हो)।

गाँव–गिराँव, आश्रम, नगर, आराम, दुर्ग, सैन्य, रणप्रयाण तथा पुत्रजन्मादि के वृत्तान्त एवं झुग्गी–झोपड़ियों की आपबीती।

(महाकाव्य के) इतिवृत्त के अनुरोध को दृष्टि में रख कर ही वर्णित करना, चाहिये, किसी अन्यरूप (पूर्वाग्रहवश) में नहीं। उनका जबर्दस्ती (अस्वाभाविक) वर्णन करने से न तो (पाठकों को) तृप्ति होगी और नहीं (रचनाकार कवि को) यश प्राप्त होगा।

जो (लोक के लिये) कल्याणकारी हों, जो सत्य हो अथवा लोकमंगलकर हो ऐसी घटनाओं को, चाहें कल्पना ही क्यों न करनी पड़े, मूलकथा का अंश बना कर, आदरपूर्वक वर्णित करना चाहिये।

सर्ग आठ से अधिक हों (परन्तु) कथा – विस्तार के सानुपातिक हों। (मेरी दृष्टि) में आठ का तिगुना अर्थात् चौबीस तक सर्ग संख्या उचित मानी जायेगी (इससे अधिक नहीं)।

रसानुभूति के लिए उत्कण्ठित पाठकों का, कवियों द्वारा सर्ग संख्यादि के (अनपेक्षित) विस्तार तथा अप्रासंगिक वर्णनों द्वारा, उद्वेग नहीं किया जाना चाहिए।

मूल कथा का उपकार करने वाले लोकवृत्तों का परित्याग नहीं करना चाहिये (वस्तुतः) लोकचित्रण से भरे – पूरे महाकाव्य ही प्रशंसनीय होते हैं।

धर्म, अर्थ, काम–इन तीन पुरुषार्थों में से कोई एक निश्चित रूप से महाकाव्य का रमणीय फल (लक्ष्य) होना चाहिये।

प्रतिभाशाली कवि द्वारा शृ›ार, वीर एवं शान्त में से किसी एक को (महाकाव्य का) अंगी रस यत्नपूर्वक प्रतिष्ठित करना चाहिये।

प्रभूत विविधता से श्रीमण्डित छन्दों एवं अलंकारों के सन्दर्भ, पाठकों की हार्दिक तुष्टि के लिये (कवियों द्वारा) महाकाव्य में प्रयुक्त किये जाने चाहिये।

लोकोत्तर गुणों एवं (उच्च) आदर्शों वाला कोई पुरुष नायक होना चाहिये या फिर कोई महीयसी महिला। इस सन्दर्भ में (स्त्री–पुरुष होने का) विचार नहीं करना

चाहिये। (महाकाव्य की) की कथा की विशेषता को दृष्टि में रखकर नायक की कीर्ति को महत्व देते हुए महाकाव्य का यशस्कर नाम रखना चाहिए।

अथवा आचार्य सरीखी प्रतिभा वाला कवि निश्चित रूप से स्वयंमेव (अपने महाकाव्य में) कुछ भी अभिनव (विलक्षण) प्रतिष्ठित करने में समर्थ होता है।

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी जी ने अपने ग्रन्थ 'अभिनवकाव्यालंकार सूत्रम्' के तृतीय अधिकरण में काव्यविशेष विमर्श प्रकरण के अन्तर्गत महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार दिया है –

पद्यात्मकं समग्रजीवननिरूपणपरं महाकाव्यम्। गीतैतिह्य–पुराणलोककथाभेदादस्य नानात्वम्।[1]

अनुवाद –पद्यात्मक और समग्र जीवन का निरूपण करने वाला महाकाव्य होता हैं। गीता, ऐतिह्य, पुराण, लोककथा आदि के भेद से यह अनेक प्रकार का है।

यह महाकाव्य ही कवित्व की पराकाष्ठा को प्रकट करता है। जैसे रामायण और महाभारत। अथवा जैसे कालिदास का रघुवंश। ग्रीकभाषा में रचे गये होमर कवि के ओडिसी और इलियट् दोनों ही महाकाव्य हैं। इसमें जीवन के समग्र रूप का निरूपण करना चाहिए। उसी से इसमें महावाक्यता आती हैं और वही महावाक्यता अलंकार हैं। इन तीनों आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक लोकों का समग्र समुल्लास जीवन है।

महाकवि ने महाकाव्य के अनेक भेद किए हैं–

गीतापुराणलोककथाभेदादस्य नानात्वम् इति।

तत्र गीतामहाकाव्यं प्रथमम्। तल्लक्षणं यथा –

स र्षे तुमुले द्वन्द्वे युगीने समुपस्थिते।

देशजातिसमाजानामवस्थां निर्दिशत् क्रमात्।।

वर्णयत् तत्प्रस›न महापुरुषजीवनम्।

विश्वरूपं वैश्विकं वाऽपि दर्शनं कर्मणां गतिम्।।

कर्मयोगस्य तत्त्वं च सकलं समुदाहरत्।

गीता नाम महाकाव्यभेदो ज्ञेयो बुधैरसौ।।

सर्गा अष्टादशप्राया भवन्त्यध्यायसंज्ञकाः।।[1]

यथा श्रीमÚगवद्गीता वेदव्यासकृता। यथा वा क्षमारावपण्डितायाः सत्याग्रहगीता, उत्तरसत्याग्रहतीता वा। यथा वा ममैव सत्यानन्दगीता। इतिहासकथाश्रितमैतिहासिकं महाकाव्यं यथा रघुवशंः, लेनिनामृतं वा। पौराणिकं वृत्तमाश्रित्य रचितं पौराणिकं यथा किरातार्जुनीयं शिशुपालवधं वा। लोककथाश्रितं यथा बृहत्कथा, कथासरित्सागरो वा।[2]

अनुवाद – अतः कहा गया है – गीता, पुराण और लोककथा आदि के भेद से इसका नानात्व है। इनमें गीता महाकाव्य प्रथम है। उसका लक्षण जैसे – महासंग्राम के उपस्थित होने पर क्रमशः देश, जाति और समाज की अवस्था का निर्देश करने वाला, उस प्रसंग में महापुरुषों के जीवन का वर्णन करने वाला, विश्वरूप या वैश्विक दर्शन कराने वाला, कर्म की गतियों का निर्देश करने वाला, कर्मयोग के समस्त तत्त्व को उदाहृत करने वाला यह महाकाव्य विद्वानों के द्वारा गीता नाम से जाना जाता हैं। इसमें अध्याय संज्ञक अठारह सर्ग होते हैं।

जैसे – वेदव्यास कृत श्रीमÚगवद्गीता, पंडिता क्षमाराव कृत सत्याग्रह गीता इसी का उदाहरण हैं। इतिहासकथाश्रित ऐतिहासिक महाकाव्य जैसे रघुवंश या लेनिनामृत। पौराणिक कथा पर आश्रित महाकाव्य जैसे किरातार्जुनीय और शिशुपालवध। लोककथाश्रित जैसे बृहत्कथा या कथासरित्सागर आदि।

डॉ.रहसबिहारी द्विवेदी जी द्वारा दूर्वा के द्वितीयोन्मेष में साहित्यसमीक्षण के 'नव्यकाव्यतत्वविमर्श' के अन्तर्गत भी महाकाव्य का लक्षण दिया गया है जो इस प्रकार है–

सर्गैर्वृत्तैश्च बद्धं सहृदयहृदया[illegible]दिशब्दार्थरम्यं,

संवादैश्चोच्चशिल्पैः सततरसमयं ग्रन्थिमुक्तं समृद्धम्।

पात्रं स्याद् यस्य मुख्यं परमगुणयुतं लोकविख्यातवृत्तं

भव्यं लोकस्वभावं महदपि महतां तन्महाकाव्यमास्ते।[1]

इस लक्षण के अनुसार ऐसी प्रबन्ध रचना 'महाकाव्य' है।

1. जो छन्दोबद्ध और सर्गबद्ध हो अर्थात् जो वस्तु के तद्गत विषय के अनुरूप अन्योन्य सम्बद्ध किन्तु स्वयं में किसी विशिष्ट घटना या वर्णन से पूर्ण और तद्पेक्षित समान, लघु अथवा दीर्घ अनेक खण्डों में विभक्त हो।
2. जो सहृदय (पाठक अथवा श्रोता) के हृदय को आ।ादित करने में समर्थ शब्दों और अर्थों से रमणीय हो।
3. जिसमें अधिकाधिक संवादों की योजना हो क्योंकि संवादों में पात्रों का व्यक्तित्व अनावृत रूप से पाठकों के समक्ष उपस्थित होता है।
4. जिसका शिल्प विधान (वस्तु के मार्मिक स्थलों की परख, अभिव्यंजना, जीवन दर्शन, युगोचित पात्र चरित्र विकास आदि) उच्चस्तरीय हो।
5. जो निरन्तर (प्रारंभ से अन्त तक) अन्वितिपूर्ण और रसमय (आ।ादक) हो।
6. जो क्लिष्ट प्रयोगों (सुकुमारमति पाठकों के अर्थावबोध में बाधक शब्दों, अर्थों और शास्त्रीय गुत्थियों) से रहित हो।
7. जो समस्त वैभवों (नागरिक और प्राकृतिक वस्तु सम्पृक्त सन्तुलित वर्णनों) से सम्पन्न हो।
8. जिसका प्रमुखपात्र (नायक, किसी भी जाति, वंश), स्थान या लिंग (स्त्री या पुरुष) का हो किन्तु (अपने उदात्त कार्यों से) लोकविख्यात (केवल लोक में विख्यात मात्र नहीं उसे काव्य में तथाविध पल्लवित किया गया हो) और श्रेष्ठ गुणों (मानवीय मूल्यों जिन्हें लोक श्रेष्ठ स्वीकार करता हो) से समन्वित हो।

9. जो कल्याणकारी (मंगलमय) हो।

10. जो लोकोचित स्वभाव (यथार्थ और औचित्य) से समन्वित हो।

11. जिसका (वस्तुविषय, पात्र, चित्रण, रचना शिल्प और उद्देश्य) महान् से भी महान् हो।

निष्कर्ष :–

उपर्युक्त लक्षणों के आधार पर हम कह सकते है कि अर्वाचीन महाकवियों ने कुछ प्राचीन तथ्यों को स्वीकार करते हुए उसमें जीवन की वास्तविक दशाओं, देशकाल की स्थिति के अनुसार कथानक को अंगीकृत कर उसे महाकाव्य का कथानक बनाया है। सर्गों की संख्या (विश्वनाथ के अनुसार) आठ से कम नहीं होना चाहिये। किन्तु आधुनिक महाकाव्यकार मिश्रजी ने अपने लक्षण में सर्गों की संख्या आठ या इसकी तिगुनी चौबीस कहकर इसकी अतिव्यापकता को विस्तृत कर दिया है।

आधुनिक महाकाव्य –

प्राचीन महाकवियों की तरह ही हम अर्वाचीन महाकाव्यकारों तथा उनके महाकाव्यों के विषय में संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करेगें। इसमें हम 1884 से लेकर 21 वीं शताब्दी के महाकाव्यों का निरूपण करेगें। इस काल के कवियों ने प्राचीन परम्परा का अनुसरण तो किया किन्तु उनकी लेखनी में सामयिक चेतना के अनुकूल कथा वस्तु को ढालने की विशेष प्रवृत्ति लक्षित होती है। आधुनिक महाकाव्य परम्परा के महाकवियों का काल क्रमानुसार एवं महाकवियों की कृतियों का काल क्रमानुसार जो तथ्य उपलब्ध हो सका है उसका विवरण निम्नवत् है। आधुनिक महाकवियों और उनके महाकाव्यों का विवरण दो ग्रन्थों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है–

1. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास–डॉ. जगन्नाथ पाठक एवं श्रीबलदेव उपाध्याय सप्तम खण्ड जो कि उत्तरप्रदेश संस्कृत संस्थान लखनऊ से सन् 2000 में प्रकाशित है।
2. आधुनिक साहित्य संदर्भ सूची–राधावल्लभ त्रिपाठी जो कि राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान नई दिल्ली से सन् 2012 में प्रकाशित है।

अतः अधोलिखित विवरण में हम काल क्रमानुसार महाकाव्यों व महाकवियों का अध्ययन प्रस्तुत करेंगे। जो कि इस प्रकार है –

1. **रामनाथ तर्करत्न** (शान्तिपुर बंगाल 1840–50) कालिदास विद्यावागीश के सुपुत्र इस कवि ने अठारह सर्गों में 'वासुदेवविजय' महाकाव्य की रचना की। इस महाकाव्य की रचना कवि ने 1883 में की थी तथा 1890 में प्रकाशित हुआ था।
2. **अन्नदाचरण तर्कचूडामणि** –1862 में इनका जन्म पूर्वी बंगाल के नोआखाली जिले के सोमपाड़ा ग्राम में हुआ। इनके दो महाकाव्य 'रामाभ्युदयम्' और 'महाप्रस्थानम्'। रामाभ्युदयम् इसमें 19 सर्ग हैं। रामाभ्युदयम् महाकाव्य का प्रकाशन सन् 1897 ई. में नोआखली से हुआ। महाप्रस्थानम् महाभारत कथा पर आधारित हैं तथा इसमें पाण्डवों के स्वर्गारोहण की कथा हैं। इसमें 22 सर्ग हैं।

3. **अखिलानन्द शर्मा–(1880–1955)** कवि ने आर्यसमाज के प्रतिष्ठापक स्वामी दयानन्द सरस्वती के चरित को आधार बनाकर 'दयानन्द–दिग्विजय' नामक 21 सर्ग के महाकाव्य का प्रणयन किया। यह महाकाव्य प्रथम बार इण्डियन प्रेस, प्रयाग से सन् 1906 में और बाद में आर्य धर्म प्रकाशन, सामली से 1970 में प्रकाशित हुआ।

4. **महासेन आचार्य–** 'प्रद्युम्न चरितम्' सम्पादक मनोहरलाल शास्त्री, रामप्रसाद शास्त्री, माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला समिति बॉम्बे से 1916 में प्रकाशित।

5. **सखाराम शास्त्री भागवत** (महाराष्ट्र 1886–1935) सत्रह सर्गों में निर्मित 'अहल्याचरित' महाकाव्य में इस विधा की परम्परा से कुछ हट कर कवि ने इस रचना को गुरु–शिष्य–संवाद के रूप में प्रस्तुत किया हैं। गोविन्द रामचन्द्र राजोपाध्याय ने सतारा से सन् 1927 में प्रकाशित किया।

6. **भुवनेश्वर रथ–** 'श्री लक्ष्मण परिणय' महाकाव्य, राधाप्रिंटिंग ट्रस्ट, पद, कटक से 1924 में प्रकाशित।

7. **हेमचन्द्रराय–** 'पाण्डवविजयम्' महाकाव्य, पटना से 1930 में प्रकाशित।

8. **काली कुमार भट्टाचार्य विद्या भूषण–** 'राजसूयाभिषेकम्' महाकाव्य, श्री पुस्तकालय, धुवरी, आसाम से 1935 में प्रकाशित।

9. **टी.एस.सुन्दरेश शर्मा–** 'श्रीत्यागराजचरित्' महाकाव्य, जनरल स्टोर, तंजौर से 1937 में प्रकाशित।

10. **मेधाव्रत–** (महाराष्ट्र 1896–1964) कवि ने 'दयानन्ददिग्विजय' तथा 'ब्रह्मर्षिविरजानन्दचरित' नाम के दो महाकाव्यों का प्रणयन किया। दयानन्द दिग्विजय का पूर्वार्ध प्रकाशन 1938 ई. में आर्य कन्या महाविद्यालय से तथा उत्तरार्ध का 1947 ई. में प्रकाशन हुआ।

11. **बदरीनाथ झा –** (बिहार 1893–1974) 'कविशेखर' की उपाधि से विभूषित कविवर झा का जन्म मधुबनी मण्डल के सरिसब ग्राम में हुआ। इनका संस्कृत

का महाकाव्य 'श्रीराधापरिणय' और मैथिली का 'एकावलीपरिणय'। श्रीराधापरिणय महाकाव्य बीस सर्गों का है और इसका प्रकाशन 1939 ई. में विजय प्रेस, मुजफ्फरपुर से हुआ।

12. **क्षमाराव** (महाराष्ट्र 1890–1954) इनके महाकाव्य हैं– 'शङ्करजीवनाख्यानम्' और 'उत्तरसत्याग्रहगीता–। 'शङ्करजीवनाख्यानम्' महाकाव्य में 17 उल्लास हैं और इसका प्रकाशन 1939 में 27 न्यूमरीनलेन बम्बई से हुआ है। उत्तरसत्याग्रहगीता महाकाव्य का प्रकाशन हिन्द किताब्स बम्बई से सन् 1948 में हुआ। इनके अन्य महाकाव्य हैं– 'श्रीतुकारामचरितम्' सन् 1950 में प्रकाशित, 'श्रीरामदासचरितम्' सन् 1953 में प्रकाशित और 'श्रीज्ञानेश्वरचरितम्' सन् 1955 में प्रकाशित – ये तीनों ही रचनाएँ महाराष्ट्र के तीन महान् सन्तों के जीवन पर आधारित हैं। नौ सर्गों में लिखित श्रीतुकारामचरित में उनके जीवन की विविध घटनाओं का वर्णन हैं। श्रीरामदासचरितम् में तेरह सर्ग हैं। श्रीज्ञानेश्वरचरितम् में आठ सर्ग हैं। 'स्वराज्य विजयम्' महाकाव्य न.मा.त्रिपाठी प्राईवेट लिमिटेड प्रिन्सेज स्ट्रीट बॉम्बे से 1962 में प्रकाशित।

13. **सी.सुन्दर शास्त्री** – 'सुन्दर रामायण' भद्रपुरी से 1940 में प्रकाशित।

14. **हरिदास भट्टाचार्य सिद्धान्तवागीश** – 'रुक्मिणी हरणम्' महाकाव्य, सम्पादक हेमचन्द्र भट्टाचार्य तर्कवागीश कलकत्ता से 1943 में प्रकाशित।

15. **मुरारि गुप्त** – 'कृष्णचैतन्यचरितामृतम्' महाकाव्य सम्पादक मृणाल – कान्तिघोष, कलकत्ता से 1944 में प्रकाशित।

16. **के.एस.नागराजन्** (कर्णाटक) – 16 सर्गों में रचित इनका 'श्रीसीतास्वयंवरम्' महाकाव्य वी.वी.सुब्बैया एण्ड सन्स, बैंगलूर द्वारा सन् 1949 में प्रकाशित है। दूसरी महाकाव्य रचना 'श्रीलवलीपरिणयम्' 1975 में नं. 11/12 चारक्रास, विल्सन गार्डन, बैंगलोर से प्रकाशित हुई। श्री नागराजन् ने सन् 1949 में कल्याणपुर बैंगलोर से प्रकाशित सतीस्वयंवरम् महाकाव्य को भी लिखा।

17. **गंगा प्रसाद उपाध्याय** (उत्तर–प्रदेश 1881) – कवि उपाध्याय का जन्म एटा जिले के नदरई गाँव में कायस्थ परिवार में हुआ। इनके द्वारा रचित 'आर्योदय' महाकाव्य कलाप्रेस, इलाहाबाद से 1951 में प्रकाशित तथा दो भागों में विभक्त हैं। पूर्वार्द्ध में दस सर्ग और उत्तरार्द्ध में 11 सर्ग हैं।

18. **भगवदाचार्य** (पंजाब 1880–1977) – स्यालकोट (अब पाकिस्तान) में जन्मे भगवदाचार्य का पूर्व नाम सर्वजित था। उनके द्वारा तीन खण्डों में निर्मित विशाल 'श्रीमहात्मगान्धिचरित' 1951 में प्रकाशित हैं। श्रीमहात्मगान्धिचरित के तीन भागों के नाम हैं – 1. भारतपारिजात (25 सर्ग) 2. पारिजातापहार (29 सर्ग), 3. पारिजातसौरभ (20 सर्ग)।

19. **सीताराम भट्ट** – इनका 'नृपविलास' महाकाव्य 16 सर्गों में पूर्ण हुआ है। 'नलविलास' महाकाव्य में 32 सर्ग हैं। 'राघवचरित्रम्', श्रीराम के कथानक पर आधारित है। 'जयवंशमहाकाव्य' एक ऐतिहासिक महाकाव्य है तथा इसमें 19 सर्ग हैं कवि ने अपने आश्रयदाता सवाईजयसिंह तृतीय और उनके वंशजों के कथानक को आधार बनाया हैं। जयवंश महाकाव्य राजस्थान विश्वविद्यालय से पण्डित पट्टाभिराम शास्त्री द्वारा सम्पादित होकर 1952 में प्रकाशित हुआ।

20. **के.एस.कृष्णमूर्ति** – 'सतीचरितम्' महाकाव्य, रामकृष्ण प्रेस, मदुराई से 1953 में प्रकाशित। इन्हीं का 'सीताचरितम्' महाकाव्य, मदुराई से भी 1953 में प्रकाशित है।

21. **नारायण शास्त्री** – इनकी रचना 'श्रीशैलजगद्गुरुचरित' महाकाव्य है जो 19 सर्गों में निबद्ध हैं तथा 1953 में बंगलोर से प्रकाशित है।

22. **विद्याधर शास्त्री** (राजस्थान, 1901) – इनका 'हरनामामृतम्' महाकाव्य 16 सर्गों में विभक्त है तथा पितामह पं. हरनाम दत्त के जीवन–चरित पर आधारित है। इस महाकाव्य का प्रकाशन सन् 1955 में विद्याधर शास्त्री, सरस्वती सदन, अरवल सागर, बीकानेर से हुआ है।

23. **परमेश्वरन् मूत्ततु** – इनका समय केरल में 1816 से 1883 तक का है। इन्होंने आठ सर्गों में 'रामवर्ममहाराजचरित' काव्य का निर्माण किया, जो आइल्यम तिरूनाल महाराज (1860–1880) के जीवन–चरित पर आधारित है। इसमें वर्ि चराज्य की कथा भी वर्णित है। इस काव्य को म.म.पण्डित वेङ्कट राम शर्मा ने सम्पादित करके तिरूवनन्तपुर (त्रिवेन्द्रम) से सन् 1957 में प्रकाशित किया।

24. **उमापति शर्मा द्विवेदी** (उत्तर प्रदेश, 1898)– अपनी काव्य–लेखन की सफल प्रवृत्ति के कारण इन्हे 'कविपति' कहा गया। इनके द्वारा 21 सर्गों में लिखित 'पारिजातहरण' महाकाव्य 1957 ई. में प्रकाशित हुआ, जिसे प्रकाशित किया, श्रीललन शर्मा पाण्डेय, व्यवस्थापक गोस्वामी तुलसीदास महाविद्यालय, पड़रौना (देवरिया) ने।

25. **रामस्नेहीदास** – 'जानकीचरितामृतम्' महाकाव्य का प्रकाशन फैजाबाद से सन् 1957 में हुआ।

26. **भवानीदत्त शर्मा** (बिहार)– कवि शर्मा ने नौ सर्गों के महाकाव्य 'सौमित्रिसुन्दरीचरित' की रचना की। उर्मिला के जीवन पर आधारित यह संस्कृत का दूसरा महाकाव्य हैं। इस महाकाव्य का मुज्जफरपुर से सन् 1958 में हुआ।

27. **पाण्डुरंग शास्त्री डेग्वेकर** (महाराष्ट्र) – पूना के निवासी कवि डेग्वेकर ने महाभारत से गृहीत मूल कथानक पर आधारित तथा 10 सर्गों मे निबद्ध 'श्रीकुरुक्षेत्र' महाकाव्य (1959) की रचना की हैं। पूरी रचना में राष्ट्रीय चेतना को प्रश्रय मिला है।

28. **रेवाप्रसाद द्विवेदी** (मध्य प्रदेश 1935) – कविवर द्विवेदी का जन्म भोपाल के निकट 'नादनेर' ग्राम में हुआ। इनके दो महाकाव्य प्रकाशित हुए – 'सीताचरित' महाकाव्य जिसका प्रथम संस्करण सागर विश्वविद्यालय (सागर) की संस्कृत परिषद् द्वारा सन् 1960 में प्रकाश में आया और उसका षष्ठ परिष्कृत संस्करण कालिदास संस्थान, 28 महामनापुरी, वाराणसी से 'उत्तरसीताचरितम्' के नाम से सन् 1990 में प्रकाशित हुआ हैं। दूसरा महाकाव्य 'स्वातान्त्र्यसम्भव' उक्त

कालिदास संस्थान से 1990 में प्रकाशित हुआ है, जिस पर कवि को साहित्य अकादमी, नई दिल्ली का प्रतिष्ठित पुरस्कार और के.के.विरला फाउण्डेशन, नई दिल्ली का वाचस्पति पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं।

29. **रामबालक शुक्ल** – 'जयदेवकीर्तिलतामहाकाव्यम्', जयदेव वैष्णव संस्कृत कॉलेज, चित्रकूटधाम, कर्वी, उत्तर–प्रदेश से 1960 में प्रकाशित।

30. **सत्यव्रत शास्त्री** (1930) – आपकी रचना 'श्रीगुरुगोविन्दसिंहचरित' जो कि 1967 में रचित है। पर साहित्य अकादमी पुरस्कार, 1968 में प्राप्त हुआ। चौदह सर्गों का प्रथम महाकाव्य 'श्रीबोधिसत्वचरित' पालि–साहित्य की (और संस्कृत में भी प्राप्त होने वाली) कुछ जातक कथाओं पर आधारित हैं। इस महाकाव्य का प्रथम प्रकाशन सन् 1960 में हुआ, दूसरी बार 1973 में मेहरचंद लछमनदास, दरियागंज दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुआ। कवि की दूसरी महाकाव्य कृति है – 'इन्दिरागान्धीचरित', जिसमें 25 सर्ग हैं। यह महाकाव्य सन् 1976 में भारतीय विद्या प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित है। 'श्रीरामकीर्तिमहाकाव्य' 25 सर्गों में पूर्ण हुआ है। यह मूल थाईदेश की रामायण पर आधारित है। इस महाकाव्य का प्रकाशन सन् 1990 में मूलामल सचदेव प्रतिष्ठान और अमरनाथ सचदेव प्रतिष्ठान, बैंकॉक द्वारा हुआ है।

31. **जैनमुनि ज्ञानसागर आचार्य** – 'जयोदयम् महाकाव्य', सम्पादक हीरालालसिद्धनाथ शास्त्री, श्री दिगम्बर समिति अजमेर राजस्थान, वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट जयपुर से 1960 में प्रकाशित, द्वितीय संस्करण 1994 में प्रकाशित।

32. **हरिप्रसाद द्विवेदी शास्त्री** (उत्तर–प्रदेश 1892) – इन्होंने 11 सर्गों में 'गोस्वामितुलसीदासचरितं' महाकाव्य का निर्माण किया। यह महाकाव्य साहित्य संघ, कासगंज उत्तर – प्रदेश से सन् 1961 में प्रकाशित हुआ।

33. **कालीपद तर्काचार्य** – (1888) इनके दो महाकाव्य हैं– 'सत्यानुभाव' और 'योगिभक्तचरित'। सत्यानुभाव प्रसिद्ध पौराणिक सत्यनारायण कथा पर आधारित एवं 24 सर्गों में रचित हैं। इसकी रचना सातवें दशक में हुई और संस्कृत

साहित्य परिषद कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। योगिभक्त चरित महाकाव्य 1961 में श्री नागेन्द्रमठ, राममोहनराय रोड़ गड़ पार कलकत्ता से प्रकाशित हुआ।

34. **श्रीआत्माराम शास्त्री** – 'सावित्रीचरितम्' महाकाव्य बॉम्बे से 1961 में प्रकाशित।

35. **रघुनन्दन शर्मा** (उत्तर प्रदेश) – इन्होंने जैन तेरापन्थ सम्प्रदाय के संघाधिनायक आचार्य श्री तुलसी के जीवन–दर्शन पर आधारित 'श्रीतुलसीमहाकाव्यम्' की रचना की जिसमें 25 सर्ग हैं। जो सन् 1962 में प्रकाशित हुआ।

36. **साधुशरण मिश्र** (बिहार) – मिश्र जी ने 19 सर्गों में निबद्ध 'गान्धिचरित' महाकाव्य की रचना की इसका प्रकाशन 1962 में हुआ।

37. **विश्वनाथ केशव छत्रे** (महाराष्ट्र, 1906) – कवि छत्रे ने दस सर्गों में रचित 'सुभाषचरित' महाकाव्य के अतिरिक्त तीन और महाकाव्य, 15 सर्गों में उपनिबद्ध एकनाथचरित, श्रीसातवलेकरचरित, भारतीयस्वातन्त्र्योदय लिखे। एकनाथचरित का 9 सर्गों का प्रथम भाग प्रकाशित हुआ और बारह सर्गों के श्रीसातवलेकरचरित का निर्माण 1983 में पूरा हुआ, किन्तु यह अप्रकाशित हैं। सुभाषचरित महाकाव्य का प्रकाशन लोकमान्य नगर बम्बई से सन् 1963 में हुआ।

38. **लोकनाथ शास्त्री** – 'गाँधीविजयम् महाकाव्य', सम्पादक कृष्णकान्त चतुर्वेदी जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर से 1964 में प्रकाशित।

39. **विष्णुदत्त शर्मा** – 'गंगासागरीयम् महाकाव्य', अभिनव साहित्य प्रकाशन सागर, से 1964 में प्रकाशित।

40. **सूर्यनारायण शास्त्री** – 'नन्दचरितम् महाकाव्य', हैदराबाद से 1964 में प्रकाशित।

41. **क्षेमधारिसिंह शर्मा** (1893–1961) दुर्गासप्तशती के प्रथम अध्याय और त्रयोदश अध्याय के कथाभाग को कवि ने आधार बनाकर 18 सर्गों में 'सुरथचरित' महाकाव्य की रचना की, जो क्षेमधारिस्मृतिप्रकाशन, मधुबनी (बिहार) से 1967 में प्रकाशित हुआ।

42. **श्यामवर्ण द्विवेदी** (1916–1975 ई. उत्तर प्रदेश) – कवि द्विवेदी ने 'विशालभारत' महाकाव्य का निर्माण किया, जिसका प्रथम भाग जवाहरदिग्विजयम् है। इस महाकाव्य का प्रकाशन गौरखपुर से सन् 1967 में हुआ।

43. **रघुनाथप्रसाद चतुर्वेदी** – (1911–1988 ई.) मथुरा से 1967 में प्रकाशित कवि द्वारा निर्मित 'जवाहरज्योतिर्महाकाव्य' 21 सर्गों में विभक्त है।

44. **विद्यानिधि शास्त्री** – 'गाँधीचरितामृतम्' महाकाव्य, भारतोदय पत्रिका से 1967 मे प्रकाशित।

45. **जग्गू बकुलभूषण (जग्गू अलवार अयंगार) (कर्णाटक 1902–1993)** – संस्कृत में कई दशकों से लेखन में प्रवृत्त श्री बकुलभूषण का 15 सर्गों का 'अद्भुतदूतम्' महाकाव्य 1968 में प्रकाशित हुआ।

46. **पी.उमामहेश्वर शास्त्री** (आन्ध्र प्रदेश) – इनका 'कंससंहारमहाकाव्य' 1968 में प्रकाशित हुआ जो 18 सर्गों का है।

47. **प्रभुदत्त शास्त्री** – 'गणपतिसम्भवम्' महाकाव्य, दिल्ली से 1968 में प्रकाशित।

48. **मुनिज्ञानसागर** – 'वीरोदयम्' महाकाव्य, दिगम्बर जैन प्रकाशन, ब्यावर राजस्थान से 1968 में प्रकाशित।

49. **नित्यानन्द** – 'श्रीहरिसम्भवम्' महाकाव्य, वाराणसी से 1968 में प्रकाशित।

50. **विन्ध्येश्वरीप्रसाद मिश्र** (बिहार) – इन्होंने महाभारत और पद्मपुराण में प्राप्त कर्ण और अर्जुन के बीच युद्ध से सम्बद्ध कथानक को लेकर 22 सर्गों में 'कर्णार्जुनीय' महाकाव्य की रचना की। इस महाकाव्य का प्रकाशन वाराणसी से 1968 में हुआ। इनकी दूसरी महाकाव्य–रचना 'महर्षिज्ञानानन्दचरित' है, जो 23 सर्गों में प्रस्तुत हुई है। दूसरे महाकाव्य का प्रकाशन श्री – भारतधर्ममहामण्डल, जगतगंज, वाराणसी से सन् 1968 में हुआ।

51. **ब्रह्मानन्द शुक्ल** (उत्तर प्रदेश, 1904–1970) – 'श्रीनेहरूचरित' महाकाव्य में भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू के जीवन चरित को आधार बनाया

गया हैं। इस महाकाव्य का प्रकाशन शारदासदनम् 38 राधाकृष्ण, खुरजा (उ.प्र.) से सन् 1969 में हुआ।

52. **माधव श्रीहरि अणे** (महाराष्ट्र, 1880–1968) – उनका 'श्रीतिलकयशो·र्णवः' महाकाव्य तीन खण्डों में क्रमशः 1969, 1970, 1971 में, 85 तर^{3}गों में प्रकाशित हुआ।

53. **छज्जुराम शास्त्री** (1905, हरियाणा) – कवि शास्त्री ने दो पौराणिक महाकाव्यों की रचना की 'परशुरामदिग्विजय' तथा 'शिवकथामृतम्'। प्रथम रचना 12 सर्गों में निबद्ध हैं तो दूसरी में 15 सर्ग हैं। प्रथम महाकाच्य का प्रकाशन दिल्ली से सन् 1969 में हुआ।

54. **बालकृष्ण भट्ट** (उत्तर–प्रदेश) – इनके द्वारा रचित सत्ताइस सर्गों का 'कनकवंश' महाकाव्य स्वयं कवि द्वारा ग्राम जाखौली पट्टी भरदार, पोस्ट जारवाल, भरदार, जिला टिहरी गढ़वाल से चार भागों में प्रकाशित कराया गया है – 1952, 1954, 1961, तथा द्वितीय संस्करण 1969 में। कवि भट्ट का स्वतन्त्रभारतम् नाम का खण्ड काव्य दो भागों में विभक्त है। कवि ने इसे 'भारतस्वातन्त्र्यालोक' भी कहा है।

55. **रामसेवक मालवीय** – 'भूभामिनी विभ्रमम्', फैजाबाद से 1970 में प्रकाशित।

56. **द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री** (1892–1963, उत्तर प्रदेश) – कवि ने 'स्वराज्यविजय' महाकाव्य की रचना की। इसमें 20 सर्ग हैं यह महाकाव्य मेरठ से सन् 1971 में प्रकाशित है।

57. **श्रीकृष्ण प्रसाद शर्मा घिमिरे** (नेपाल) – इन्होंने चार महाकाव्यों का प्रणयन किया –श्रीकृष्णचरितामृतम्, वृत्रवधम्, ययातिचरितम् तथा नाचिकेतसम्। श्रीमद्भगवत के कथानक पर आश्रित 58 सर्गों में निबद्ध 'श्रीकृष्णचरितामृत' एक विशाल महाकाव्य हैं। इसी प्रकार नाचिकेतस कठोपनिषद् के यम–नचिकेता संवाद को

आधार बनाकर 28 सर्गों में निबद्ध है। इन चारों महाकाव्यों का प्रकाशन सन् 1971 में श्रीकृष्ण ग्रन्थ माला, काठमाण्डू से हुआ है।

58. **के.बालराम पन्निकर** – इनके द्वारा रचित 'श्रीनारायणविजय' नाम का 21 सर्गों का महाकाव्य है, जो केरल के प्रसिद्ध समाजसुधारक एवं संत श्रीनारायण गुरु के जीवन तथा शिक्षा पर आधारित है। यह महाकाव्य 1971 ई. में त्रिवेन्द्रम से प्रकाशित किया।

59. **श्रीधर भास्कर वर्णेकर** – छत्रपति शिवाजी के गौरवमय चरित्र पर निर्मित, 68 सर्गों का इनका महाकाव्य 'श्रीशिवराज्योदय' महाकाव्य है। 'श्रीशिवराज्योदय' महाकाव्य शारदा गौरव ग्रन्थमाला, 424 सदाशिवमेठ, पूना से सन् 1972 में प्रकाशित हुआ। इस पर उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार नई दिल्ली द्वारा प्राप्त हुआ।

60. **उमाशङ्कर शर्मा त्रिपाठी** (1922–1982 उ.प्र.) – इन्होंने शिवाजी के चरित्र पर आधारित 'क्षत्रपतिचरित' महाकाव्य की रचना की। 21 सर्गों के क्षत्रपतिचरित महाकाव्य का प्रकाशन काशी विद्यापीठ वाराणसी से सन् 1972 में हुआ है।

61. **त्र्यम्बक आत्माराम भण्डारकर** (महाराष्ट्र 1897) कवि भण्डाकर ने 'विद्यार्थी' नाम से ''आत्मचरित'' का प्रणयन किया हैं, जो तारा प्रिंटिंग वर्क्स वाराणसी से 1973 में मुद्रित हुआ हैं। कवि भण्डारकर द्वारा अठारह सर्गों में निर्मित 'श्रीस्वामिविवेकानन्दचरित' महाकाव्य चौखम्भा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी 1973 में प्रकाशित हुआ।

62. **नारायण शुक्ल** (उत्तर–प्रदेश 1908) – कवि शुक्ल द्वारा 17 सर्गों में प्रणीत 'ऊर्मिलीयमहाकाव्य' में रामायण और पुराण के विभिन्न स्रोतों से प्राप्त 'उर्मिला के कथानक को अपनी प्रतिभा से आबद्ध करने का प्रयास किया गया हैं। इस महाकाव्य का प्रकाशन स्वयं कवि द्वारा सन् 1973 में किया गया।

63. **पद्म शास्त्री** (उत्तर प्रदेश 1935 ई.) – पद्म शास्त्री ने रूस में बोल्शेविक क्रान्ति के जन्मदाता महान् क्रान्तिकारी ब्लादिमीर लेनिन (1870–1924) के जीवन पर आधारित 'लेनिनामृतम्' की रचना 15 सर्गों में की हैं। कवि का यह महाकाव्य विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम होशियारपुर से सन् 1973 में प्रकाशित हुआ।

64. **प्रभुदत्त स्वामी** (उत्तर प्रदेश 1914) – इन्होंने दो महाकाव्य 'पूर्वभारतम्' और 'मौर्यचन्द्रोदयम्' लिखे। पूर्वभारतम् 21 सर्गों का महाकाव्य हैं।मौर्यचन्द्रोदयम् 20 सर्गों में रचित हैं। पूर्वभारतम् का प्रकाशन मानसरोवर, मेरठ से सन् 1974 में हुआ तथा मौर्यचन्द्रोदयम् महाकाव्य का सन् 1985 में प्रकाशन हुआ।

65. **बुद्धराजा रामराजा** – 'प्रकाशचरितम्' महाकाव्य, महाराज संस्कृत कला शाला, विजयनगर से 1974 में प्रकाशित।

66. **गोस्वामिबलभद्रप्रसाद शास्त्री** (उत्तरप्रदेश) – गोस्वामी प्रकाशन, सकाहा हरदोई से 1975 में प्रकाशित बारह सर्गों में रचित गोस्वामी जी का 'नेहरूयशःसौरभमहाकाव्य' पं.जवाहर लाल नेहरू के राष्ट्रीय चरित्र पर रचित संस्कृत की अनेक कृतियों में से एक है। इनका 14 सर्गों का 'दूता×जनेय' महाकाव्य वाग्देवता प्रकाशन, 14 अशोक नगर, बरेली (उ.प्र.) से 1993 में प्रकाश में आया। 'सिन्धुराजवधम्' महाकाव्य, वाग्देवता प्रकाशन बरेली से 1995 में प्रकाशित। इन्द्रजीवनम् महाकाव्य, नाग प्रकाशक, बैंग्लो रोड, जवाहरनगर दिल्ली से 1997 में प्रकाशित।

67. **रामरूप पाठक** (बिहार, 1891–1973) – इन्होंने 'श्रीरामचरितम्' नाम से एक महाकाव्य की रचना की थी, जिसकी एक मात्र प्रति को वाराणसी में कोई व्यक्ति इनसे मांग कर ले गया और फिर नहीं लौटाया। इस महाकाव्य का निर्माण विक्रम सम्वत् 1976 के अश्विन मास के शुक्ल पक्ष में हुआ था। ,

68. **अयोध्या प्रसाद शास्त्री** – 'नेहरूदयम्' महाकाव्य, आचार्य प्रकाशन, आचार्य कुटीर, सत्य नगर, रायबरेली से सन् 1976 में प्रकाशित। 'रत्नावलीचरितम्' महाकाव्य, आचार्य प्रकाशन रायबरेली से 1994 में प्रकाशित।

69. **कृष्णचन्द चतुर्वेदी** – 'प्रेमपत्रम्' महाकाव्य, मथुरा से 1976 में प्रकाशित।

70. **गणेश गङ्गाराम पेंढारकर** (महाराष्ट्र) – इनका 'संस्कारसङ्गरम्' नाम का नौ सर्गों में लिखित महाकाव्य श्री र.ब.जोशी चिटणीस प्राज्ञ पाठशाला, मण्डल बाई (जि.सतारा) से 1977 में प्रकाशित हुआ।

71. **पी.सी.देवस्य** (केरल, 1906) – इस कवि ने 'क्रिस्तुभागवत्' नाम से ईसामसीह के जीवन पर 33 सर्गों में महाकाव्य की रचना की हैं, जो जयभारतम्, त्रिवेन्द्रम, केरल से 1977 में प्रकाशित हुआ हैं।

72. **के.एन.एझतचन** (केरल 1922–1982) इनका 21 सर्गों का 'केरलोदय' एक ऐतिहासिक महाकाव्य है, जिसमें केरल का इतिहास वर्णित है। यह सन् 1977 में पट्टम्बी से प्रकाशित है।

73. **के.एन.एलुत्तद्दन** – 'केरलोदयः' महाकाव्य, पट्टम्बी से 1977 में प्रकाशित।

74. **परमानन्द शास्त्री** (उ.प्र.,1926) – इन्होंने संस्कृत में अनेक लघुकाव्यों के अतिरिक्त दो महाकाव्यों की रचना की– 'जनविजयम् और 'चीरहरणम्'। जनविजय पन्द्रह सर्गों में रचित है। जनविजय का प्रकाशन स्वयं कवि ने सन् 1978 में किया और चीरहरण को भी स्वयं कवि ने 1983 में प्रकाशित किया। चीरहरण महाकाव्य पर मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् ने सन् 1985 में कालिदास पुरस्कार से पुरस्कृत किया है। बारह सर्गों में लिखित चीरहरण महाकाव्य है।

75. **रमेशचन्द्र शुक्ल** (राजस्थान 1909–1995) – इनके द्वारा 14 सर्गों में रचित महाकाव्य 'सुगमरामायण' देववाणी परिषद् दिल्ली – 56 से 1978 में प्रकाशित हुआ। कविवर शुक्ल का दूसरा ग्यारह सर्गों में निबद्ध महाकाव्य 'श्रीकृष्णचरित' देवीवाणी परिषद्, दिल्ली से ही 1979 में प्रकाशित हुआ।

76. **रसिकबिहारी जोशी** (1927) – श्रीकृष्णभक्तिप्रवण रचनाओं के निर्माण में निपुण कवि जोशी का आठ सर्गों में लिखित 'मोहभङ्गम्' नाम का महाकाव्य 1978 में जोधपुर विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुआ।

77. **मुतुकुलम् श्रीधर** – इन्होंने 'नवभारतम्' नाम का 18 सर्गों का ऐतिहासिक महाकाव्य लिखा है जो स्वतंत्र भारत के प्रधानमंत्री जवाहर नेहरू के जीवन पर आधारित है। इसका प्रकाशन सन् 1978 में हुआ है।

78. **चण्डीदास** – इनका आधारभूत ग्रन्थ है, 13 सर्गों में लिखित 'श्रीरघुनाथगुणोदय' महाकाव्य। श्री रघुनाथ गुणोदय रामकथा पर आधारित है। इस महाकाव्य का प्रकाश डॉ.गंगादत्त शर्मा विनोद के सम्पादकत्व में श्रीरणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, जम्मू से सन् 1979 में हुआ।

79. **सुबोधचन्द्र पन्त** (उत्तर प्रदेश, 1934) 22 सर्गों में लिखित इनका 'झाँसीश्वरीचरित' महाकाव्य गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, प्रयाग से 1979 में प्रकाशित हुआ।

80. **पी.के.नारायण पिल्लई** (केरल, 1910) – स्वामी विवेकानन्द के जीवन पर आधारित उनका 21 सर्गों का संस्कृत महाकाव्य 'विश्वभानुः जयविहार, त्रिवेन्द्रम से सन् 1980 में प्रकाशित हुआ।

81. **पशुपति झा** (1927ई.) – कवि ने 15 सर्गों में 'नेपालसाम्राज्योदय' महाकाव्य की रचना की है। इस महाकाव्य का प्रकाशन विश्वेश्वरानन्द विश्वबन्धु संस्थान होशियारपुर से सन् 1980 में प्रकाशित है। 'मुत्तू स्वामी दीक्षितचरितम्' – राघवन् प्रकाशन, मद्रास से सन् 1980 में प्रकाशित।

82. **कर्पूर कवि** – 'नवरससाम×जस्यम्' महाकाव्य, भारती निकुंज, कपूर एस्टेट, तमिलनाडु से सन् 1981 में प्रकाशित।

83. **वसन्त त्र्यम्बकशेवडे** (महाराष्ट्र 1917) – इनके अब तक तीन महाकाव्य प्रकाश में आये 'विन्ध्यवासिनीचरित' 'शुम्भवध' और 'श्रीदेवदेवेश्वर' महाकाव्य। सोलह

सर्गों में रचित विन्ध्यवासिनीचरित महाकाव्य चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी से सन् 1982 में प्रकाशित है। दूसरा महाकाव्य शुम्भवध भी सोलह सर्गों का है, कवि का तीसरा महाकाव्य 16 सर्गों का है। दूसरे और तीसरे महाकाव्य का प्रकाशन श्रीदेवेश्वर संस्थान पर्वती व कोयरूड पूणे, महाराष्ट्र संस्थान के प्रयास से सन् 1993 में प्रकाशित।

84. **रामावतार मिश्र** (बिहार 1899–1984) – कवि के दो महाकाव्य हैं 'श्रीदेवीचरितम्' और 'श्रीरुक्मिणीमङ्गलम्'। श्रीदेवीचरित (19 सर्ग) प्रसिद्ध पौराणिक कथानक पर आधृत हैं, श्रीरुक्मिणीमङ्गल (12 सर्ग) का कथानक श्रीमद्भागवत में प्राप्त रूक्मिणी विवाह की घटना पर आधारित हैं। प्रथम महाकाव्य का प्रकाशन सन् 1982 में तथा दूसरा महाकाव्य का सन् 1999 में एक ही स्थान से – रुक्मिणी प्रकाशन, इन्द्रपुरी रांची–834005 बिहार से हुआ है।

85. **विष्णुदत्त शर्मा** (मेरठ, उत्तर प्रदेश 1937) – 'श्रीगुरुनानकदेवचरित' कवि शर्मा का 19 सर्गों का महाकाव्य हैं, यह महाकाव्य विश्वनाथ प्रकाशन, मेरठ से सन् 1982 में प्रकाशित हुआ है।

86. **द्विजेन्द्र लाल शर्मा पुरकायस्थ** (राजस्थान) – कवि पुरकायस्थ ने शुक्राचार्य, कच और देवयानी के प्रसिद्ध पौराणिक कथानक पर आश्रित 12 सर्गों का महाकाव्य 'महीमहम्' की रचना की, जिसे 1984 में स्वयं प्रकाशित किया।

87. **रामकिशोर मिश्र** – 'विद्योत्तमाकालिदासीयम्' संस्कृत विभागाध्यक्ष महामना मालवीय महाविद्यालय, खेकड़ा, मेरठ से 1984 में प्रकाशित।

88. **विश्वनाथ सिंहजूदेव** – 'स›ीतरघुनन्दनं' महाकाव्य सम्पादक प्रभात शास्त्री, कौशाम्बी प्रकाशन, दारागंज इलाहाबाद से सन् 1984 में प्रकाशित।

89. **गोदवर्म युवराज** (केरल 1800–1851) – कोटिलिंगपुर (कोटुङ्गल्लूर) के राज – भवन के विद्वान् इलय तम्पुरान के नाम से प्रसिद्ध इस कवि ने 'श्रीरामचरितम्' नाम के महाकाव्य की रचना की। इनका दूसरा महाकाव्य सोलह सर्गों का

'बाल्युद्भव' या 'महेन्द्रविजय' बताया जाता हैं, जो कवि की आरम्भिक रचना हैं। श्रीरामचरित का प्रकाशन निर्णय सागर प्रेस, बम्बई से हुआ था। श्रीरामचरित को 1985 ई0 में पण्डित के.पी.नारायण पिषारोटि, प्राध्यापक, कलिक्कट् आदर्श संस्कृत विद्यापीठ, बालुश्शेरी (केरल) ने सम्पादित करके इसी विद्यापीठ से प्रकाशित किया।

90. **कालिकाप्रसाद शुक्ल** (उत्तर–प्रदेश, 1921) – इनका 13 सर्गों में रचित 'राधाचरित' महाकाव्य सन् 1985 में प्रकाशित है।

91. **हरिहर पाण्डेय** (उ.प्र.) – आजमगढ़ जिले के कुकुढ़ीपुर ग्राम के कवि पाण्डेय की रचना 'उमोद्वाह' महाकाव्य है, इसमें 16 सर्ग है। इस महाकाव्य का प्रकाशन बी27/3 31 बी, भिनगा हाउस, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी– 5 द्वारा सन् 1985 में हुआ।

92. **श्रीजीव न्यायतीर्थ** (पं.बंगाल 1892) – 1985 ई. में प्रकाशित एवं 18 सर्गों में निर्मित 'पाण्डवविक्रमम्' महाकाव्य के रचयिता श्रीजीवन्यायतीर्थ भाटपारा, 24 परगना के वयोवृद्ध प्रसिद्ध कवि थे।

93. **रघुनाथ शर्मा** (उत्तर प्रदेश) – विद्वान् पण्डित शर्मा जी ने अपनी कारयित्री प्रतिभा का परिचय संस्कृत में अनेक स्रोतों तथा 'पार्वतीपरिणय' महाकाव्य के निर्माण से दिया है। आठ सर्गों के इस महाकाव्य का प्रकाशन साहित्य अकादमी दिल्ली की पत्रिका 'संस्कृत प्रतिभा' पत्रचम उन्मेष में 1985 में हुआ।

94. **काशीनाथ पाण्डेय'' चन्द्रमौलि''**– इनके द्वारा लिखित 21 सर्गों का 'श्रीमज्जवाहरयशोविजय' महाकाव्य यह महाकाव्य सन् 1985 में अखिलभारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर द्वारा प्रकाशित किया है।

95. **रामचन्द्र मिश्र** (बिहार 1911) – उनके द्वारा परिणत वयःकाल में निर्मित दस सर्गों का 'वैदेहीचरित' महाकाव्य कवि ने इसे अपने साहित्यिक जीवन का 'चरमपरिणाभूत काव्य ग्रन्थ' कहा है। इस महाकाव्य का प्रकाशन कामेश्वर सिंह

दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार) से सन् 1985 में हुआ। स्वामी विवेकानन्दचरित – अर्वाचीन संस्कृतम् – सन् 1985 में प्रकाशित।

96. **दिगम्बर महापात्र** (उड़ीसा 1928)– कवि महापात्र ने 11 सर्गों में 'सुरेन्द्रचरितमहाकाव्य' नाम से एक ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना की है। इसका प्रकाशन सन् 1987 में हुआ है।

97. **राजेन्द्र मिश्र (उ.प्र.1942)** – इक्कीस सर्गों का इनका 'जानकीजीवन' महाकाव्य 1988 में वैजयन्त प्रकाशन 8 बाघम्बरी मार्ग, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ। दूसरा महाकाव्य 'वामनावतार' है। कवि ने अपनी इस रचना को माँ वैदेही की ही अन्तःप्रेरणा से प्रणीत माना है। इसका प्रकाशन सन् 1994 में वैजयन्त प्रकाशन 8 बाघम्बरी मार्ग, इलाहाबाद से हुआ है।

98. **निगमबोध तीर्थ** (हरियाणा, 1936) – 13 सर्गों का 'श्रीशङ्कराचार्यचरित' महाकाव्य परिमल पब्लिकेशन 17/28, शक्तिनगर, दिल्ली –7 से 1988 में प्रकाशित हुआ।

99. **सुधाकर शुक्ल** (उत्तर प्रदेश 1913–1985) – इन्होंने 'तीन महाकाव्यों' की रचना की है– 'स्वामिचरितचिन्तामणिः' (16 सर्ग) 'गान्धीसौगन्धिकम्' (20 सर्ग) तथा 'भारतीयस्वयम्वरम्' (12 सर्ग)। प्रथम महाकाव्य का प्रकाशन 1988 में रामस्वरूप शास्त्री, अन्ये पंकज शुक्ल, कविकुलाय, दतिया मध्यप्रदेश, मुद्रक स्वाति इण्टरप्राइजेज, 20 ग्रेट नाग रोड़, नागपुर–9 से हुआ है।

100. **ओगेटि परीक्षित् शर्मा** (1930 आन्ध्र–प्रदेश) – इन्होंने 'दो महाकाव्यों' 'यशोधरामहाकाव्य' तथा 'श्रीमत्प्रतापराणायणं' की रचना की। प्रथम महाकाव्य गौतम सिद्धार्थ के गृहत्याग (अभिनिष्क्रमण) की प्रसिद्ध कथा पर आधारित है। इनका 80 सर्गो का 'श्रीमत्प्रतापराणायणं' महाकाव्य इनकी महीयसी प्रतिभा का एक 'विस्फोट' कहा जा सकता है। यह महाकाव्य 1ए/11 सकाल नगर,बनेर रोड़, पूणे से सन् 1990 में प्रकाशित है।

101. अमीरचन्द्र शास्त्री – 'जवाहरलालनेहरूचरित' महाकाव्यम्, दिल्ली से 1990 में प्रकाशित।

102. सी.व्ही. वासुदेव भट्टगिरि – 'भारतेन्दु' महाकाव्य, श्री बुक्स पब्लिकेशन कोच्च से 1990 में प्रकाशित।

103. शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी – 'सत्यंशिवंसुन्दरं' महाकाव्य, शारदा पब्लिकेशन संस्थान, शारदा भवन डी.36/44 अगस्तकुण्ड, वाराणसी से 1990 में प्रकाशित।

104. हरिनारायण दीक्षित (उत्तर प्रदेश 1936) – इनका बीस सर्गों वाला महाकाव्य 'भीष्मचरित' है, जो साहित्य अकादमी, नई दिल्ली द्वारा पुरस्कृत हो चुका है। यह महाकाव्य ईस्टर्न बुक लिंकर्स 5825 न्यू चन्द्रावल, जवाहर नगर दिल्ली – 7 से सन् 1991 में प्रकाशित हुआ है।

105. स्वामी दयानन्द आचार्य श्रीकान्त – 'युग निर्माता' महाकाव्य, नाग प्रकाशन, दिल्ली से 1991 में प्रकाशित।

106. इन्द्रदेव द्विवेदी 'इन्द्र' – इनके द्वारा रचित 21 सर्गों का महाकाव्य 'सुदामाचरित' 1992 में भारती साहित्य परिषद् गोमतीनगर लखनऊ से प्रकाशित हुआ हैं।

107. राजकिशोर मणि त्रिपाठी (24 सित.1927 उ.प्र.) – इनका 16 सर्गों का 'राघवेन्द्रचरितम्' महाकाव्य 1992 में संस्कृत सेवा संस्थान, खुर्रमपुर, पोस्ट गीताप्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित हुआ।

108. कृष्णदत्त शर्मा शास्त्री – 'शिववीरचरितम्' महाकाव्य, दी शार्प प्रिंटर्स, मेरठ से 1992 में प्रकाशित।

109. उमाकान्तपण्डा – 'तपस्विनी' महाकाव्य, प्रकाशक लि›राज चौधरी गोसनी, नौगान बेहरामपुर से 1993 में प्रकाशित।

110. सदानन्दडवराल – 'नरनारायणीयम्' महाकाव्य, सुवीदा प्रकाशन ऋषीकेश से 1993 में प्रकाशित।

111. **कपिलदेव द्विवेदी** – 'आत्मविज्ञानम्' महाकाव्य, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर वाराणसी से 1994 में प्रकाशित।

112. **ब्रह्मदत्त वाग्मी** – 'पार्थचरितामृतम्' महाकाव्य, ईस्टर्न बुक लिंकर्स 5825 न्यूचन्द्रावल, जवाहरनगर दिल्ली से 1994 में प्रकाशित।

113. **महाकविन भूरामल** – 'वीरोदयम्' महाकाव्य, भगवान ऋषभदेव ग्रन्थमाला, सांगानेर, जयपुर से 1994 में प्रकाशित।

114. **त्रिपुरारिशरण पाण्डेय** (जन्म 1928) – कवि पाण्डेय द्वारा चौदह सर्गों में रचित 'रामामरचरितामृत महाकाव्य' 1995 में समीक्षा प्रकाशन, गाँधी नगर, बस्ती (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित किया गया है।

115. **मतिनाथ मिश्र** – 'भार्गवविक्रमम्' महाकाव्य, नाग पब्लिशर्स, 11ए/यू.ए. जवाहरनगर, दिल्ली से 1995 में प्रकाशित।

116. **रामाशीषपाण्डेय** – 'कृष्णोदयम्' महाकाव्य, प्रतोघ संस्कृत प्रकाशन, हरम् हाउसिंग कॉलोनी, राँची से 1996 में प्रकाशित।

117. **रामचन्द्र शाण्डिल्य** – 'च×चवंश' महाकाव्यम्, अम्बिका पब्लिकेशन, उल्लास नगर, ठाणे 1996 में प्रकाशित। (प्राप्तिस्थान श्री मनोहरगलानी 104, लवकुश टावर, चोपड़ा कोटी निकट उल्लास नगर।)

118. **हरिलालशुक्ल** – 'दलितोदय' महाकाव्य, वाई.के.पब्लिशर्स, ब्लॉक 77, संजय पैलेस, आगरा से 1996 में प्रकाशित।

119. **इच्छारामद्विवेदी 'प्रणव'** – 'वामनचरितम्' महाकाव्य, नाग प्रकाशन, बैंग्लो रोड़, जवाहर नगर दिल्ली से 1996 में प्रकाशित।

120. **त्रिगुणानन्दशुक्ल** – 'श्रीसुभाषचरितम्' महाकाव्य, सम्पादक सुषमाकुलभूषण, ईस्टर्न बुक लिंकर्स 5825 न्यू चन्द्रावल जवाहरनगर, दिल्ली से 1996 में प्रकाशित।

121. **जगदीशचन्द्र शास्त्री** – 'श्रीपरशुरामविजय' महाकाव्य, प्रतिभा प्रकाशन 29/5 शक्ति नगर दिल्ली से 1997 में प्रकाशित।

122. **शासनस्तम्भमुनिनत्थमल** – 'श्रीभिक्षु' महाकाव्य, हिन्दी अनुवाद मुनि नागराज, सम्पादक मुनि दुलहराज, जैन विश्वभारती, लाडनू राजस्थान से 1997 में प्रकाशित।

21 वीं शती में प्रकाशित महाकाव्यों का विवरण इस प्रकार है–

1. **ओमप्रकाश पाण्डेय** – 'रसप्रिया पेरिसराजधानी' संवित् 36/3, लखनऊ से सन् 2000 में प्रकाशित।

2. **पूर्णचन्द्र शास्त्री** – 'अपराजितावधूः' प्रतिभा प्रकाशन 21/5 शक्ति नगर दिल्ली से 2000 में प्रकाशित।

3. **डॉ.सुभाष वेदालङ्कार** – 'दक्षिणावर्त्तविलासम्' महाकाव्य, प्रकाशन 1974 तनेजा ब्लाक, आदर्श नगर, जयपुर प्रथम संस्करण सन् 2001 में प्रकाशन।

4. **राधामोहन उपाध्याय** – 'भारतविजयम्' महाकाव्य अनुराग प्रकाशन 8 रामकृष्ण पुरलेन, शिवपुरी हावड़ा से सन् 2001 में प्रकाशित।

5. **नारायण शास्त्री** – 'रचनाभ्युदयम्' महाकाव्य, काङ्र, श्रीमती शान्तिदेवी, विद्यावैभव भवन, सुमेरूकरण मार्ग से सन् 2001 में प्रकाशित।

6. **पण्डित श्रीराम दवे** – 'राजलक्ष्मीस्वयंवरम्' महाकाव्य हंसा प्रकाशन, चाँदपोल बाजार, जयपुर से 2001 में प्रकाशित।

7. **पण्डित बालकृष्ण भारद्वाज** – 'रामकृष्णपरमहंस दिव्यचरितम्' महाकाव्य, सम्पादक धर्मपाल शास्त्री, निर्मल पब्लिकेशन, ए–139 100 फुट रोड़, कबीर नगर, शाहदरा, दिल्ली से सन् 2001 में प्रकाशित। 'शारदामणिलीलाचरितम्' महाकाव्य, सम्पादक धर्मपाल शास्त्री, निहाल पब्लिकेशन दिल्ली से सन् 2001 में प्रकाशित।

8. **आचार्य धर्मवीर** – 'राजर्षि देवीलाल चरितम्' महाकाव्य, संजय प्रकाशन, 4378/4, बी.209, जे.एम.डी. हाउस, मुरारीलाल गली, अंसारी रोड़, दरियागंज दिल्ली से सन् 2003 में प्रकाशित।

9. **दशरथ द्विवेदी** – 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य, सन् 2004 में प्रकाशित।

10. **अशोक कुमार डबराल** – 'देवात्मा हिमालयः' महाकाव्य, पन्नी प्रकाशन, ए3/29, ए–सेक्टर 11 रोहिणी, दिल्ली से अनुमानित सन् 2004 में प्रकाशित। 'क्षुधते हा धरित्री' महाकाव्य, पन्नी प्रकाशन, ए3/29, ए–सेक्टर 11 रोहिणी, दिल्ली से अनुमानित सन् 2005 में प्रकाशित।

11. **कृपाराम त्रिपाठी** – 'रघुकुलकथावल्ली' महाकाव्य, बलरामपुर से सन् 2004 में प्रकाशित।

12. **आचार्यरामस्वरूप** – 'शिलारत्नम्' महाकाव्य, शकुन्तला प्रकाशन ग्वालियर से सन् 2004 में प्रकाशित।

13. **गोस्वामी भैरवगिरि शास्त्री** – 'उत्तरनैषधीयम्' महाकाव्य नाग पब्लिशर्स दिल्ली से सन् 2005 में प्रकाशित।

14. **डॉ.हरिनारायण दीक्षित** – 'राधाचरितम्' महाकाव्य, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, न्यू चन्द्रावल जवाहर नगर दिल्ली से सन् 2005 में प्रकाशित। 'श्रीग्वालदेवचरित' महाकाव्य, ईस्टन बुक लिंकर्स दिल्ली से सन् 2008 में प्रकाशित।

15. **श्रीमनुदेवभट्टाचार्य** – 'विशुद्धवैभवम्' महाकाव्य, सं.सं. विश्वविद्यालय वाराणसी से सन् 2005 में प्रकाशित।

16. **पण्डित श्री भागवत प्रसाद शर्मा** – 'शशिभूषणचरितम्' महाकाव्य, श्रीमती विलासिनीदारा, आडपमण्डप, सुराडा, गंजाम मण्डल, उड़ीसा से सन् 2005 में प्रकाशित।

17. **सुकुमार कवि** – 'श्रीकृष्णविलास' महाकाव्य, (गोविन्दसूरि रचित बालपाठ्य व्याख्या से अलंकृत) आदितः सप्तम्सर्गान्तो भागः सम्पादक इ.एस.राजन् राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली से सन् 2006 में प्रकाशित।

18. **आचार्य रमाकान्त उपाध्याय** – 'श्रीदयानन्दचरित' महाकाव्य, प्रकाशक लोकेशोपाध्याय, बेंगलोर से सन् 2006 में प्रकाशित।

19. **डॉ.गणेशदत्त शर्मा** – 'विवेकानन्दचरितामृतम्' महाकाव्य, अमेटी यूनिवर्सिटी प्रेस, ई–25 डिफेंस कॉलोनी, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2004। द्वितीय संस्करण सन् 2007 में प्रकाशित।

20. **महावीर प्रसाद जायसवाल** – 'श्रीकरणीचरितामृतम्' महाकाव्य, जगन्नाथ प्रकाशन, बीकानेर से सन् 2007 में प्रकाशित।

21. **डॉ.मिथिला प्रसाद त्रिपाठी** – 'भार्गवीयम्' महाकाव्य, न्यू भारतीय बुक्स कारपोरेशन 5824 न्यू चन्द्रावल, जवाहर नगर दिल्ली प्रथम संस्करण सन् 2008 में प्रकाशित।

22. **मोतीराम शास्त्री** – 'पयः पानम्' महाकाव्य, श्री नर्मदा कथान्यास परिषद्, रामनगर, जबलपुर से सन् 2009 में प्रकाशित।

23. **डॉ.वेणी माधव ढकाल** – 'पृथूदयम्' महाकाव्य, विद्यार्थी पुस्तक भण्डार, काण्ठमाडू से सन् 2010 में प्रकाशित।

24. **प्रभाशंकर जोशी** – 'भीमायनम्' महाकाव्य, पण्डित वसन्त अनन्त गडगील, शारदा गौरव ग्रंथमाला– 91 झेलम, पत्रकार नगरी, पूणे से 2010 में प्रकाशित।

25. **डॉ.विष्णुराज आत्रेय** – श्री 'हनूमदयनम्' महाकाव्य, काठमाण्डू हिमालय बुक स्टाल, काठमाण्डू से सन् 2010 में प्रकाशित।

26. **शंकरलाल शास्त्री** – 'श्रीमदमृतचरितं' महाकाव्य, श्रीअमृतनाथ आश्रम फतेहपुर, शेखावटी, विक्रम संवत् 2051 ।

27. **स्वामीरामभद्राचार्य–** 'श्रीभार्गवराघवीयम' महाकाव्यजगद्गुरुरामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट उत्तरप्रदेश, विक्रम सम्वत् 2059 ।

तिथि रहित महाकाव्यों का विवरण इस प्रकार है–

1. **रामचरण भट्टाचार्य** (बंगाल 1863–1928)स्वामी विशुद्धानन्द के शिष्य इस कवि ने 'उमाचरितचित्तम्' महाकाव्य लिखा। यह महाकाव्य सन् 1900 में कलकत्ता में रचित हुआ।
2. **प×चानन तर्करत्न** (1866–1941) ये बंगाल के भट्टपली ग्राम के निवासी थे। इन्होंने दो महाकाव्य लिखे 'पार्थाश्वमेध' विष्णुविक्रम'।
3. **तिरुमल बुक्कपट्टनम् श्रीनिवासाचार्य** (आन्ध्रप्रदेश अनु. 1870 ई.)–इन्होंने 'आङ्ग्लजर्मनीयुद्धविवरणम्' नामक ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना की।
4. **काशीनाथ द्विवेदी** (उ.प्र., 1897–1969) 'सुधीसुधानिधि' के उपनाम से विभूषित कवि द्विवेदी का जन्म वाराणसी में हुआ।कविवर द्विवेदी की एकमात्र रचना इक्कीस सर्गों का रुक्मिणीहरण महाकाव्य हैं,
5. **स्वयम्प्रकाश शर्मा** (1917–1983) पंजाब के होशियापुर के निकटवर्ती एक गांव में जन्मे कवि शर्मा ने 'श्रीभक्तसिंहचरित' महाकाव्य का प्रणयन किया, जिसमें 9 सर्ग हैं।
6. **रामकुबेर मालवीय** – इनके द्वारा रचित 'श्रीमालवीयचरितम्' में महामना मदन मोहन मालवीय जी का जीवन चरित 15 सर्गों में वर्णित है। इसका प्रकाशन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की पत्रिका 'प्रज्ञा' में क्रमशः हुआ है।
7. **भोलाशङ्कर व्यास** (जन्म 1924 बूँदी राजस्थान)–व्यासजी ने 16 सर्गों में 'शक्तिजयम्' महाकाव्य की रचना की हैं, इस महाकाव्य की कथावस्तु दुर्गासप्तशती के उत्तरचरित (शुम्भवध–प्रकरण) से ली गई है।

8. **वनमालिदास शास्त्री** – कविवर शास्त्री जी ने दो महाकाव्य लिखे हैं, 'हरिप्रेष्ठ–महाकाव्य' और 'श्रीकृष्णानन्दमहाकाव्य'। अट्ठारह सर्गों वाले हरिप्रेष्ठ महाकाव्य का प्रकाशन श्रीकृष्णनन्द स्वर्गाश्रम, वृन्दावन (मथुरा) से हुआ है।

9. **मधुकर शास्त्री** (राजस्थान, 1931) जयपुर के निकटवर्ती एक ग्राम में उत्पन्न कविशास्त्री ने जयपुर और वाराणसी में अध्ययन किया। तीर्थंकर महावीर स्वामी पर आधारित इनका 'श्रीमहावीरसौरभम्' 16 सर्गों का महाकाव्य है। कवि प्राचीन कथाभूमि में भी युगधर्म को अंकुरित करने में सफल हुआ हैं।

10. **जगन्नाथ मिश्र** (बिहार) – मधुवनी के बलिया ग्राम में उत्पन्न कवि मिश्र ने रामभक्त वनका या शबरी के चरित पर आधारित नौ सर्गों के 'भारतीशबरीमहाकाव्यम्' की रचना की।

11. **श्रीनिवास रथ** (उड़ीसा 1933) – उज्जैन के विक्रमविश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग के आचार्य कवि रथ आधुनिक संस्कृत साहित्य के एक समर्थ एवं प्रयोगधर्मा जागरुक गीतकार हैं। कवि रथ ने आचार्य पं. बलदेव उपाध्याय के जीवन पर आधारित 'बलदेवचरितम्' महाकाव्य की रचना की योजना बनायी है, जिसके कुछ सर्ग दूर्वा पत्रिका, मध्यप्रदेश संस्कृत अकादमी, बाणगंगा, भोपाल से प्रकाशित हो चुके है।

12. **शिवकुमार मिश्र** –इनका समय उत्तर प्रदेश में 1847–1918 ई. तक रहा। 'लक्ष्मीश्वरप्रतापः' नाम के महाकाव्य की रचना की।

13. **हरिनाथ शास्त्री**– उत्तर प्रदेश में जन्में तथा इनका समय 1847–1923 तक रहा। 'मनीष्यानन्द' नाम से विदित हुए। इन्होंने 'भवानन्दचरित' महाकाव्य (15 सर्गों) की रचना की।

14. **दुःखभंजन**– कवि उत्तर प्रदेश के निवासी तथा इनका समय 1849 है, प्रशस्तिकाव्य 'चन्द्रशेखरचरित' महाकाव्य लिखा।

15. **ए.आर.राजराजवर्मा**– केरल राज्य में जन्में इनका समय 1863–1918 तक रहा। कवि ने संस्कृत में 'आङ्ग्लसाम्राज्यम्' की रचना 23 सर्गों में की।

16. **मन्दिकल सी.एन. रामशास्त्री** –यह मैसूर में सन् 1849 में पैदा हुए। इन्होंने 'कृष्णराजाभ्युदयमहाकाव्य' की रचना की तथा 'सीतारावणसंवादझरी' नाम से चित्रकाव्य की रचना भी की।

17. **शान्तिभिक्षु शास्त्री** (उत्तर प्रदेश) क्रिस्तुभागवत की भाँति कवि शास्त्री का 100 सर्गों का 'बुद्धविजयकाव्य' साहित्य अकादमी (दिल्ली) द्वारा पुरस्कृत एक आकलनीय रचना हैं। कवि ने सम्पूर्ण बौद्ध जीवन–दर्शन को सरल एवं सरस शब्दावली में काव्य के रूप में प्रस्तुत करने का अभिनन्दनीय प्रयास किया हैं।

18. **त्रिविक्रम शास्त्री** –मैसूर में 1850 ई. में इनका जन्म हुआ। इन्होंने मैसूर के महाराजा कृष्णराज पर 'कृष्णराजगुणालोकः' महाकाव्य की रचना की।

19. **विश्वनाथदेव वर्मा** – यह उड़ीसा के निवासी थे, इनका समय 1856–1920 ई. था। ये आठगढ़ (उड़ीसा) के महाराज थे इन्होंने 'रुक्मिणीपरिणय' महाकाव्य का निर्माण किया।

20. **चण्डमारुताचार्य** – इनका जन्म कांजीवरम के आलिसूर नाम के गाँव में हुआ था। इनका उपनाम परिमल था। 6 सर्गों का 'अनिलराजकथा' एक अपूर्ण महाकाव्य है, जो इनकी मृत्यु के कारण अपूर्ण रह गया।

21. **सोंठी भद्रादि रामशास्त्री** (आन्ध्र–प्रदेश) 1876–1915, पूर्वी गोदावरी जिला के पीठापुरम् ग्राम के निवासी इस कवि ने 'श्रीरामविजयम्' महाकाव्य की रचना की।

22. **लक्ष्मण सूरि** (तमिलनाडु 1859–1919 ई.) – रामनाथुपरम् जिले के श्रीवेल्लिपुलूर के निकट पुनाल वेदी में उत्पन्न इस कवि ने 'कृष्णलीलामृतम' महाकाव्य का निर्माण किया।

23. **दिवाकर कवि** (उत्तर प्रदेश, 1860 ई.) – इन्होंने 14 सर्गों में 'पाण्डवचरितकाव्यम्' की रचना की।

24. **भट्टनारायणशास्त्री** (तमिलनाडु 1860–1901 ई.) – तंजोर के नाडुकावेरी के निवासी तथा ब्रह्मविद्या के सम्पादक श्रीनिवास शास्त्री के अनुज, अप्पयदीक्षित के वंशज थे। इनका 24 सर्गों का महाकाव्य 'सौन्दर्यविजयः' हैं।

25. **योगीन्द्रनाथ तर्कचूडामणि** (बंगाल 1860) – इन्होंने 'दशाननवधकाव्य' नाम के महाकाव्य की रचना की।

26. **अभिनव रामानुजाचार्य** (आन्ध्र प्रदेश 1860 ई.) – तिरुपति के निवासी इस कवि ने भगवान् वेंकटेश की प्रशस्ति में 'श्रीनिवासगुणाकरः' महाकाव्य का प्रणयन किया तथा इसके प्रथम आठ सर्गों की व्याख्या भी स्वयं की। शेष की व्याख्या कवि के भ्रातृज वरदराज ने की।

27. **रामचन्द्र** –(आन्ध्रप्रदेश 1860 ई.) कृष्णा जिला के मछलीपट्टम के नोबल कालेज में संस्कृत के प्रधान पण्डित ईडपल्ली निवासी इस कवि ने 'देवीविजयम्' महाकाव्य की रचना की।

निष्कर्ष :– 'विंशशताब्दीसंस्कृतग्रन्थसूचीपत्रम्' जो कि अभिराज राजेन्द्र मिश्र द्वारा प्रणीत है और जिसका प्रकाशन अक्षयवट प्रकाशन इलाहाबाद से 2002 में हुआ है इस ग्रन्थ में मिश्र जी ने संस्कृत साहित्य में लिखित 300 महाकाव्यों का उल्लेख किया है। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'संस्कृत का अर्वाचीन समीक्षात्मक काव्यशास्त्र' में यह उल्लेख करते हुए लिखा है कि संस्कृत साहित्य में 20वीं शती ईस्वी में 300 से भी अधिक संस्कृत महाकाव्य लिखे गये जो एक विस्मयावह किन्तु यथार्थ सत्य है।[1]

उपर्युक्त आधुनिक काव्य परम्पराओं का जो हमने विवरण दिया है। उसमें से यह उल्लेख कर पाना सम्भव नहीं है कि कितने महाकाव्य नवीन महाकाव्य परम्परा पर आधृत हैं और कितने प्राचीन महाकाव्य परम्परा पर क्योंकि प्राचीन और आधुनिक परम्परा के बीच कोई विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती है जो आज आधुनिक है वही कई शताब्दियों के बाद प्राचीन हो जाएगा। लेकिन आधुनिक युग में महाकाव्यों में जो नवीनता देखने को मिलती है वह इस प्रकार है :–

(1) लोकवन्द्यजनाश्रय महाकाव्य जैसे –झाँसेश्वरी, बाल गंगाधर तिलक, इन्दिरा गाँधी, महात्मा गाँधी, सरदार वल्लभ भाई पटेल, सुभाषचन्द्र बोस, जवाहरलाल नेहरू, टॉलस्ट लेनिन, दयानन्द तथा राजीव गाँधी पर आधृत महाकाव्य समूह।

(2) महिला – नायक वाले महाकाव्य जैसे विष्णुदत्तशर्म– कृत सौलोचनीयम्, आत्मारामशास्त्री – प्रणीत सावित्रीचिरतम्, श्रीनारायणशुक्ल का उर्मिलीयम्, ओगेटिपरीक्षित् शर्म का यशोधराचरितम्, सुबोधचन्द्रपन्तकृत झाँसीश्वरीचरितम्, कालिकाप्रसादशुक्ल–कृत राधाचरितम्, रेवाप्रसादद्विवेदी –प्रणीत उत्तरसीताचरितम्, अभिराजराजेन्द्र–प्रणीत जानकीजीवनम्, बलभद्रशास्त्री–प्रणीत, इन्दिराजीवनम्, भीमकान्तपंथी–प्रणीत जगदम्बिकावैभवम्।

(3) विश्वमंगलाश्रय महाकाव्य जैसे माधवभट्टराई–प्रणीत भागीरथीदर्शनम् तथा दूतार्जनेयम् मल्लिकार्जुन परडिड् – प्रणीत बसवभारकरोदयम्, रेवाप्रसाद द्विवेदी–प्रणीत उत्तरसीताचरितम्, अभिराजराजेन्द्र–प्रणीत जानकीजीवनम् तथा वामनावतरणम्, वसन्तत्र्यम्बकशेवडे–प्रणीत शुम्भवधम् विष्णुदत्तशर्म–प्रणीत गुरुनानकदेवचरितम्, रामभद्राचार्य–प्रणीत भार्गवराघवीयम, कृष्णप्रसादधिमिरे–प्रणीत श्रीकृष्णचरितामृतम्, क्षमाराव–प्रणीत ज्ञानेश्वरचरितम् तथा तुकाराम चरितम् इत्यादि।

(4) सर्गो की संख्या में कुछ नवीनता देखने को मिलती है अष्टसर्गात्मक महाकाव्य जैसे–श्रीनिवासरथ प्रणीत बलदेवचरितम्, चौबीस सर्गात्मक सनातन कवि का स्वातन्«यसम्भवम्। सर्ग संख्या का विस्तार जैसे परीक्षित् शर्म–प्रणीत श्रीमत्प्रतापपराणायनम् जिसमें कुल 80 सर्ग हैं।

(5) लोकवृत्त जैसे अभिराजराजेन्द्रमिश्र–प्रणीत महाकाव्य जानकीजीवनम् में सीता का शैशव वर्णन, प्राजापत्य–विधि से सीता और राम का विवाह – वर्णन तथा साकेत के अन्तःपुर में होलिकोत्सव का वर्णन।

(iii) सीता चरित्र पर आधृत महाकाव्यों का पूर्णा› विवरण–

संस्कृत साहित्य की हर विधा में अन्वय – व्यतिरेक पूर्वक राम और सीता का ही उल्लेख किया गया है। महाकवियों ने सहस्राब्दयों से रामायणी कथा को अपनी कथा का मूल आधार बनाया है। राम कथा पर आधृत शताधिक काव्य लिखे गये हैं उसमें प्रधानता राम के चरित्र की है अर्थात् नायक राम को बनाकर ही महाकाव्य विरचित है किन्तु वाल्मीकि अपने आदि काव्य में स्वयं लिखते है :–

काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्।

पौलस्त्यवधमित्येवं चकार चरितव्रतः ।[1]

इस कथन से स्पष्ट प्रतिपादित होता है कि वाल्मीकि रामायण में सीता का चरित्र प्रधानतया निरूपित किया गया है। संस्कृत साहित्य में जितने भी महाकाव्य लिखे गये हैं उनका मूलाधार वाल्मीकि रामायण है। लेकिन शायद प्राच्य कवियों की दृष्टि नारीवादी चिन्तन और नारी अस्मिता के प्रति उदासीन रही थी यही कारण है कि प्राचीन काल में जो भी रामकथा आधृत महाकाव्य लिखे गये उसमें राम के चरित्र का ही प्रतिपादन किया गया है। दूसरा तथ्य यह है कि वाल्मीकि रामायण का अध्ययन बहुतायत में नहीं किया जाता है। तुलसीकृत रामचरितमानस ही समाज में ज्यादा लोकप्रिय रहा और घर–घर में उसका ही परायण किया जाता रहा है जिसमें तुलसी ने राम की भक्ति को प्रमुखता दी है। यह भी एक कारण है कि प्राचीनकाल में जो भी रामकथा आधृत महाकाव्य लिखे गये उसमें राम के चरित्र का ही गुणगान किया गया है। किन्तु विगत कई शताब्दियों में जब से नारीवादी चेतना व नारी सशक्तिकरण का सूत्रपात हुआ तब से कवियों की लेखनी भी परिवर्तित हुई। यही कारण है कि वर्तमान युग में वैदिक, पौराणिक तथा महाभारतीय नारियों के चरित्र को आधृत करके ग्रन्थ रचे गये हैं यथा :–

कृष्णालाल कृत मैत्रेयी, चन्द्रभानुत्रिपाठी कृत उर्वशी, वेदकुमारी घई कृत – मदालसा, मेनकावात्सलम्, कृष्णमणि त्रिपाठी कृत सावित्री नाटक, परीक्षित शर्मा कृत

– सावित्री, ब्रह्मदेव शास्त्री कृत सावित्री, डॉ.बलभद्र प्रसाद गोस्वामी कृत सैरन्ध्री, लीलाराव कृत मीराचरित, रामजी उपाध्याय कृत कैकेयी विजयम् तथा सीताभ्युदयम्, राजेन्द्र मिश्र कृत जानकीजीवन इत्यादि।

कवियों ने सीता के चरित्र को मुख्य धुरी बनाकर कई नाटक व महाकाव्य लिखे हैं, उनमें से जो महाकाव्य हमें उपलब्ध हुए हैं, उनका विवरण इस प्रकार हैः–

1. उत्तरसीताचरित
2. जानकीजीवन
3. सीतारामीय
4. सीतारावणसंवादझरी
5. रामप्रिया
6. जानकीचरितामृत
7. जानकीपरिणय
8. सीतास्वयंवरकाव्य
9. जानकीहरण

1. उत्तरसीताचरित :–10 सर्गों में निबद्ध उत्तरसीताचरित महाकाव्य जो कि मेरे शोध प्रबन्ध का विषय है इसमें महाकवि ने सीता के चरित्र को प्रधानता दी है। सन् 1968 में शोणितसम्भवीयम् इस नाम से यह ग्रन्थ पूर्ण किया गया है। इस ग्रन्थ को पूर्ण करने की तिथि इसकी पाण्डुलिपि में 10.2.68 है। संस्कृत प्रतिभा के 1.1 अंक में जानकीमोचन नाम से भी इस काव्य का विवरण प्राप्त होता है। इस महाकाव्य का प्रथम संस्करण 1968 में सीताचरित नाम से ही प्रकाशित हुआ था। 1990 में सीताचरित का षष्ठ संस्करण उत्तरसीताचरित नाम से है ऐसा विवरण पुस्तक की भूमिका में स्वयं उनके पुत्र सदाशिव द्विवेदी जी ने लिखा है। सीता ही महाकाव्य की नायिका है। सीता के चरित्र को आधुनिक युगीन नारी चेतना के अनुरूप उकेरा है।

महाकवि के महाकाव्य का मूलाधार वाल्मीकि रामायण का उत्तरकाण्ड है लेकिन कवि ने सीता के चरित्र एवं सीता निर्वासन के प्रसंग को अपनी नित्य नवोन्मेषशालिनीप्रतिभा से सर्वथा नवीन स्वरूप में चित्रित किया है और सीता के चरित्र को दिव्यता व नव्यता प्रदान की है। सीता निर्वासन के संदर्भ में सीता राम से स्वयं ही संवाद करती है तथा राम के मनोभावों को जानकर प्रजापालक श्रीराम को लोकापवाद से बचाने के लिये सीता स्वयं ही वनगमन के लिए तैयार हो जाती है–

यामि मातर इतः स्वतस्ततो यामि, यामि विपिनं न मे व्यथा।

कीर्तिकायमवितुं सुमानुषा मृत्युतोपि न हि जातु बिभ्यति।।[1]

(इसलिए माताओं मैं यहाँ से जाती हूँ, स्वयं ही जाती हूँ, और मुझे इसकी कोई व्यथा नहीं। अपनी कीर्ति की रक्षा के लिए अच्छे दम्पती और सत्पुरुष मृत्यु से भी कभी नहीं डरते।)

महाकवि ने तृतीय अंक में सीता के मधुर, सौम्य कथनोपकथन द्वारा नारी की सत्ता, सम्मान तथा दाम्पत्य की प्रगाढ़ पीठिका के रूप में स्त्री को ही प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। महाकवि ने सीता को रामायण नामक मंदिर में सबसे महत्वपूर्ण देव प्रतिमा कहा है। सीता को राष्ट्र का गौरव तथा राष्ट्र की देवी कहा है। सीता को आधुनिक युगीन नारी की चेतना के अनुरूप उकेरा है।

2. जानकीजीवन :–अभिराज राजेन्द्र जी मिश्र ने 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य को सन् 1977 ई. के दिसम्बर माह में लिखना प्रारम्भ किया था। मिश्र जी ने स्वयं अपनी इस रचना को माँ वैदेही का आशीर्वाद ही कहा है। मिश्र जी ने इस महाकाव्य में वाल्मीकि रामायण के 6 काण्डों की कथा को आधार बनाकर नवीन रचना की है। 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य 21 सर्गों में निबद्ध है। कवि ने प्रथम से लेकर इक्कीस सर्ग तक सीता के जीवन के प्रत्येक पहलुओं को उकेरा है।

21 सर्गो के महाकाव्य में कवि ने हर सर्ग में नवीन रामकथा की समायोजना की है प्रत्येक सर्ग में वर्णित रामकथा का संक्षेप में वर्णन इस प्रकार है, प्रथम सर्ग कठिन तप से प्रादुर्भूत जानकी के जन्म से प्रारम्भ होता है। द्वितीय सर्ग में वैदेही

की बालोचित क्रीड़ाओं एवं वात्सल्य रस का, तृतीय सर्ग में नवासव के सदृश यौवन को मतवाला बना देने वाले अन›ाकुर के प्रस्फुटित होने से विविध कल्पनाओं से पूर्ण है, चतुर्थ सर्ग में सीता के प्रति श्रीराम के पूर्णराग का, प×चम सर्ग में वैदेही तथा रघुराज राम के परस्पर स्नेह साम्मुख्य का, षष्ठ सर्ग में राघव के पूर्वराग, सप्तम सर्ग में जानकी–राघव के विवाह का, अष्टम सर्ग में सीता का पिता के घर से ससुराल प्रस्थान करते समय विदाकालीन वेला में सीता के कारूणिक व मार्मिक उद्‌गारों एवं करुण रस का वर्णन है, नवम सर्ग में लोकाचार, वध्वाचार एवं हास्य रस, दशम सर्ग में राम के वनवास, एकादश सर्ग में रावण द्वारा सीता का अपहरण, द्वादश सर्ग में सीता का निशाचरों के मध्य अशोकवन में निवास, त्रयोदश सर्ग में हनुमान का लŠागमन एवं सीता प्राप्ति का, चतुर्दश सर्ग में लंकायुद्ध एवं सीता मुक्ति, प×चदश सर्ग में वैश्वानर द्वारा सीता को राम को समर्पित करने तथा राम द्वारा सीता की अग्नि परीक्षा, षोडश सर्ग में राम के राज्याभिषेक, सप्तदश सर्ग में सीता विषयक लोकापवाद, अष्टादश सर्ग में लोकापवाद के लोकमत से निर्णय, एकोनविंश सर्ग में लव–कुश के जन्मोत्सव एवं पुत्रों के साथ सीता के वाल्मीकि आश्रम में निवास करने का वर्णन है, विंश सर्ग में राम द्वारा अश्वमेध यज्ञ, एकविंश सर्ग में लव–कुश द्वारा रामायणगान के साथ महाकाव्य की समाप्ति होती है।

वाल्मीकि कृत रामायणी कथा को महाकवि ने अपने चिन्तन, अपने श्रम से आज तक प्रश्न चिह्नों से आवेष्टित सीता निर्वासन के प्रसंग की स्वीकारोक्ति को नकारते हुए सहस्राब्दियों से राम कथा के आदि स्रष्टा कवि वाल्मीकि के पद चिह्नों से अनुगत रामायण की कथा को सर्वप्रथम अपनी अलौकिक दिव्य प्रतिभा से आधुनिक नारीवादी चिन्तन (चेतना), नारी अस्मिता से युक्त सर्वथा मौलिक उद्‌भावनाओं की भावना से संजोकर अभिनव रूप में उपस्थापित किया है। महाकवि ने सीता निर्वासन पर उठे नाना विप्रतिपत्तियों का शमन कर नारी जाति की अस्मिता को भी स्थापित किया है। महाकवि ने वाल्मीकि प्रणीत रामायण की कथा की अवहेलना न करते हुए नवीन रामकथा परंपरा की सर्जना की है।

महाकवि द्वारा नवरामकथा की सर्जना वाग्देवी की सारस्वत साधना के प्रसाद से, स्वयं जानकी की प्रेरणा से श्लोक रूप में प्रस्फुटित हुआ है :–'काव्यं यत्क्रियते विदेह तनया सत्प्रेरणाभिर्नवः' कवि की कल्पना शक्ति कहें या जानकी की प्रेरणा महाकवि से पूर्व किसी अन्य कवि ने ऐसी कथा की उद्भावना नहीं की है। 20वीं शताब्दी में यह हमारे इतिहास में गौरव का विषय है कि रेवाप्रसाद द्विवेदी जी व राजेन्द्र मिश्र जी ने दोनों ने अपने महाकाव्य में नारी अस्मिता के प्रश्न, सीतानिर्वासन के प्रस› और सीता के चरित को अपने तार्किक चिन्तन एवं नवीन मौलिक उद्भावनाओं से संजोकर दिव्यता एवं नव्यता प्रदान की है। महाकवि ने सीता के व्यक्तित्व को एक सशक्त व तेजस्विनी रूप में चित्रित किया है। पञ्चदश सर्ग में महाकवि ने सीता के तेजस्वी रूप को आरेखित किया है। सीता की राम को गर्हित करती हुई उक्तियाँ सीता के ओजस्वी स्वरूप को चित्रित करती है :–

जिता समर्प्येत धराऽथवा स्वयं नृपेण भुज्येत चिराय राघव।

न किन्तु भार्या रिपुहस्तमोचिता वितीर्यते ह्यत्र परत्रसि› नी।।[1]

(हे राघव! शत्रु से जीती गई पृथ्वी (विजयी) नरेश द्वारा पुनः शत्रु को लौटाई जा सकती है अथवा नरेश द्वारा स्वयं चिरकाल तक भोगी जा सकती है। परन्तु लोक–परलोक की (अनन्य) संगिनी तथा शत्रु के हाथ से मुक्त कराई गई भार्या किसी को बाँटी नहीं जा सकती।)

व्रतोपवासैर्दधती कृशां तनुं वियोगवैश्वानरतापधर्षिता।

त्रिसन्ध्यमुष्णाश्रुकृताभिषेचना त्वदङ्घ्रिपाथोजनिलीनमानसा।।

खलीकृता राक्षसपापकर्मणा स्वजीवितत्यागपरापि केवलम्।

दिदृक्षया प्राणचयं ववार यत् त्वयाऽद्य तन्मे तपनं पुरस्कृतम्।।[2]

(व्रतों तथा उपवासों द्वारा क्षीण शरीर को (यथाकथंचित्) धारण करती हुई, प्रियवियोगरूपी अग्नि के ताप से झुलसी हुई, प्रातः मध्याह्न एवं सन्ध्या–वेला में सन्तप्त आँसुओं से स्नान करने वाली, आपके चरणकमलों में निलीन मनोवृत्ति वाली।

एक राक्षस (रावण) के पापकर्म (अपहरण) से अपमानित की गई, अपने प्राणों को त्याग देने के लिए प्रयत्नशील होती हुई भी मैं, मात्र आपके दर्शन की आंकाक्षा से जो प्राणों को सँजोए रही (मरी नहीं) मेरी वह सारी तपस्या आज आपने पुरस्कृत कर दी।)

कुले रघूणामुदितः पतिर्मम त्वमार्यसंस्काररतो गुणाग्रणीः।

परन्तु लोकस्य पुरः कदर्ययन् विपन्नभार्यां ननु भासि दारुणा।।[3]

(परन्तु आर्यसंस्कारों के पालक, गुणों में अग्रणी, रघुवंशी नरपतियों के कुल में अवतरित आप – मेरे पति (रक्षक) होते हुए भी – अपनी विपन्न (दुर्भाग्यग्रस्त) भार्या को, सारे समाज के समक्ष कलंकित करते हुए, सचमुच (रावण से भी अधिक) भयावह प्रतीत हो रहे हैं।)

रजक द्वारा सीता चरित पर आक्षेप लगाये जाने के उपरान्त राम द्वारा सीता का परित्याग न किये जाने के सन्दर्भ में महाकवि ने महाकाव्य के 17वें 18वें सर्ग में सीता निर्वासन का अनुपमेय समाधान प्रस्तुत किया है। महाकवि का कथन है कि सीता के विषय में लोकापवाद उठता है पर लक्ष्मण व महर्षि वसिष्ठ की सूझ–बूझ से नागरिकों की सभा में जनमत से शान्त हो जाता है महाकवि का अभिनव चिन्तन एवं अभिनव कल्पना अद्‌भुत है।

इयं सभा लोकमतैकनिष्ठा लोकानुगा लोकसमिद्धतंत्रा।

गवेषणे लोकमतस्य नूनं न राजभीतिर्न च दैन्यभावः।।[1]

(यह संसद एकमात्र जनमत में निष्ठा (श्रद्धा) रखने वाली है, लोकमत का अनुगमन करने वाली तथा लोक के ही द्वारा विकसित व्यवस्था वाली है, अतएव इस सभा में लोकमत (जनता की राय) की गवेषणा करने में, निश्चितरूप से न तो किसी को राजा का भय होना चाहिए और न ही दैन्यभाव (संकोच)।)

एकं मतं नैव मतं समेषां निरर्थकं तत्खलु लोकतन्त्रे।

मतं बहूनां यदि पट्टराज्ञीं क्षिपेत्तदा लोक इह प्रमाणम्।।[2]

(मात्र एक व्यक्ति का मत, जनसमूह का मत नहीं माना जा सकता। लोकतन्त्र में वह निश्चित रूप से निरर्थक है। हाँ यदि बहुमत, पट्टमहिषी देवी सीता को कलंकित करता हो तो उसका प्रमाण, इस संसद में जनता स्वयं है।)

न दण्डनीया रजकापवादात् न चापि पत्युः परुषाधिकारात्।

मतैः प्रजानामिह सांसदीनां निर्णेष्यते भाग्यमथो महिष्याः।।[3]

(देवी सीता, न तो (एक) धोबी द्वारा की गई निन्दा के कारण दण्डनीय है और न ही (पत्नी होने के कारण अपने) पति के परुष (कठोर, निष्करुण) अधिकार मात्र से! राजमहिषी के भाग्य का निर्णय तो इसी जनसभा में बैठी प्रजाओं के बहुमत से होगा।)

मान्या जना नागरकाः प्रविज्ञाः! एतावदेवास्ति ममाभिधेयम्।

निश्चेष्यते सम्प्रति लोकतंत्रैर्भाग्यं हि देव्या रजकार्दितायाः।।[4]

(वैदुषीसम्पन्न, सम्मान्य पौरजनों! मेरी प्रस्तावना बस इतनी ही है! अब रजक द्वारा लाञ्छित देवी वैदेही के भाग्य का निर्णय जनता – जनार्दन की राय से होगा।)

सभा का यह दृश्य राम के लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली का अनूठा प्रमाण है। जानकी पर आरोपित आरोप के निस्तारण हेतु गुरु वसिष्ठ द्वारा सभा में राज्य के समस्त नागरिकों, माताओं, ब्राह्मणों, गुरुओं तथा राज्य के सभी सेवकों व नागरिको ंको बुलाया जाता है। सभा में उपस्थित समस्त पुरवासियों के मध्य महर्षि वसिष्ठ द्वारा सीता के त्याग, तप, शील, पात्यव्रत्य, सदाचार की प्रशंसा से समस्त प्रजा मूक हो जाती है। महर्षि वसिष्ठ राम सीता के देव स्वरूप वनवास के कष्टों अग्नि परीक्षा का मर्म भेदी चित्रण करते हैं और स्वयं रजक से सभा में अपना पक्ष उपस्थित करने का आमंत्रण देते हैं रजक भरी जनसभा में लांछन युक्त वचनों से करूण क्रन्दन करते हुए प्रभु श्रीराम से क्षमा मांगता है। रजक अपने को पापी, अपराधी, आत्महन्ता, अशिक्षित, अज्ञानी, भाग्यहीन बताता है :–

अत्रैव मामद्य हिनस्तु देवः प्रकिल्विषं पापिनमात्तदोषम्।

जहान्यहं वा स्वयमेव नाथ! प्राणान् मदीयांस्त्वयि सम्मुखीने।।[1]

(स्वामी! मुझ जैसे महापराधी, पापी एवं भाग्यहीन को आज, यहीं मार डालिये। अथवा हे अन्नदाता! आपके सम्मुख रहते हुए, मैं स्वयं अपने प्राणों का विसर्जन किये दे रहा हूँ।)

रजक अपने अपराध को स्वीकार करते हुए कहता है–

जिह्वामिमां स्वैरगतिं विलोलां स्तभ्नन्तु छिन्दन्तु यथायथं भोः।

न शास्मि यां वच्मि च पापगर्भं व्यलीकवादं किल मन्दबुद्धिः।।[2]

(मेरे भाइयों। नियंत्रणविहीन (उच्छृङ्खल) तथा चटुल मेरी इस जीभ को आप लोग स्तंभित कर दें अथवा काट डालें जिस पर मैं लगाम नहीं लगा सका। निश्चितरूप से मैं मन्दबुद्धि (विमूढ़) हूँ जिसने की पापपूर्ण झूठे कलंक से (देवी वैदेही को) ला×छित किया।)

रजक के पश्चातापपूर्ण एवं विलापयुक्त वचनों को सुनकर दयानिधान प्रभु श्रीराम उसे क्षमा कर देते हैं–

स्वपाणिपाथोजसुधावलेपस्पर्शैर्हरन् दैन्यचयं प्रशोकम्।

द्रुतं समुत्थाप्य निधाय चाऽै रघूत्तमस्तं रजकं रराध।।[3]

(रघूत्तम श्रीराम ने (चरणों में लीन उस) धोबी को वेगपूर्वक उठाकर बाहो में भर लिया तथा अपने पाणिपऽज के सुधावलेपजन्य संस्पर्शों से उसके दुरन्त शोक तथा सम्पूर्ण दैन्य को समाप्त कर दिया।)

स सान्त्वयस्तं स्वजनं जगाद मा याहि दैन्यं रजक! प्रशाम्य।

तुष्टोऽस्म्यहं ते हृदयं विलोक्य शपे प्रजाभिर्विशदोऽस्मि तात।।[1]

(उस आत्मीय जन को सान्त्वना प्रदान करते हुए राघव ने कहा – हे रजक! शान्त हो जाओ। दैन्य का अनुभव मत करो। तुम्हारे हृदय (की निर्मलता) को देख कर मैं परितुष्ट हूँ। हे तात! मैं प्रजाजनों की सौगन्ध खाकर तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि तुम्हारी ओर से मेरा मन (एकदम) साफ है।)

इस प्रकार महाकवि ने अपनी अलौकिक कल्पना शक्ति से राम राज्य में नारी जाति के सम्मान एवं प्रतिष्ठा की पराकाष्ठा को निष्पादित किया है।

3. सीतारामीय :–'सीतारामीयम्' काव्य डॉ. शंकरदेव 'अवतरे' प्रणीत है। डॉ. शंकरदेव 'अवतरे' मोतीलाल नेहरू महाविद्यालय (सान्ध्य) दिल्ली विश्वविद्यालय के अवकाश प्राप्त आचार्य हैं। इस ग्रन्थ का प्रकाशन साहित्य सहकार दिल्ली द्वारा 2005 में किया गया है। ग्रन्थकार ने ग्रन्थ के आरम्भ में लिखा है कि यह ना तो कोई महाकाव्य है और ना ही पूरी तरह कोई प्रबन्ध काव्य है। महाकाव्य के लिये सर्गबन्ध जैसी अनेक शर्तें होती हैं और प्रबन्ध काव्य के लिये कोई क्रमबद्ध कथा भी होनी चाहिये लेकिन इसमें दोनों का अभाव है। वैचारिक संगति में पूरी रामायण को संयुक्त करने के कारण इसमें एकदेशीय चित्रण भी नहीं है। अतः यह खण्डकाव्य की श्रेणी में भी परिगणित नहीं किया जा सकता है। इसे परिसंवाद काव्य भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि प्रत्यक्षतः द्वय व्यक्तियों द्वारा किये जाने वाले संवाद भी नहीं है। अतः ग्रन्थकार इसे केवल काव्य मानते हैं। कवि का सम्पूर्ण काव्य स्त्रग्धरा छन्द में निबद्ध है। काव्य का मूलाधार वाल्मीकि रामायण उत्तरकाण्ड में निबद्ध सीतानिर्वासन का प्रसंग है। सीता निर्वासन पर ग्रन्थकार ने राम और सीता की प्रतिक्रिया को अलग–अलग समुपस्थापित किया है। एतदर्थ कवि का ग्रन्थ दो भागों में विभक्त है–पूवार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध। पूवार्द्ध भाग में कवि ने सीता निर्वासन के पश्चात् राम के पश्चाताप को उद्घाटित किया है जो कि नारी अस्मिता तथा महत्ता को उजागर करने वाला है। महर्षि वाल्मीकि ने भी किष्किन्धाकाण्ड के षष्ठ सर्ग में राम की पीड़ा का उल्लेख किया है किन्तु इस पीड़ा में पश्चाताप की भावाभिव्यक्तियों का अभाव है।[1]

ग्रन्थ का उत्तरार्द्ध भाग सीता के प्रत्यावर्त्तन के नाम पर है। यह प्रत्यावर्त्तन सीता के प्रतिज्ञापूर्ण वचनों के द्वारा पृथ्वी माता की गोद में प्रवेश के साथ प्रारम्भ है और आकाशवाणी के रूप में काव्य के अन्त तक प्रसृत रहता है। इसी भाग में कवि ने सीता के वाग्प्रहारों द्वारा राम को धर्षित किया है तथा साम्प्रतिक नारीवादी चेतना के अनुरूप नारी के स्वाभिमान को भी स्थापित किया है। ग्रन्थ की पृष्ठभूमि आद्योपान्त नारी जाति के अस्मिता की प्रतिष्ठा तथा नारीवादी चेतना से आप्यायित है।

ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध भाग में सीता निर्वासन के अनौचित्य, आपत्तिजनक एवं चिरन्तन प्रश्न पर राम के पश्चाताप, आत्मग्लानि से पूर्ण भावोद्गारों को कवि ने 157 छन्दों में निबद्ध किया है। राम सीता के अनन्य प्रेम की अनन्त धाराएँ वियोग में प्रवाहित हुई हैं। राम के वियोगजन्य अन्तः पीड़ा को महाकवियों ने अपनी लेखनी से बहुधा उकेरा है किन्तु सीता की अन्तःपीड़ा पर महाकवियों की लेखनी मौन (निःशब्द) रही है। ग्रन्थ के सम्पूर्ण पूर्वार्द्ध भाग में कवि ने अपनी नवीन उर्वर कल्पना शक्ति से राम के पश्चाताप, संताप, क्षोभ, आत्मग्लानि की हृदयस्पर्शी नवीन उद्भावना की है। कवि की अभिव्यंजना है कि निरपराध सीता को निष्कासन का दण्ड दिये जाने से राम दुखी ही नहीं है बल्कि एक प्रच्छन्न स्वार्थ के कारण लज्जित भी है क्योंकि सीता परित्याग के बदले उन्होंने राजलक्ष्मी को प्राप्त कर रखा है। कवि की भावोक्ति है–

इक्ष्वाकूणां वदन्ति प्रजनुकविषयान् ये मनस्कारवाह्यान्,

प्रीतास्ते किं प्रवादाद् रघुकुलजा धर्मपत्नीस्त्यजन्ति।

नारीरूपेन्द्रियार्थान्न खलु न मधुरा राजशब्दप्रतिष्ठा,

स्वार्धाय स्वार्थवृत्तेः परिणतिरपरा छद्मना स्वार्थ एव।।[2]

पति–पत्नी का सम्बन्ध जो सृष्टि के उषोदय काल से अन्योन्याश्रित रहा है लेकिन इन सम्बन्धों की विडम्बनाओं के फलस्वरूप ही अर्वाचीन युग में नारी–चेतना, स्त्री विमर्श, नारी मुक्ति आंदोलनों एवं महिला सशक्तिकरण का जन्म हुआ है। इस सम्बन्ध पर भी कवि की लेखनी सीता और राम के माध्यम से मुखर हुई है। कवि का चिन्तन है कि (दाम्पत्य धर्म और राजा का आदर्श इन दोनों में से किसको प्रमुख मानना चाहिये इसका सही निर्णय राम नहीं कर सके। पत्नी की रक्षा करना पति का सबसे बड़ा व पहला धर्म है। इस दृष्टि से सीता राम के लिये सर्वथा रक्षणीय थीं। फिर भी दण्डक वन में राम रावण से सीता की रक्षा नहीं कर सके। ऐसी दशा में यदि सीता को रावण के अधिकार में आपद्धर्म का पालन करते हुए रहना पड़ा तो इससे सीता का चरित्र धूमिल या मलिन नहीं हुआ बल्कि पतन तो राम का हुआ जो सीता की रक्षा न कर सके। राम की आत्मग्लानि को प्रकटित करते हुए कवि लिखते हैं कि दण्डनीय तो राम थे पर उन्होंने मैथिली को वनवास दे दिया। यह राम के अन्याय की पराकाष्ठा है। राम का राज्य दूसरों के लिये भले रामराज्य हो पर सीता के लिये तो यह जंगल का राज्य बनकर रह गया है।)

कवि के मनोभावों में रामायण की कथा के अनुसार क्रमबद्धता व स्थिरता नहीं है। जिस क्षण जो विचार वीथि निःसृत हुई कवि ने उसी क्रम में उसका निरूपण किया है। कवि का मन्तव्य है कि राम द्वारा दाम्पत्य धर्म का उल्लघंन करने पर भी सीता विषयक त्याग की सराहना करने वाले वे लोग हैं जिन्हें दाम्पत्य रस की मर्यादा का ज्ञान नहीं है। सीता को परित्यक्त करने के पश्चात् राम वनवास के कष्टों का स्मरण कर पश्चाताप कर रहे हैं। कवि की भावाभिव्यंजना है कि यदि पति के जीते जी पत्नी की दुर्दशा होती है तो पति की सनाथता को धिक्कार है–'नाऽभाग्यं तद् गृहिण्या अपितु गृहपतेः पौरुषं धिक् करोति।'[1]

सीता निर्वासन विषयक आत्मग्लानि, क्षोभ व पश्चाताप की अनन्त तरंगें राम के अन्तःस्थल में क्रौंधती (उठती) हैं। राम घर बार छोड़कर तपोवन में चले जाना चाहते हैं। राम के अन्तर्मन में उठने वाले नाना प्रकार के उद्‌गार प्रत्याशित , सम्भावित व स्वाभाविक लगते हैं।

इस प्रकार से यह स्पष्ट है कि ग्रन्थ का पूरा पूर्वार्ध भाग राम के पश्चाताप, आत्मग्लानि, क्षोभ, संताप से परिपूर्ण है। कवि ने अपने गहन मौलिक चिन्तन व कल्पना शक्ति से सीता परित्याग के पश्चात् राम के अन्तःचेतना में विद्यमान पश्चाताप के विविध मनोभावों , विचार वीथियों को अपनी लेखनी से मुकुलित किया है जो नारी जाति को हृदयाह्लादित करने वाला है।

काव्य का उत्तरार्द्ध भाग सीता के प्रत्यावर्त्तन के नाम पर है। यह प्रत्यावर्त्तन सीता के प्रतिज्ञा वचनों के द्वारा पृथ्वी माता की गोद में प्रवेश करने के साथ प्रारम्भ होता है, और आकाशवाणी के रूप में काव्य के अन्त तक चलता है। सीता के प्रत्यागमन के कारण जो प्रमोद, प्रसन्नता, प्रफुल्लता प्रसृत हुई थी उसके धरती में समाहित होते ही वह सन्नाटे में बदल गयी। आकाशवाणी के रूप में, प्रतीकात्मक रूप से कवि ने सीता के हृदय विदारक, मर्मान्तक वेदना से पूर्ण, क्लेशयुक्त मानसिक संताप को तथा नारी मर्यादा पर सीता की प्रतिक्रिया को प्रदर्शित किया है। सीता राम को उलाहना देती हुई कहती है कि राजलक्ष्मी के साथ मेरा सौतिया रिश्ता है जिसके कारण राजभवन में मेरा निर्वाह सम्भव नहीं था। कवि का छन्द समवलोकनीय है –

नाऽहं वा वल्कवासा नृप नृपसदनं ते दरिद्रीकरिष्ये

निर्वाहो में सपत्न्याः कथमिव भविता राजलक्ष्म्या समं ते।।[1]

सीता के अन्तस् में कितनी मार्मिक वेदना निगूढ़ रही होगी जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। सीता का कथन है कि यदि राम उन्हें पुनः स्वीकार कर लेते तो क्या लोग दुबारा यह कहकर उनकी निन्दा नहीं करते कि एक बार छोड़ी हुई स्त्री को राम ने दुबारा घर में रख लिया–

'पत्नी त्यक्ता गृहिता पुनरिति न किमु त्वां विगास्यन्ति लोकाः'।[2]

सीता की भावोर्मियाँ हैं कि आपके पिता अपने वचनों के प्रति प्रतिबद्ध (अडिग) रहे यही कारण है कि उनकी प्रतिबद्धता रघुकुल रीति के नाम से विख्यात

हो गई किन्तु आपने निर्दोष पत्नी को ही त्याग दिया। सीता की उक्तियाँ नार्योचित गरिमा से ओत–प्रोत है। कवि ने अपने आधुनिक नारीवादी दृष्टि से नारी के स्वाभिमान की रक्षा की है। सीता का कथन है कि आपने मेरी अवज्ञा करके समस्त नारी जाति का अपमान किया है। सीता राम पर कटाक्ष करते हुए कहती है कि यदि आपकी सत्य परायण अन्तरात्मा मेरे सम्बन्ध में लोगों के झूठे आरोपों से विचलित नहीं हुई थी तो आपको राजपाठ छोड़कर मेरे साथ ही वनवासी हो जाना चाहिए था। यदि आपकी बुद्धि भी प्रजा के विश्वास के आधार पर बदल गई थी तो इसका उत्तर दीजिए कि मुझ जैसी असती का स्वागत क्यों किया जा रहा है।

कवि का मन्तव्य है कि सीता का उदाहरण तो नारी जाति के प्रति घोर अन्याय है। राम जैसे अवतार भी यदि नारी अस्मिता की अवज्ञा करते हैं तो उनके बारे में क्या कहा जाए जो नारी जाति के विरुद्ध दुराग्रही और परम्परावादी हैं। कवि ने सीता द्वारा राम के एकनारीव्रत पर भी पŠप्रक्षेपण किया है। सीता के अन्तःस्थल में विद्यमान भावों की वि×छत्ति है कि अश्वमेधयज्ञ में मेरी स्वर्णमयी प्रतिमा अपनी बाई ओर स्थापित कर जो यजन किया वह इस बात का सुखद प्रमाण है कि आपने एकनारीव्रत का पालन किया है। किन्तु इसी के समानान्तर आपने जो एकमात्र पतिव्रता को झूठे अपवाद के कारण वनवास दे दिया उससे विश्व नारी के हृदय में आपके प्रति गहरा क्षोभ है। सीता के हृदयोद्गार है कि राम द्वारा परित्यक्त किये जाने पर मैं पत्नी पद की गरिमा से च्युत हो गयी हूँ। विवेक से अच्छी प्रकार विचार न करने वाला मनुष्य समाज पति के द्वारा छोड़ी गयी स्त्री को कुलटा ही समझता है–

'पत्या त्यक्तां हि नारीं गणयति पतितां निष्परीक्षःसमाजः।'[1]

सीता की अन्तर्वेदना है कि प्रसवकाल के समय पति का सामीप्य सभी नारियों को अभीष्ट होता है किन्तु वह भी मेरे भाग्य में नहीं था।

'पत्युः सान्निध्यमिष्टं प्रजननसमये योषितां मे न लब्धम्'।[2]

सीता निर्वासन पर कवि की संवेदना विविध रूपों में प्रकट हुई है। कवि लिखते हैं कि राम ने निर्णय लेने में अनपढ़ जनता को ही सामने रखा, विद्वानों को नहीं। उन्होंने एकान्त में मंत्रीमण्डल से विचार–विमर्श नहीं किया। गुरुजनों के पास जाकर उनसे अनुमति नहीं ली–

धर्मज्ञा नानुनीता न रहसि भवता मन्त्रिता मन्त्रिसंसत्,

मन्निर्वासात् पुरस्तादपि कुलगुरवो नानुमत्यै प्रपन्नाः।

मूर्खं छन्दानुरोधादिति तव चटुला राजनीति र्न नीतिः,

यस्मात् सीदत्प्रकर्षा तव चरितकथात्वां मनुष्यीकरोति।।[3]

सीता निर्वासन पर कवि ने अभिनव प्रयोग कर अभिनव सरणि का समभिसरण (अन्वेषण) किया है जो नारी जाति को ह्रदया ाद से अनुप्राणित कर परमप्रीति व परमतोष प्रदान करने वाला है। ग्रन्थ के पूर्वार्ध में कवि ने अपने मौलिक चिन्तन व कल्पना शक्ति से सीता परित्याग के पश्चात् राम के अन्तः चेतना में विद्यमान पश्चाताप को तथा अन्तः स्थल में उठने वाले मनोभावों को नवीन उद्भावनाओं से संजोकर लौकिकता तथा नूतनता प्रदान की है। ग्रन्थ के उत्तरार्ध में कवि ने राम के प्रतीक रूप में पुरुष जाति की गर्हणा तथा सीता के प्रतीक रूप में नारी की महत्ता व प्रतिष्ठा को प्रख्यापित किया है। नारी जाति की प्रतिष्ठा का प्रतिष्ठापक 'सीतारामीयम्' जैसा काव्य अद्यतन रचित नहीं हुआ है।

4. सीतारावणसंवादझरी– सीतारावणसंवादझरी सीता के पातिव्रत धर्म का आश्रय कर विचित्र चातुर्य से चमत्कृत संस्कृत साहित्य का विशिष्ट अद्वितीय अलंकरण है। इस ग्रन्थ के प्रणेता श्रीचामराजनगर रामशास्त्री तथा सीताराम शास्त्री हैं। यह काव्य प्रहेलिका पद्धति द्वारा विरचित है। प्रहेलिका पद्धति से प्रबन्ध काव्य की व्यापकता सीतारावणसंवादझरी नामक तीन कृतियों में दिखायी पड़ती है। प्रथम कृति है– श्रीचामराजनगर रामशास्त्री प्रणीत ग्रन्थ का पूर्वार्ध भाग है और द्वितीय कृति सीताराम शास्त्री प्रणीत सीतारावणसंवादझरी का उत्तर भाग है। तृतीय कृति श्रीबच्चू सुब्बाराव गुप्त विरचित अभिनव सीतारावणसंवादझरी है। कालूरि हनुमन्त राव ने भी

सीतारावणसंवादझरी नामक खण्डकाव्य की रचना की है जो हैदराबाद से 1987 में प्रकाशित है। लेकिन यह प्रहेलिका प्रबन्ध नहीं है। श्रीचामराजनगर रामशास्त्री ने समस्त सीतारावणसंवादझरी को एक सौ प्रहेलिका पदों द्वारा प्रस्तुत करने का संकल्प किया, परन्तु तीस वर्षों तक तद्नुकूल विशिष्ट वर्णावली के चिन्तन करते रहने पर ऐसे केवल 50 पदों की रचना से अपनी इस कृति को पूर्ण किया। श्रीचामराजनगर रामशास्त्री के शिष्य सीताराम शास्त्री ने अपने गुरुपद के चिह्नों का अनुगमन करते हुए उसी प्रकार के प्रहेलिका चमत्कार सम्पन्न सीतारावण संवाद से युक्त 50 पदों की रचना की तथा अपनी कृति को गुरुविरचित सीतारावणसंवादझरी के उत्तर भाग के रूप में संयुक्त किया।

विगत दशकों में इस ग्रन्थ के दो संस्करण उपलब्ध होते हैं। प्रथम संस्करण 2002 में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी से डॉ. राजाराम शुक्ल के सम्पादकत्व में हिन्दी व संस्कृत व्याख्या के साथ प्रकाशित हुआ है। यह संस्करण श्रीचामराजनगर रामशास्त्री प्रणीत प्रहेलिका चमत्कार से पूर्ण 50 पदों तथा प्रहेलिका चमत्कार विरहित 50 पदों से संयुक्त है। श्लोक संख्या 17 से लेकर 75 तक गूढ़ उभयार्थक श्लोकों का प्रयोग कवि ने किया है। श्लोक संख्या 1 से 17 तथा 76 से 108 तक के श्लोक प्रहेलिका चमत्कार से रहित है। इस ग्रन्थ का दूसरा संस्करण परिमल प्रकाशन दिल्ली से 2012 में आचार्य रमेशचन्द चतुर्वेदी के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ है। इस संस्करण में रमेशचन्द चतुर्वेदी, रामशास्त्री एवं सीताराम शास्त्री उभय सीतारावणसंवादझरी प्रहेलिका पद्यशती को हिन्दी व संस्कृत व्याख्या के साथ प्रस्तुत किया है। रमेशचन्द चतुर्वेदी ने रामशास्त्री प्रणीत प्रहेलिका चमत्कार से युक्त 17 से लेकर 75 श्लाकों को ही अपनी पुस्तक में ग्रहीत किया है। सीतारावणसंवादझरी नामक कृति प्रथम प्रहेलिका प्रबन्ध काव्य के रूप में उपलब्ध होती है जिसमें आदिकवि वाल्मीकि द्वारा प्रस्तुत राम का चरित संक्षेप में सरल पदों में लिखित है, तथा इसका प्रमुख विवेच्य विषय सीतारावण संवाद है। सीतारावणसंवादझरी इस काव्य में रामायण के सुन्दर काण्ड में वर्णित वैदेही पौलस्त्य के संवादों की प्रस्तुति प्रहेलिका के चमत्कार से युक्त 59 पदों में की गयी

है यही प्रहेलिका प्रबन्ध का मुख्य भाग है। इस कृति में प्रबन्ध काव्यत्व लाने के लिए रामशास्त्री जी ने सीतारावणसंवाद के अतिरिक्त रामायण की कथा को संवाद के पूर्व और बाद में संयुक्त किया है। च्युताक्षरादि प्रहेलिका प्रयोग के अनुकूल संवाद को लक्ष्य में रखकर कवि ने केवल संवाद भाग में ही प्रहेलिका की चमत्कृति को दर्शाया है। प्रहेलिका के अतिरिक्त प्रहेलिका के चमत्कार के बिना ही संवाद का सन्निवेश किया है। प्रबन्ध के मुख्य विवेचन के योग्य सीतारावणसंवाद से पूर्व कवि ने रामायण सुन्दर काण्ड की कथा को इस ग्रन्थ में प्रकाशित किया है तथा सीता के व्यवहार के जिज्ञासु राम द्वारा पूछे गये हनुमान के मुख से रहस्यमय चमत्कार से युक्त सीतारावण संवाद को प्रस्तुत करके लंका काण्ड के बाद उत्तरकाण्ड के रामायणी कथा को संवाद के पश्चात् उदाहरण के रूप में इस ग्रंथ में सीतारावणसंवाद के अतिरिक्त रामायण की कथा को संवाद के दोनों ओर संयुक्त किया है। संवाद के पहले और बाद में रामायण की कथा को बताते हुए प्रहेलिका रहित पदों को पूर्व व उत्तर पीठिका के रूप में ग्रंथ में उपन्यस्त किया है।

श्रीचामराज शास्त्री द्वारा विरचित सीतारावण संवादात्मक प्रहेलिका पद्यों के चतुर्थ चरण में स्थित सीता प्रत्युक्ति विशिष्ट वर्णयोजनावती है। इस वर्णयोजना द्वारा रावणोक्ति का प्रत्याख्यान एवं रावण का तिरस्कार मात्र बोधित होता है किन्तु प्रहेलिकाविज्ञ सीता प्रत्युक्ति द्वारा विश्लेषण कर वर्णलोप, वर्णस्थापन एवं वर्ण परिवर्तन विषयक निगूढ़ निर्देश के अनुसार वर्णलोपादि कर रावणोक्ति का पुनः विवेचन करते हैं तो राम प्रशंसात्मक तथा रावण निन्दात्मक सीता के अभिप्रेत अर्थ को पहचान कर आह्लाद विशेष का अनुभव करते हैं।

इन सम्पूर्ण श्लोकों में सीता अशोकवाटिका में रावण से प्रश्नोत्तररूपी कटु वार्तालाप करती है। सीतारावणसंवादझरी के पूर्वभाग में रावण व सीता के मध्य हुए वार्तालाप के द्वारा जो श्लोक प्रकट किये गये हैं उनसे प्रथम तो रावण द्वारा उसी के शब्दों में निहित स्वयं (रावण) की आत्मनिन्दा से युक्त अर्थ प्रकट होता है। उदाहरणार्थ :–

परिक्षीणालस्यस्समर भुवि रक्षः कुलपतिः

सलज्जस्स्वस्तुत्याममलहितमार्गैकपथिकः।

प्रणम्रस्त्रीलभ्यस्सुमुखि विलसत्कीर्तिरिति च।

श्रुतो नाहं किं? रेऽधमः!मुहुरलं त्वां श्रुतवती।।[1]

(रावण ने सीता को अनुकूल करने हेतु कहा–हे सुवदने सीते! क्या तूने मेरे विषय में नहीं सुना है कि मैं समरा›ण में परिक्षीणालस्य हूँ। (आलस्य रहित होकर युद्ध में अतिशीघ्र प्रहार करने वाला हूँ।) मैं राक्षसों का अधीश्वर हूँ। मैं स्वस्तुति में सलज्ज (संकोचकारी) हूँ। मैं निष्कलŠ एवं हितकारक मार्ग का ही अनुसरण करता हूँ। मैं अतिविनयशील स्त्रियों द्वारा ही प्राप्तव्य हूँ एवं विलसित कीर्तिवाला हूँ। रावणोक्ति को सुनकर सीता ने कहा–पुनः पुनः मत बोलो। मैं तेरे विषय में बहुत सुन चुकी हूँ।) सीता द्वारा 'अलम् श्रुतवती' श्लिष्टार्थ पद का प्रयोग किया गया है। उसका द्वितीय अर्थ है–मैंने तेरे द्वारा कथित सभी ये विशेषण अलम् लकार रहित सुने हैं अर्थात् रावणोक्त स्वविशेषणपदों में से लकार का त्याग करने पर रावण के विशेषण निम्न विपरीत भाव को प्रकट करते हैं–

मैं युद्धभूमि में परिक्षीणास्य हूँ। मैं रक्षःकुपति हूँ। स्वस्तुति में सज्ज हूँ। अमहित मार्गैकपथिक हूँ। मैं विसत्कीर्ति हूँ। (सत्कीर्तिविहीन हूँ।)

पूर्व भाग में अन्य भी कई ऐसे श्लोक विद्यमान हैं जिनमें कि सीता प्रत्युक्ति द्वारा एक वर्ण के लोप द्वारा अर्थ का परिवर्तन हो जाता है, जैसे–रावण कहता है राम अतल्प निद्रालु हैं। (रात्रि में पर्यŠ के बिना भूमि पर ही सोता है) इसमें 'त' वर्ण को हटाने पर ये स्वल्प शयन करने वाला बन जाता है अर्थात् राम की प्रशंसा को बताता है। ऐसे ही कहीं चकार, कहीं 'म' के स्थान पर 'द' वर्ण, कहीं 'प' के स्थान पर 'क' वर्ण इत्यादि के प्रयोग द्वारा रावण निन्दा व रामश्लाघा प्रस्तुत होती है।

इस ग्रन्थ के उत्तरभाग के अन्तर्गत भी कई श्लोकों द्वारा सीता ने रावण को समुचित उत्तर देते हुए राम की श्रेष्ठता सिद्ध की है, जैसे–

हे सीते मतिसंभ्रमो मम यथा कार्येषु प्रत्युर्न ते

सर्वत्रापि निजोद्यमेषु स खलु ख्यातो महासंशयः।

किंचाख्यान्ति तमत्र दुष्टजनसंघाते निबद्धारदम्

क्रव्यादाधम किंनु वा प्रलप नो सम्प्रीतिरत्रस्ति मे।।[1]

(रावण ने सीता से कहा–हे सीते! जिस प्रकार मैं स्वकर्त्तव्यों में मतिसंभ्रम अथवा शीघ्र निश्चय करता हूँ, वैसे राम नहीं करता है। वह अत्यधिक संशय करने वाला निश्चित रूप से विख्यात है, तथा लोग उसे दुष्टजनों के समुदाय में लगाव रखने वाला बताते हैं। रावणोक्ति से असहमत होते हुए सीता कहती है कि–हे राक्षसअधम! मुझे तेरे कथन में सम्प्रीति (लगाव) नहीं है।) अर्थात् तेरे सम्पूर्ण कथनों को मैं 'सम्' वर्ण का परित्याग ग्रहण करती हूँ, जिससे कि राम की प्रशंसा ही द्योतित होती है–

हे सीते! जैसे मुझे स्वकर्त्तव्यों में मतिभ्रम होती है, उस प्रकार राम को नहीं। वह राम लोक में महाशय (उदारमना) विख्यात है तथा लोग उसे दुष्टजनों के घात करने में श्रद्धावान् बताते हैं।

हम कह सकते हैं कि सीतारावणसंवादझरी ग्रन्थ प्रहेलिकाओं में श्रेष्ठ है और इसका वर्ण विन्यास भी उत्तम है।। सीता की वाक्पटुता यहाँ दिखलाई गयी है। ग्रन्थ के सम्पूर्ण पद्यों द्वारा सीता की अटल पातिव्रत्य धर्म के दर्शन होते हैं। इस ग्रन्थ में युद्ध के समय रावण सीता को राम के प्रतिकूल करने हेतु अनेक स्वप्रशंसा के वाक्य कहता है। किन्तु सीता उन वाक्यों में से रावणनिन्दा व राम की प्रशंसा को ही आत्मसात् करती है और अपने सतीत्व की रक्षा करती है।

5. रामप्रिया :– श्री सत्यनारायण शास्त्री संस्कृत के प्रतिभासम्पन्न कवि हैं। उनकी प्रतिभा काव्य के विविध धरातलों में संचरण करती है। वे सतत रचनारत हैं और अपनी कृतियों द्वारा साहित्य का भंडार भर रहे हैं। उनके खण्डकाव्य रामप्रिया में सीता की विराटता, व्यापकता, ऐश्वर्य तथा अलौकिता का निरूपण किया गया है। उनके प्रति अपना प्रणति – निवेदन कवि ने किया है। उनके सार्वभौम स्वरूप का

परिचय कवि ने मंगलाचरण में ही दिया है। सीता का स्वरूप चिन्मय, सत्य, शिव, सुन्दर, कान्तिनिधान है। सीता का जीवन राम के लिए अर्पित है। सृष्टि का सृजन, पालन और संहार उनका कौतुक – मात्र है।

काव्य के आरम्भ से अन्त तक सीता राम की निकटता, उनके ऐश्वर्य, उनकी शक्ति इत्यादि का निरूपण विविध दृष्टिकोणों से किया गया है। सीता के अलौकिक रूप शिक्षण के साथ–साथ काव्य में कवि ने भक्त–हृदय की भाव–प्रवण भक्ति–धारा भी प्रवाहित की है। सीता के सौन्दर्य और शक्ति की व्यापकता तथा भक्ति–भावना निवेदित करने के लिए कवि ने खण्ड–काव्य को रचा है। सीता के प्रति अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति कथा का आधार है जिसमें कवि की समस्त भावनाएँ समाहित हैं। कथा की धुरी सीता है। सीता की बाललीला, उनका विवाह, वनवासिनी रूप, केवट–प्रसंग, चित्रकूट–वास, अत्रि के आश्रम में स्वागत, अनसूया का उपदेश, सीता–हरण, लंका–दहन, राज्याभिषेक, वाल्मीकि, लवकुश की वीरता इत्यादि सांकेतिक रूप में वर्तमान है। इनके माध्यम से उनके लौकिक रूप की चारित्रिक उदात्तता का निरूपण हुआ है।

उनकी असीम करुणा का वर्णन करते हुए कवि का कथन है कि उनकी कृपा–दृष्टि से पापी भी पुण्यात्मा बन जाते हैं, शत्रु मित्र हो जाते हैं, कलह आदि दुर्गुण क्षण भर में दूर हो जाते हैं। कवि अत्यन्त आर्द्र स्वरों में उनकी दया–दृष्टि की प्रार्थना करता है। वह कहता है जिस दयार्द्र दृष्टि से आपने अशोकवन में हनुमान् को देखा था, उसके शतांश के एक कण से आप मुझे देखें। कवि सीता की कृपा प्राप्त कर जन्म–मृत्यु के चक्र से मुक्त होने की कामना करता है। काव्य का लक्ष्य जगज्जननी सीता के स्वरूप की विराटता, व्यापकता का गुणगान करते हुए उनके प्रति अपनी भक्ति निवेदित करना है।

इन्हीं कलात्मक उपादनों के कुशल प्रयोग से कवि जगज्जननी सीता के प्रति अपनी भक्ति को चित्रात्मक एवं मार्मिक अभिव्यक्ति देने में समर्थ हुए हैं।

6. जानकीचरितामृत–श्रीजानकीचरितामृतम् के रचयिता महात्मा श्रीरामस्नेहीदास जी हैं किन्तु यह आश्चर्य का विषय है कि रचनाकार न व्याकरण न साहित्य न अलंकारों के ज्ञाता हैं केवल श्रीजनकपुरधाम में श्रीराजकिशोरी जी के महल में स्नेहीदास जी नित्य सेवा में बड़ी श्रद्धा से संलग्न रहते थे। महल की सेवा करते – करते इनका हृदय ऐसा निर्मल हुआ तथा भाव रस ऐसा परिपूर्ण हुआ कि छन्द स्वतः प्रस्फुटित हुआ और 108 अध्यायों का इतना विशालकाय ग्रन्थ इन्होंने विरचित किया। इनकी इस रचना से यह सिद्ध है कि श्रीजी की कृपा से ही यह ग्रन्थ निर्मित हुआ है। जगत्माता सीता के मर्यादापूर्ण चरित से सम्पूर्ण काव्य भरा पड़ा है, इसमें प्रधानतया उनके पतितपावनत्व, करुणामयत्व आदि दिव्य गुण भी अनेक प्रस› से उनके चरित में दिखलाये गये हैं।

7. जानकीपरिणय – चक्र कवि (17वीं शती) कृत जानकीपरिणय काव्य के अन्तर्गत वाल्मीकि बालकाण्ड के अनुसार दशरथ यज्ञ से लेकर परशुराम तेजोभंग तक की प्रधान घटनाओं का 8 सर्गों में वर्णन किया गया है। अहिल्या के शिला बन जाने के उल्लेख के अतिरिक्त कथानक में कोई भी परिवर्त्तन नहीं किया गया है। 6 सर्ग में दशरथ की मिथिला यात्रा के वर्णन में उनकी विलास क्रिडाओं का थोड़ा विस्तार सहित चित्रण किया गया है।[1]

8. सीतास्वयंवरकाव्य– हरिकृष्णभट्ट रचित 'सीतास्वयंवरकाव्य'127 पद्यों का एक लघुकाव्य है। हरिकृष्णभट्ट अपने को श्रीधीर पीताम्बर नन्दन बतलाते हैं (126 श्लोक), परन्तु इनके देशकाल का पता नही चलता। काव्य भक्तिरस से पूरित है तथा वर्णन की सुषमा से मण्डित है।[2]

9. जानकीहरण– महाकाव्य के नाम से द्योतित होता है कि इसमें सीता का चरित प्रधानतया निरूपित किया गया होगा लेकिन महाकाव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इसमें सीता के चरित की प्रधानता नही हैं। जानकीहरणम् महाकाव्य के रचयिता महाकवि 'कुमारदास' हैं। विभिन्न सुभाषित ग्रन्थों में कवि को विभिन्न नामों से अभिहित किया गया है। कुमारदास के जानकीहरण महाकाव्य का समय षष्ठ शती

के पूर्वार्ध में माना जाता है। कुमारदास पर कालिदास व भारवि का भी प्रभाव महाकाव्य में लक्षित होता है। जानकीहरण कुमारदास की एकमात्र रचना है। महाकाव्य का कथा–बीज मुख्यतः वाल्मीकि रामायण के प्रथम 6 काण्डों से लिया गया है, इस महाकाव्य में 20 सर्ग प्राप्त होते हैं। साहित्यिक व ऐतिहासिक दोनों ही दृष्टि से इस महाकाव्य का अमित महत्व है।

प्रथम सर्ग में अयोध्या के राजा दशरथ तथा उनकी महारानियों का वर्णन महाकवि ने किया है। द्वितीय सर्ग में बृहस्पति के विष्णु से सहायता माँगते समय रावण के भयंकर चरित्र का वर्णन है। इसी सर्ग में विष्णु की शोभा का अद्वितीय वर्णन भी विद्यमान है–

सव्यापसव्यभागस्थपा×चजन्यसुदर्शनम्।

तटद्वयस्थचन्द्रार्कविन्ध्यशैलमिवोच्छ्रितम्।।[1]

(जिनके वाम पार्श्व अथवा हाथ में शंख और दक्षिण पार्श्व में सुदर्शन था (और इसलिए जो) अत्युच्च विन्ध्यपर्वत के समान दिखलाई पड़ रहे थे, जिसके उभय पार्श्वों पर (क्रमशः डूबते और उदित होते) चन्द्र और सूर्य स्थित हों।)

तृतीय सर्ग में राजा दशरथ की जलकेलि तथा सन्ध्या का काव्यमय रमणीय वर्णन है। चतुर्थ तथा पंचम सर्गों में दशरथ के महल में चार पुत्र पैदा होते हैं और रामजन्म से लेकर ताड़का तथा सुबाहु वध तक की कथायें हैं। षष्ठ सर्ग में राम–लक्ष्मण को साथ लिये विश्वामित्र जी जनकपुरी पधारते हैं और जनक से उनकी भेंट होती है। सप्तम सर्ग में राम और सीता का प्रेम तथा विवाह वर्णित है। अष्टम सर्ग में राम–सीता का श्रृंगार वर्णन है। नवम सर्ग में सभी भाई अयोध्या लौटते हैं। दशम सर्ग में दशरथ राजनीति के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते समय एक लम्बी वक्तृता देते हैं। रामचन्द्र का यौवराज्याभिषेक सर्वसम्मति से किया जाता है। बहुत सी घटनाएँ घटती हैं। सर्ग की समाप्ति के पहले ही जानकी का हरण हो जाता है। एकादश सर्ग में राम तथा हनुमान की मित्रता का वर्णन है। बालिवध के बाद वर्षा ऋतु का अत्यन्त मनोहर वर्णन मिलता है। द्वादश सर्ग में शरद्काल में

सुग्रीव के अन्वेषण–कार्य (सीता की खोज) में न प्रवृत्त होने पर लक्ष्मण जी उनको उलाहना देते है। सुग्रीव रामजी को प्रसन्न करने के लिए उनके समीप आते है, तथा पर्वत का वर्णन करते है। त्रयोदश सर्ग में लंकादहन का वर्णन है। चतुर्दश सर्ग में वानर लोग समुद्र के ऊपर सेतु बनाते हैं। कवि ने इस सर्ग में वानर सेना के समुद्र पार जाने का चमत्कारी वर्णन किया है। पंद्रहवें सर्ग में अंगद का रावण की सभा में राम का दूत बनकर जाने का वर्णन है। सोलहवें में राक्षसों की कमनीय केलियो का वर्णन है। सत्रहवें से लेकर बीसवें सर्ग तक राम व रावण तथा उनकी सेनाओं के मध्य संग्राम का वर्णन है। इस युद्ध में रामचन्द्र राक्षस रावण पर विजय प्राप्त करते हैं तथा राम की विजय के साथ महाकाव्य समाप्त हो जाता है। महाकवि ने केवल महाकाव्य का नाम ही जानकीहरण रखा है, किन्तु सीता के चरित्र को प्रमुखता नहीं दी गई हैं।

(1) राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित आधुनिक साहित्य सन्दर्भ जो प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा सम्पादित है। इस सूची में सीता पर आधृत कतिपय ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, जिनकी सूची इस प्रकार है :–

1. **जानकीपरिणय महाकाव्य :–** मुकुन्द, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी–1986 में प्रकाशित।
2. **वनेनिर्वासितासीता :–** डॉ.विशुद्धा नन्दमिश्र, प्रकाशक आचार्य श्रीमती निर्मला मिश्रा, पुरस्कार समिति वेदमन्दिर कूचा पांडा बदायूँ उत्तरप्रदेश–2004 में प्रकाशित।
3. **जानकीजीवनम् :–** दशरथ द्विवेदी – राधा प्रकाशन, दरियाग×ज, नई दिल्ली 2004 में प्रकाशित।
4. **सीतास्वयंवर महाकाव्यम् :–** के.एस. श्री नागराजन्, वी.वी. सुब्बैया एण्ड सन्स, बैंगलोर 1949 में प्रकाशित।

(2) श्री केशवराव मुसलगाँवकर प्रणीत 'आधुनिक संस्कृत काव्य परम्परा' में सीता पर अवलम्बित कुछ ग्रन्थ और भी उपलब्ध होते हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं :–

5. **सीतारामाभ्युदयम्** :–विजागापट्टन जिले के निवासी गोपाल शास्त्री द्वारा प्रणीत।[1]
6. **सीतादिव्यचरितम्** :–वरदवल्लीवंशज,श्री मुष्णग्रामवासी श्रीनिवास द्वारा प्रणीत।[2]
7. **सीतारामविहारः** :–लक्ष्मण सोमयाजी (ओरगंटी शंकरसुत) द्वारा प्रणीत।[3]
8. **सीतास्वयंवर** :–काशी के प्रसिद्ध विद्वान् बटुकनाथ शर्मा द्वारा रचित।[4]
9. **सीतापरिणयम्** :–सूर्यनारायणाध्वरीकृत।[5]
10. **सीतास्वयंवरम्** :–कामराज कवि विरचित।[6]
11. **वैदेही परिणयम्** :–काशीनाथ कवि विरचित।[7]

कुछ अन्य ग्रन्थ भी उपलब्ध होते हैं जिनका विवरण इस प्रकार है–

12. **सीताचरित महाकाव्य** :– कृष्णमूर्त्ति शास्त्री, सन् 1953, श्रीरामकृष्णा प्रेस मुदुरई से प्रकाशित।
13. **वैदेही चरितम्** :– विद्यावचस्पति रामचन्द्र मिश्र, सन् 1985 में, कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय दरभंगा से प्रकाशित हुआ है।
14. **वैदेही विवाहम्** :– के.एस.कृष्णमूर्त्ति शास्त्री, के.एस.कृष्णस्वामी शास्त्री, नं. 15 VI मेन रोड़, राजा अन्नामलाईपुरम् मद्रास, 1959 में प्रकाशित है।

रामजी उपाध्याय कृत सीताभ्युदयम् नाटक चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी से प्रकाशित है तथा रामभद्र दीक्षित (17वीं शती) कृत जानकीपरिणय महाकाव्य नामक ग्रन्थ का भी उल्लेख मिलता है।

एम. कृष्णमाचारी ने भी अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर' में सीता पर आधृत कई ग्रन्थों का उल्लेख किया है जिनके नाम इस प्रकार हैं :–

सीता कल्याण, सीताचम्पू, सीतादिव्यचरित्, सीतानन्द, सीतानवरत्नमाला, सीतापतिविजय, सीतापरिणय (गोपाल शास्त्री प्रणीत), सीताराघवीय, सीतारामचम्पू, सीताराम दयालहरी, सीतारामविजय, सीतारामविहार, सीताविवाह, सीताविहार, सीतास्वयंवर, सीताहरण नामक ग्रन्थों का उल्लेख किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक कवियों ने सीता के चरित्र को प्रमुखता प्रदान कर महाकाव्यों का प्रणयन किया है तथा सीता को अबला, भीरु के रूप में चित्रित न कर एक तेजस्विनी, सशक्त नारी के रूप में उकेरा है। किन्तु जो ग्रन्थ हमें उपलब्ध नहीं हुए हैं उनके नामों को देखने से विदित होता है कि वे सभी ग्रन्थ सीता के नाम पर अवलम्बित हैं जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इन ग्रन्थों में सीता का चरित्र प्रधान होगा।

(vi) उत्तरसीताचरित का महाकाव्यत्व –

पिछले अध्याय में हमनें प्राचीन तथा आधुनिक महाकाव्यों की परम्परा एवं विभिन्न काव्यशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित महाकाव्यों के लक्षणों को प्रस्तुत किया है। उन्हीं को आधार बनाकर हम उत्तरसीताचरित महाकाव्य का महाकाव्यत्व सिद्ध करने का प्रयास करेंगे।

काव्यशास्त्रियों ने विधान किया है कि महाकाव्य का प्रारम्भ मंगलाचरण, आशीर्वचनात्मक, नमस्कारात्मक अथवा वस्तुनिर्देशात्मक होना चाहिए। प्रस्तुत महाकाव्य में भी महाकवि ने अष्टमूर्ति शिव को नमस्कार करते हुए वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण किया है। म›लाचरण पर कालिदास का स्पष्ट प्रभाव परीलक्षित होता है। कवि कृत मंगलाचरण इस प्रकार है–

विभूष्य पौलस्त्यशिरोभिरीश्वरं महीतनुं तस्य सुतां समुद्वहन्।

वनव्रतान्ते भगवान् रघूद्वहः सहानुजाभ्यां गृहमीयिवान् निजम्।।[1]

(रावण आदि के सिरों से अष्टमूर्ति भगवान शिव की अन्यतम मूर्त्ति पृथ्वी को विभूषित कर उस (पृथ्वी) की पुत्री (सीता) को लिए हुए भगवान् राम वनवासव्रत पूरा होने पर दोनों अनुजों (लक्ष्मण तथा भरत) के साथ अपने घर (अयोध्या) पहुँचे।)

आचार्य भामह से लेकर आचार्य हेमचन्द्र आदि प्राचीन तथा अर्वाचीन काल में भी प्रायः सभी काव्यशास्त्रियों ने महाकाव्य का सर्गरूप होना स्वीकार किया है। इसी परम्परा का अनुकरण करते हुए महामहोपाध्याय रेवाप्रसाद द्विवेदी जी ने अपने महाकाव्य उत्तरसीताचरित को 10 सर्गों में निबद्ध किया है। इस महाकाव्य की कुल श्लोक संख्या 694 है। हर सर्ग के अन्त में अगले सर्ग की इतिवृत्त की सूचना मिलती है। कवि ने प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग किया है और सर्ग के अन्त में भी दूसरे छन्दों का प्रयोग किया है, जैसे प्रथम सर्ग में वंशस्थ छन्द और अन्तिम श्लोक में मालभारिणी छन्द दूसरे सर्ग में वंशस्थ छन्द व अन्तिम श्लोक में मालिनी, तृतीय सर्ग में रथोद्धता अन्तिम में पुष्पिताग्रा, चतुर्थ सर्ग में सुन्दरी अन्तिम में पृथ्वी, पंचम सर्ग में प्रहर्षिणी व अन्तिम में मन्दाक्रान्ता, षष्ठ सर्ग में पुष्पिताग्रा और अन्तिम श्लोक में मालिनी, सप्तम सर्ग में पुष्पिताग्रा और सर्ग के अन्त में मालिनी, अष्टम सर्ग में अनुष्टुप् और सर्गान्त में मालिनी, नवम सर्ग में उपजाति और सर्गान्त में मन्दाक्रान्ता, दशम में उपजाति व अन्तिम श्लोक में मन्दाक्रान्ता का प्रयोग किया है।

प्रायः सभी प्राचीन और अर्वाचीन काव्यशास्त्रियों ने महाकाव्य के लक्षण में उल्लेख किया है कि महाकाव्य का नाम किसी नायक या वृत्त के आधार पर होना चाहिए अतः प्रस्तुत महाकाव्य का नामकरण भी द्विवेदी जी ने इसकी प्रमुख नायिका सीता के नाम पर उत्त्सरसीताचरित रखा है। नामकरण में कवि ने भवभूति के पद चिह्नों का अनुगमन किया है। जिस प्रकार भवभूति ने रामायण के उत्तरकाण्ड को लेकर उत्तररामचरित की रचना की है उसी के अनुरूप महाकवि ने भी रामायण के उत्तरकाण्ड को लेकर उत्तरसीताचरि**त** की रचना की है और वाल्मीकि, कालिदास व भवभूति से अलग सीता के चरित्र को चित्रित किया है, जैसा कि ंचिंतामणि देशमुख जी का कथन है कि –

^^भवतां सीता कालिदास सीतातोऽधिकं सप्राणा समधिकमुदात्ता च।

(उत्तरसीताचरित – आशिषः भाग)

The theme is well chosen and its presentation is competent. I think you have portrayed Sita as a more living and noble – souled character than Kalidas in his 14th Sarga of Raghuvansha.

(उत्तरसीताचरित – आशिषः भाग)

महाकाव्य के लक्षण में कहा गया है कि प्रत्येक सर्ग का नामकरण होना चाहिए अर्थात् सर्गों के नाम उसमें वर्णित कथा के आधार पर होने चाहिए अतः कवि ने यहाँ प्रत्येक सर्ग का नामकरण किया है, जैसे प्रथम सर्ग का नाम राष्ट्रपतिनिर्वाचन, द्वितीय सर्ग का नाम जानकीकौलीनम्, तृतीय सर्ग का नाम जानकीपरित्यागः चतुर्थ सर्ग साकेतपरित्यागः, पंचम सर्ग कुमारप्रसवः, षष्ठ सर्ग जानकीमुनिवृत्तिः, सप्तम सर्ग का नाम विद्याधिगमः, अष्टम सर्ग का नाम कुमारायोधनम्, नवम सर्ग का नाम मातृप्रत्यभिज्ञानम् तथा दशम सर्ग का नाम समाधिमा›ल्य है।

उभयाचार्यों का मत है कि महाकाव्यों का इतिवृत्त इतिहास एवं पुराण की कथा अथवा किसी सत्पुरुष की कथा पर आधृत होना चाहिए इस दृष्टि से महाकाव्य की कथावस्तु जगत् प्रसिद्ध आर्ष महाकाव्य के उत्तरकाण्ड से ग्रहीत है। नायक मर्यादापुरुषोत्तम प्रभु राम सूर्यवंशी तथा देवता भी हैं उनमें उदात्तनायक के समस्त गुण विद्यमान हैं किन्तु इस महाकाव्य में नायक का नायकत्व गौण है। इस महाकाव्य में परम्परा प्राप्त लक्षणों के अनुरूप पुरुष पात्र को नायक न बनाकर नारीपात्र सीता को नायकत्व प्रदान किया गया है। नायक–नायिका के युग्मरूप में सीता की प्रत्यासत्ती महाकवि ने की है। प्राचीन महाकाव्य परम्परा और आधुनिक महाकाव्य परम्परा दोनों के ही आचार्यों ने महाकाव्य के अन्तर्गत वर्णनीय बहुत से विषयों का उल्लेख किया है लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि महाकाव्य में सभी वर्णनीय विषयों का वर्णन किया जाए फिर भी महाकवि ने परम्परा का अनुकरण

करते हुए वर्णनीय विषयों का वर्णन किया है जो इस प्रकार है – हिमालय पर्वत का वर्णन (1.2, 9.61), ग्रीष्म, वर्षा, शीत, शरद ऋतुओं का वर्णन (1.12,2.12,1.4), उषाकाल (5.4), नगर वर्णन में साकेत (1.4), उत्तरकोसल अयोध्या (1.40), नगर प्रदक्षिणा (1.42), नदियों में गंगा नदी (5.1, 5.28, 38), यमुना (5.46), सिन्धु (10.26), लौहित्या (10.26), वंक्षु (आक्सस नाम नदी 9.61), शोणनद (10.32), सरयू नदी (1. 44) इन सर्गों में वर्णन मिलता है। विप्रलम्भ शृ›ार का वर्णन द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, सप्तम, अष्ठम सर्गपर्यन्त है। युद्धवर्णन (विजययात्रा, अश्वमेध यज्ञ) का नवम सर्ग में, पंचम सर्ग में प्रकृति का सुरम्य चित्रण उपलब्ध होता है।

कथानक की मौलिक, नवीन उद्भावना अन्तर्मन को अभिभूत करने वाली है । सीता कृत सामाजिक कार्य से लौकिक ग्राम्य संस्कृति के जीवन की अनुभूति होती है। मधुमास, चन्द्रोदय, सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रास्त, तपोवन का स्वाभाविक एवं उक्ति वैचित्र्यपूर्ण वर्णन किया है। कारुण्य, वात्सल्य, शौर्य आदि भाव, भावशान्ति आदि रस की उत्पादकता को बढाने वाले है। अलंकारों में भी उत्तमोत्तम सादृश्य है, नवीन आरोप है, उपमायें भी नवीन हैं। नये उपमान भी प्रत्येक सर्ग में मिलते हैं। अभिनव अर्थान्तरन्यास अलंकार का प्रयोग है। इसके साथ ही उत्प्रेक्षा, अतिश्योक्ति, दीपक, व्यतिरेक, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, अपह्नुति, निदर्शना, विषम, पर्यायोक्त, यमक आदि अलŠारों का प्रयोग किया है।

महाकवि की शैली पाण्डित्यपूर्ण है जिससे कहीं कहीं भावों की प्रवहमयता में अवरुद्धता का आभास होता है। परिनिष्ठित, परिष्कृत, सारगर्भित, संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग महाकवि ने किया है। पाण्डित्यपूर्ण शब्दावली के कारण कहीं–कहीं रसानुभूति बाधित प्रतीत होती है। यद्यपि रस का परिपाक पूर्णरूपेण विद्यमान है। महाकाव्य में शृ›ार, वीर और शान्त तीन रसों में से किसी एक का अ›ारस होना आवश्यक बताया गया है। इस दृष्टि से इस महाकाव्य का मुख्य रस शान्त है। सीता ही शान्त रस की नायिका है।

विश्वबन्धुत्व की भावना राष्ट्रीयता ही इस काव्य मन्दिर का देवता है। इस महाकाव्य में निबद्ध विचार राष्ट्रीय है, भूमिका सामाजिक है, चरित्र धार्मिक है, प्रवृत्ति दार्शनिक है। अभिव्यक्ति कवित्वमयी तथा कथानक प्रवाहमय है। सनातन कवि का महाकाव्य भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्रीयता की भावना का अनूठा निदर्शन है। महाकवि ने बदलती संस्कृतियों के तुमुल संघर्ष या संक्रमण काल में सीता के चरित्र के माध्यम से समन्वय स्थापित करने का श्लाघनीय प्रयास किया है।

उत्तरसीताचरित महाकाव्य का सर्गानुसार कथावस्तुविधान

क. इतिवृत्त :–

रेवाप्रसाद द्विवेदी सनातन प्रणीत यह 10 सर्गों का महाकाव्य है। क्रमशः 1968,75,90 में इसका प्रकाशन कालिदास संस्थान वाराणसी से हुआ है। महाकवि का नाम नवीन प्रतिमानों के संस्थापक आचार्यों की परम्परा में अग्रणी है। एतदर्थ प्रकृत महाकाव्य भी नवप्रस्थान परम्परा का प्रमुख महाकाव्य है। रामायण उत्तरकाण्ड की कथा पर आधृत यह महाकाव्य सर्वथा मौलिक तथा नवीन आयामों को उन्मीलित करने वाला है। यह महाकाव्य आधुनिक नारीवादी युग के अनुरूप प्रणीत किया गया है। जैसा की विश्वनाथ और ईशान (संहिता) साहित्यकार ने कहा है कि महाकव्य में कम से कम आठ सर्ग होना आवश्यक है और सर्गो का आकार न छोटा हो ओर ना बड़ा हो। उसी अनुसार महाकव्य में दस सर्ग हैं प्रत्येक सर्ग में श्लोंको की संख्या 60 से लकर 70 से 72 तक है अर्थात किसी में 60, 62 श्लोक हैं तो किसी में 70 या 72 श्लोक है केवल अन्तिम सर्ग में श्लोकों की संख्या 82 है।

सर्ग से कथासार इस प्रकार है :–

प्रथम सर्ग :–

सनातन कवि रेवाप्रसाद द्विवेदी के महाकाव्य का प्रारम्भ राम, लक्ष्मण एवं सीता के अयोध्या आगमन से होता है। जब रामादि अयोध्या आ जाते हैं तो अयोध्या की जनता उनका उच्चस्वरों (गगनचुम्बी) में जय जयकार करती है। महल आने पर

माता कौसल्या सीता की प्रशंसा करती है कि अपनी चरित्र की रक्षा करते हुए तूने (सीता) राक्षस संस्कृति को नहीं अपनाया इसलिए तू राम और लक्ष्मण दोनों से बड़ी है। इसके बाद भरत एवं लक्ष्मण से बोलीं कि – तुम दोनों के ये चीर और ये जटाएँ समर्पण बुद्धि और स्वार्थबुद्धि के युद्धस्थल इस धराधाम पर युगों–युगों के लिए हमारे राष्ट्र के प्रतीक चिन्ह बन गए हैं। इसके बाद वे सभी पिता दशरथ के निवास स्थान पर जाते हैं, जहाँ स्नातक के समान दिखाई देने वाले भरत माल्यापर्ण से उनका स्वागत करते हैं। राम माता कैकेसी को अन्य माताओं से अधिक पूज्य मानते हुए कहते हैं कि – आपके कारण ही आज मैं पृथ्वी तल पर अच्छी स्थिति को प्राप्त हुआ हूँ। राजनीति के सुमेधाओं में आपका प्रथम स्थान है। इस बात को सुनकर लक्ष्मण कैकेयी के प्रति अपनी रूष्टता को त्याग देते हैं। तत्पश्चात् उत्तमवाद्ययन्त्रों से गुरूवशिष्ट राम का राज्याभिषेक करते हैं और यह राज्याभिषेक मानों प्रकृति द्वारा ही सम्पन्न किया जा रहा हो ऐसा प्रतीत होता हैं :–

इति प्रकृत्यैवनृपाभिषेचनं स्वयं तदानीं समपादि राघवे।

ऋचां तदुद्गीथशुभैर्विधानकैः महर्षिभिः केवलमभ्यनीयत।।[1]

इस प्रकार 'राष्ट्रपति निर्वाचन' नामक प्रथम सर्ग समाप्त होता है।

द्वितीय सर्ग :–

द्वितीय सर्ग में राजाराम विधिवत् राज्य प्राप्त करके प्रजा की सब प्रकार के उपद्रवों से रक्षा करते हैं। तीनों अनुजों लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न को भी यथोचित शक्तियाँ (राजनीतिक सत्ता) प्रदान करते हैं। इस प्रकार मानो उस भूमि पर सौराज्य सुख उपस्थित हो गया हो, किन्तु उसी समय सीताविषयक लोकापवाद की सूचना लिए महाविनाश के धेमकेतू के समान दूत राम के पास आता है। लोकापवाद की बात सुनकर सीता मूर्च्छित हो जाती है। मूर्च्छित सीता को उठाए हुए राम सभागृह पहुँचते हैं। वहाँ पहुँचकर सभी भाइयों के साथ सभी माताओं को अपना निर्णय करने के लिए तुरन्त संदेश भेजते हैं क्योंकि रघुवंशी धर्म कार्य में विलम्ब नहीं करते हैं। अनर्थ की आश ा लिए हुए माताएँ भी पुत्रों के साथ तत्काल सभागृह पहुँचती हैं।

मैथिली के होश में आजाने पर भगवान राम सीताविषयक लोकापवाद सभा को बताते हैं। यह सुनकर माताएँ बार–बार मूर्च्छित होती रहीं, उत्तरोत्तर अधिक सन्तप्त हो गई और अन्त में धैर्य खोकर विलाप करने लगीं। तब राघवों की उस सभा में मानों सब वाणी से मूक हो गए। यह देखकर आकुंचित नेत्रों के साथ सीता ही बोलीं। इस प्रकार 'जानकीकौलीन' नामक द्वितीय अ समाप्त होता है।

तृतीय सर्ग :–

लोकापवाद की बात सुनकर भाषणपटु सीता अपने वक्तव्य से सबको आकृष्ट करती हुई कहती हैं कि – कर्त्तव्य में अपनी आत्मा को प्रमाण मानकर चलने वाले के लिए किसी अन्य के निर्देश पर चलना सम्भव नहीं होता है। हे देव! आपका राज्य सुख शान्ति के जल से शीतल है तो उसमें मुझ जैसी निन्दित प्राणी का क्या प्रयोजन है ? मैं जहाँ आप चाहें रह सकती हूँ, केवल विश्वमान को आपकी कीर्ति के साथ निष्कण्टक रहना चाहिए। मैथिली राम के मनोभावों को जानकर कहती हैं कि – आर्य मनस्विनी नारियों को केवल स्त्री होने के कारण संसार श ा की दृष्टि से देखता है और उसकी बदनामी करता है, किन्तु लोकनायक के विवेक का दीपक उनके लिए नहीं बुतता। सीता, राम और माता ओं से अपने प्रति वात्सल्य को छोड़ने का अनुरोध करती हैं तथा स्वयं ही वनगमन के लिए तैयार हो जाती हैं। इस प्रकार परमपूज्या माताओं का आर्शीवाद लेकर सीता अनुज लक्ष्मण से कहती हैं कि – इस क्षण धर्म रक्षा के कार्य में तुम ही मेरे गुरू हो, आज मैं जंगल में अकेली जा रही हूँ, तुम अपने अग्रज की रक्षा पूर्ववत् करते रहना, जल धारा को छोड़ सकता है शैत्य को नहीं। माताओं को होश आया तो उन्होंने अपने वाष्प रूद्ध कण्ठ से सीता को वाल्मीकि आश्रम में सौंपे जाने का प्रस्ताव रखा। राजाराम ने भी इस प्रस्ताव को शिरोधार्य किया और लक्ष्मण से इसका पालन करने को कहा। लक्ष्मण ने मौन ह्रदय से उस रथ पर आर्यधर्म के समान आरूढ़ होने का प्रयत्न किया। राजधर्म के पालन के लिए राम ममत्व का बन्धन तोड़कर हिमाचल के समान मूर्तिमान हो गये। 'जानकी परित्याग' नामक तृतीय सर्ग का समापन होता है।

चतुर्थ सर्ग :–

लक्ष्मण जनकनन्दिनी को वनेचरी कैसे बनाएं और अपने बड़े भाई की आज्ञा का उल्लंघन भी कैसे करें। अतः कुछ समय के लिए लक्ष्मण वैदेही को उर्मिलादि बहिनों से मिलवाने ले जाते हैं। घर पहुँचते ही उर्मिला ने घर आई लक्ष्मी के समान मैथिली की अगवानी की और सीता से उदास होने का कारण पूंछा :–

तदलं बहुना, निबोध मां हतधैर्या, भगिनि! ब्रवीतु सत्।

प्रणति प्रवणेषु साधवो न भवन्त्यान्तर बाह्य मुद्रणाः।।[2]

तब सीता कहती हैं :–

अहमस्मि न साम्प्रतं स्वसो रविवंशस्य वधु परात्परा।

अधुनास्मि वराटचेटिका भुवनस्यास्य पुनर्वनेचरी।।[3]

उसी समय माण्डवी और श्रुतकीर्ति भी वहाँ आती हैं और तीनों बहिनें समाज तथा अधर्म की भर्त्सना करती हैं और सीता की प्रशंसा करते हुए प्रसव होने तक रूकने के लिए निवेदन करती हैं, किन्तु सीता के न मानने पर तीनों बहिनें कहती हैं कि जैसे हम राजभवन में साथ आयी थीं वैसे ही वन में भी साथ चलेगी हमे भी वन में रहने का अवसर मिल जायेगा। किन्तु सीता उनसे घर में ही रहने का अनुरोध करती हैं और सन्ध्या के समय विदेहपुत्री सीता राजमहल के वैभव को तिरोहित कर लक्ष्मण के साथ रथ पर आरूढ़ होकर चल देती हैं इस प्रकार 'साकेत परित्यागः' नामक चतुर्थ सर्ग समाप्त होता है।

प चम् सर्ग :–

लक्ष्मण सीता को वन में छोड़कर लौट आते हैं। जानकी अब सोच रही हैं कि मुझ अभागिनी को कौनसा स्थान मिलेगा। इस प्रकार परिपक्व गर्भ से अलसाई वह वनेचरी (सीता) ग ा के तट पर पहुँचती है। सीता के अर्न्तमन में अनेक प्रश्न उठते हैं कि मेरे पिता जनक संसार के पिता माने जाते हैं, मेरी माता पृथ्वी ने

सम्पूर्ण मनुष्यलोक को जन्म दिया है और मेरे पति युगपुरूष (राम) सबकी अन्तरात्मा हैं तो मेरी कोई सीमा क्यों होनी चाहिए ?

इस प्रकार वन प्रान्त में विचरण करती हुई वैदेही ने अन्त में एक निकु ज को अपना निवास स्थान बनाया उस निकु ज का किसलय पु ज उनके लिए राजकीय मण्डपीठ हो गया।

सीता की सेवा वनान्त वायु ने की, उनकी दशा देखकर प्रकृति भी दुःखी थीं। वाम विधाता भी तो छिद्रान्वेषण कर रहा था। उसने उसी समय सीता में प्रसव वेदना को जगाया। उस क्षण प्रकृति में भी निष्क्रान्ति हो गयी। यह देखकर महर्षि वाल्मीकि व्याकुल होकर ग ातट की ओर चल पड़े। प्रकृति को परिवर्तित होते देख महर्षि ने समाधि लगायी और उन्हें ज्ञात हुआ कि जानकी ने दो पुत्रों को जन्म दिया है एवं उनकी सेवा भारत–भूमि की लताएँ, वायु और वनदेवियाँ कर रही हैं। महामुनि ने देखा कि एक दिन मनुष्य ने मनुष्योतर क्रौ च को मारा था और आज मनुष्येतर लताएँ ही सीता (मनुष्य) की रक्षा कर रही हैं। महर्षि पुत्रों सहित सीता को आश्रम में ले जाते हैं। वे कहते हैं कि हमारे आश्रम राष्ट्र की विपत्तियों को दूर करने के हेतु ही बनाए गए हैं :–

राष्ट्रपतिं क्षपयितुमिमे निर्मिता आश्रमानः।।[4]

इस सर्ग का नाम महाकवि ने 'कुमार प्रसव' रखा है।

पष्ठसर्ग :–

अपने दोनों पुत्रों के साथ सीता वाल्मीकि आश्रम में इस प्रकार गई जैसे वह उनका दूसरा नैहर हो। वहाँ तप में निरत मुनिवनिताओं ने उत्कृष्ट उपकरणो से खुशी के साथ सीता का सत्कार किया। म लोप चार से युक्त और उन्हीं के द्वारा निर्दिष्ट कुटी को पाकर राजसुखरूपी तृण से वितृष्ण दिव्य हृदया सीता को लगा कि सचमुच में बहुत धन्य हूँ जो आदिकवि की कृपा से इस आश्रम में आ पहुँची हूँ जो देवताओं के लिए भी स्पृहणीय है यहां जो घर है वह लव कुश द्वारा छिड़के गये

जल–सीकरों से सिंचित है और इसमें चिकनी चटाईयाँ और पुआँर के सुखद बिछौने भी है इस आश्रम की जनता मुनियों की जनता है। इनके पास वैभव है किन्तु वैभव का विकार नहीं है।

यहाँ प्रत्येक व्यक्ति नियति का उपासक है और उस प्रत्येक में यह ज्ञान योग प्रतिष्ठित है कि यह सम्पूर्ण विश्व ईश से आवासित है अतः त्याग पूर्वक किया गया भोग ही शुभ है सभी युवक शुक भरत और भगीरथ हैं तथा सभी वृद्ध विदेहराज जनक के समान हैं। कुछ दिनों तक मुनियों के रोके जाने से आर्यलक्ष्मी सीता श्रम से दूर रहीं। किन्तु उसके पश्चात अपने पुत्रों को आश्रमोचित संज्ञाओं से वाल्मीकि के द्वारा प्रख्यापित कराकर सीता वृक्षों की चीर को धारण करके मुनि बन गई। आश्रम में मुनिपत्नियों, गायों या हिरनियों में जिस किसी को भी प्रसव होता सीता उनकी पीड़ा को अपने हाथ से स जोई सामग्री से दूर करती थीं। सीता ने अपना शिल्प वहाँ की मुनि बालाओं को सिखाकर ऋषिकुल में सभ्यता का विकास किया। इस प्रकार उस वनेचरी (सीता) ने ज ल को भी नगर बना दिया। धान के खेतों को सीता अपने पुत्रों साथ स्वयं ही निराती थीं एवं चटाई, वस्त्र, बरतन और खिलौने भी बनाती थीं। इस प्रकार वे अपने बच्चों को बचपन से ही कर्मठ बना रही थीं। सीता भूमि पर सोती थीं पिता के घर सीखी समाधि को साधती थीं। वे आसन और नियम के द्वारा अपने शरीर पर अपना स्वामित्व रखती हुई योगविधा से स्वस्थ रहती थीं। लव कुश को यथोचित संस्कारों की शिक्षा देती थीं। लव कुश में निरतिशय तेज (सूर्य का गुण) और निरतिशय सहिष्णुता (पृथ्वी का गुण) दोनों जन्म से ही विद्यमान थे। व्रत नियमों से कृशकाय सीता धैर्य युक्त परिश्रम से, विकास की इच्छा से अतीव शान्त चित्त से उनका पालन कर रही थीं।

अन्त में सीता ने पुरूषार्थ चतुष्ट्य प्राप्ति हेतु लव कुश के लिए आदि कवि वाल्मीकि को गुरू के रूप में चुना। इसी के साथ ही 'जानकीमुनिवृत्ति' नामक षष्ठ सर्ग समाप्त हुआ।

सप्तम् सर्ग :–

सीता ने शुभ समय में उन दोनों बालकों का उपनयन संस्कार करने के लिए वाल्मीकि से निवेदन किया तब वाल्मीकि जी सीता से कहते हैं कि वे पुरूष तो जन्मते ही महान हो जाते हैं जो सती माताओं की कल्याणी कुक्षि से पैदा होते हैं। भारतवर्ष के मुनियों के रक्त से बनी तुम जैसी जिनकी माता हों, उनको अन्य गुरू की क्या आवश्यकता है अथवा वह गुरू भी बड़ा ही पुण्यात्मा होगा जिसके आश्रम में ऐसे शिष्य आते हैं। इसलिए हे जानकि! इन पुत्रों के शिक्षण की तुम्हारी यह आज्ञा मुझे अतीव मान्य हैं। मैं इन दोनों को इनकी रूचि जानकर ही शिक्षित करूंगा क्योंकि अच्छे शिक्षक भी विफल हो जाते हैं यदि रूचि–रूपी जल को अग्नि के रास्ते सींचा जाए। इस प्रकार वाल्मीकि उन दोनों मुनिबालकों की गणित, खनिज, शिल्प और भूगोलशास्त्र में रूचि की परीक्षा लेते हैं और समाज के प्रति उनकी प्रवृत्ति को देखना चाहते हैं, क्योंकि द्विजकुल के दोंनो बालकों को ही विद्या के उज्जवल पथ से संसार को आगे बढ़ाना है। इस प्रकार अपना वक्तव्य पूरा करके वाल्मीकि ने उन बालकों को स्वीकार किया और आश्रमवासियों के साथ सांयकालीन धर्मकृत्य पूर्णकर लव कुश के सिर पर हाथ रखा तथा सभा का विर्सजन कर दिया। दूसरे दिन मुनि ने वैदिक विधियों से उन दोनों का मुण्डन करा कर उन्हें यज्ञोंपवीत पहनाया, अश्वत्थ के दण्ड दिये, मूँज की मेखला पहनाई और बलि नियम के लिए वामन बना दिया। तत्पश्चात् बालकों को परा–अपरा दोनों प्राच्य विधाएँ और अस्त्रविद्या भी पढ़ा दी। इस प्रकार सुबुद्धिबालक अपने सहपाठियों के साथ सभी विद्याएँ जान गये और माता के साथ आश्रम में रहकर आत्मलाभ प्राप्त किया। इस तरह 'विद्याधिगम नामक' सप्तम सर्ग की समाप्ति हुई।

अष्टम् सर्ग :–

उन दोनों शिष्यों ने चारों विद्याओं का गहन अध्ययन कर अ ो सहित सभी वेदों और शास्त्रों की भली प्रकार से व्याख्या कर दी। यह देखकर कवि ने उनका समार्वतन संस्कार करके उनको रामायण भी सस्वर पढ़ा दिया। इस प्रकार सीता उनके पुत्रों तथा उनके गुरू वाल्मीकि ने स्वस्वधर्म के पालन से तीनों आश्रमों को

सार्थक बना दिया। अत्यन्त दिव्य प्रभाव वाले इन बालकों ने आश्रमवासियों के स्थानों की तथा महामुनियों के तपोव्यय की रक्षा करना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार कल्पतरू की छाया जैसे उस आश्रम में सीता पुत्रशिक्षा तथा योगसिद्धि रूपी कामनाओं से पूर्ण हो गयी। इधर कोसलेश्वर भगवान राम ने पृथ्वी की खण्डता दूर कर उसे अखण्ड बनाने हेतु दिग्विजय के लिए अश्वमेध का घोड़ा छोड़ा अश्व की रक्षा के लिए लक्ष्मण पुत्र चन्द्रकेतु सेना के साथ वाल्मीकि आश्रम में आए। उनके सैनिक जय घोष कर रहे थे, किन्तु उसमें दूसरे क्षत्रिय वीरों के अपमान के उद्‌गार भी थे। स्वभाव से वीर होने के कारण सीता पुत्र लव कुश उन जयघोषों को सह नहीं सके। इस प्रकार दोनों मुनि बालकों और अतिविशाल सेना में युद्ध प्रारम्भ हो गया। उस युद्ध के दर्शक आश्चर्य, साहस और उत्साह थे। जब निरन्तर युद्ध हो रहा था तब लवकुश ने जृम्भकास्त्र से सेना को मूर्च्छित कर दिया। उसी क्षण क्रोधित चन्द्रकेतु वहाँ आए और जो युद्ध हुआ उसमें केवल अज्ञान कारण था। हिंसा और रक्तपात का लेशमात्र भी युद्ध में दिखाई नहीं दे रहा था। इसी समय मर्यादा को रक्षित करने हेतु राम शम्बूक के पास गये। शम्बूक को मार कर मर्यादापुरूषोत्तम राम अश्वमेध के अश्व को देखने के लिए वाल्मीकि आश्रम आए। महर्षि वाल्मीकि ने राम का स्वागत किया तथा वे दोनों युद्ध स्थल पर पहुँचे। वहाँ युद्ध में लगे दोनों बालकों ने युद्ध छोड़कर विनय के साथ अपने पुज्यों को प्रणाम किया। बच्चों ने जब अपने पूज्यों में एकता देखी तो वे भी एक हो गये क्योंकि राष्ट्र सदा वीरों की मेत्री पर ही निर्भर रहता है। वाल्मीकि तथा राम उन बच्चों के साथ आश्रम वापस आ गए। सीता यह सब जानकर भी परा ्मुखी ही रहीं। उधर जृम्भकास्त्र के हट जाने से सेना भी स्वस्थ हो गयी। इस प्रकार 'कुमारायोधन' नामक अष्टम् सर्ग समाप्त हो गया।

नवम्सर्ग :–

दूसरे दिन सवेरे लक्ष्मण, भरत, गुरूवशिष्ठ, तीनों माताएँ तथा विदेहराजजनक सभी वाल्मीकि आश्रम आ गए। किन्तु जानकी तब भी तटस्थ ही रहीं। वाल्मीकि ने

सभी सैनिकों को भी बुलाया और एक विशालसभा का आयोजन किया, जिसमें वनदेवियाँ कन्दमूल, फल और मधुवर्षा से सबका स्वागत कर रहीं थीं। योगी जनक सभा की अध्यक्षता कर रहे थे, उस सभा के बीचों बीच एक ऊँची वेदिका बनी हुई थी, किन्तु समाज में किसी ने ये नहीं पूछा कि 'यह क्या है ?' क्यों कि भारतवर्ष के लोग आप्त कार्यों में वाणी को स्थान नहीं देते और उस सभा के नेता वाल्मीकि थे, अतः प्राचेतस ऋषि वाल्मीकि ने सर्वप्रथम कहा – यज्ञकार्य में पत्नी को छोड़कर यज्ञ कर रहे राम का यह अनुष्ठान कोरी विडम्बना नहीं हैं यदि सीता की सूवर्ण प्रतिमा प्रतिष्ठित कर समाधान कर लिया गया है तो स्वयं सीता ने क्या अपराध किया है –

यद्यस्ति हेम्नः प्रतिमां विदेहपु याः प्रतिष्ठाप्य कृतः समाधिः।

विचार्यतां तत्र, कृतोऽपराधः स्वयं तया को नु विदेहपु याः।।[5]

यदि सीता मलिन है तो मलिनप्राणी का चेहरा तो उसके चित्र (फोटो और मूर्ति) में भी नहीं देखना चाहिए और यदि इतने दिनों के पश्चात आपकी सुमति जागी है तो आप सबको उनकी खोज करनी चाहिए। वाल्मीकि की वह वाणी सभासदों में सीता की पुनः प्राप्ति के लिए उत्कृष्ट तृष्णा बन गई। फिर वशिष्ठ वाल्मीकि से प्रेमपूर्वक बोले – हे विद्वन आप सर्वज्ञ हैं इसलिए 'इस स्वदेश (आश्रम और भारत) में सीता सुरक्षित है' इस वाक्य को सिद्ध कीजिए, लोक ने भी इस प्रस्ताव का समर्थन किया। वाल्मीकि द्वारा इ ित किये जाने पर वनदेवियों ने भूर्जपत्र के आवरण को धीरे–धीरे दूर करना आरम्भ कर दिया और विद्याधर वनिताएँ दिव्यस्वर में सीता की जयकार करने लगीं। दिव्यतेज से मण्डित सीता को लोगों ने भय और भक्ति से प्रणाम किया। सीता ने भी शिष्टाचार को ध्यान रखकर सबको प्रणाम किया। उस सभा में सभी के नेत्रों से अश्रु ही स्फुरित हो रहे थे। जनक जी ने जब वाल्मीकि आश्रम में कृशकाय राम सीता को देखा तो उन्हें लगा कि ''मानों बिटिया के विवाह की मा लिक घड़ी फिर से आ पहुँची है।'' शब्द स्फुरित हुआ तो बस यही कि तूने मेरी लाज रख ली। इस प्रकार यह 'मातृप्रत्यभिज्ञान' नामक नवम

सर्ग भी समाप्त हुआ।

दशम्सर्ग :–

साकेत के रहने वाले लोगों को सीता की सन्तति देखने की जिज्ञासा जागी जबकि जृम्भकास्त्र के कारण उनको यह आभास हो गया था कि प्रतिपक्ष से युद्ध करने वाले बालक सीता के ही पुत्र हैं। इधर दोनों बालक तथा चन्द्रकेतु स्वाध्याय तथा शास्त्राभ्यास में निरत थे। आदि स्रष्टा वाल्मीकी ने सभा का मनोभाव परखा और अध्ययनरत बालकों को वहाँ लाने का आदेश दिया, मित्रता के कारण चन्द्रकेतु को भी वे सभास्थल ले आए। चन्द्रकेतु ने अपने पिता का नाम लेकर अपने पूज्यों को प्रणाम किया, किन्तु पिता का नाम ज्ञात न होने के कारण दोनों बालकों ने माता का नाम लेकर पूज्यों को प्रमाण किया। कारुणिक कवि वाल्मीकि ने समझा की उनके काव्य की पूर्ति उपस्थिति है और दोनों पुत्रों से कहा– पुत्रों, तुमने जो मेरी रामकथा सुनी है, उसमें जो राम हैं, वे ये ही हैं और जो सीता हैं वे भी ये ही हैं। इस प्रकार वाल्कीकि ने उनको उनके माता–पिता से मिला दिया। पिता को जानकर भी उन्होंने अपनी माता की ओर देखा, क्योंकि सिर तो पहले पृथ्वी की ओर ही झुकता है। फिर भी वह वनेचरी (सीता) तटस्थ ही रही तो वाल्कीकि ने उन दोनों को उनके पिता राम को सौंप दिया। किन्तु राम ने भी स्वीकृति के लिए गुरु वशिष्ठ की ओर देखा वशिष्ठ ने दोनों पुत्रों को राम को सौंप दिया। तब राम ने वाल्मीकि और वशिष्ठ की दृष्टि से सुपरीक्षित दोनों बालकों को स्वीकार कर लिया। उसी समय चन्द्रकेतु ने सीता के चरणारविन्दों को सिर झुकाकर प्रणाम किया। सीता ने भी उसके मस्तक पर सुवर्णपट्ट का तिलक लगाया। उस समय सीता का मातृत्व देखकर सब एक ही स्वर में बोल बैठे–'इस चराचर की माता तो सीता ही है' किन्तु वैदेही तब भी मौन ही रही और सोच रही थीं कि–पति पिता आदि सब उपस्थित हैं और जीवन का कोई कृत्य भी शेष नहीं बचा है। अतः अब मुझे यह स्थूल देह अपनी माता को लौटा देना चाहिए। इस प्रकार पुनः भद्रासन लगा लिया और युक्त योगी बन गई। मुनिजनों ने सीता की वह स्थिति जानी तो भूर्जपत्रों का घेरा फिर करवा दिया और कुछ दिन प्रतिक्षा कर आतुर सम्बन्धियों ने कहा–

इयं कल्याणी तां गतिमुपगता यां स्पृहयते।

मुनीन्द्राणामात्मा शतशततपोऽनुष्ठितिपरः।।[6]

इस प्रकार सबने सीता को भूसमाधि दे दी क्योंकि योगमुक्त शरीर मृत नहीं माना जाता और मुनियों की सभा ने अश्रुपूरित पुष्पा जलि अर्पित कर माता सीता के समीप जाकर उनकी मिट्टी को माथे से लगा कर अपना जीवन धन्य माना। इस प्रकार दशम् सर्ग का समापन 'समाधि मा ल्य' नामक इस नाम से होता है।

महाकवि ने संस्कृत प्राच्य महाकवियों की परम्परा का अनुकरण करते हुए सीता के सौन्दर्य के लिए उन्हीं प्रचलित उपमानों तथा विशेषणों का प्रयोग किया है, किन्तु उत्तररामचरित की तुलना में सीता के आभ्यान्तरिक गुण भिन्न दृष्टिगत होते हैं, क्योंकि महाकवि रेवाप्रसाद द्विवेदी सनातन जी ने अपने महाकाव्य में सीता को आधुनिक नारीवादी युग के अनुरूप प्रस्तुत किया है, इसलिए सीता में राजपरम्परा से प्राप्त अन्य गुण भी उपलब्ध होते हैं। राम की पत्नी, अनन्य स्वरूपा, वैदेही संसार की सर्वोत्तम सुन्दरी हैं उनके अ –प्रत्य इतने सुन्दर और सुडौल हैं कि रत्नाभूषणों के बिना भी सीता स्त्रियों में रत्न के समान लगती हैं। जैसा कि किसी शायर ने कहा है ''मोहताज नहीं वह जेवरों का जिसे खूबी खुदा ने दी''

महाकाव्य का मूल मंत्र

विदेहराजजनकनन्दिनी, मिथिलानरेश की पुत्री, आयोध्यानरेश की पुत्रवधू, राजाराम की राजमहिषी, राम की अनन्यस्वरूपा, अनिन्द्य–सुन्दरी पृथ्वी से जायमान सीता समस्त आर्याव्रत (भारतभूमि) की उत्कृष्ट स्त्रीरत्न हैं। लेकिन उनकी उत्पत्ति तथा निर्वासन दोनों ही भारतीय ऐतिह्य में अद्यतन अन्वेषण का विषय बना हुआ है और यह अनुसन्धान अधुनातन जारी है।

पुरा इतिहास चतुर्विशंति साहस्त्री (वाल्मीकि–रामायण) रामचरितमानस, रामानन्दसागर, निर्मित टेलीविजन पर प्रसारित धारावाहिक रामायण के माध्यम से

भारत के हर प्रान्त तथा हर धर्मावलम्बियों, बालक, युवा, वृद्ध (नर–नारी) सभी के अर्न्तमन में बसी सीता एक ऐसा चरित्र है, जिसकी उत्पत्ति, विवाह, चौदहवर्ष वनवास, रावण द्वारा अपहरण, पौल्सत्यगृह में निवास, अग्निपरीक्षा, राम द्वारा निर्वासन, धरती में समाहित होना जिसके भाग्य के विपरिणाम में हर्ष एवं दुःख का विचित्र समन्वय है। किन्तु पतिपरायण सीता का राम द्वारा निर्वासन इतना क्रूर एवं हृदयविदारक है कि सहस्त्राब्दियाँ व्यतीत हो जाने पर भी उनके निर्वासन (परित्याग) का प्रश्न अर्न्तमन को सदा व्यथित करता है। एतद् विषयक जिज्ञासाएँ हमें अधुनातन शूल बनकर शालती हैं, शर बनकर बेधती हैं, हमें गैर संस्कृतिवादियों के प्रश्नव्यूहों में ला खड़ा करती हैं, नारीवादी चिन्तकों के चिन्तनशरों से उद्वेलित करती हैं, हर बुद्धिजीवी के मस्तिष्क में प्रश्नचिन्ह उबरता है, दार्शनिकों, मनीषियों द्वारा नाना प्रकार के तर्क उपस्थित किये जाते हैं। सीता निर्वासन पर उठे नाना विप्रतिपत्तियों का समाधान प्राच्यमहाकवियों ने अपनी नवीन उद्भावनाओं के द्वारा अपने महाकाव्यों और नाटकों में नहीं किया है। बल्कि पौरस्त्य महाकवियों ने सीता के चरित्र को आरेखित करने में वाल्मीकि के ही पदन्यास का अनुकरण किया है यथाः– रघुवंश, जानकीहरण, रावणवध, अनर्घराघव, उदात्तराघव, कुन्दमाला इत्यादि नाटकों एवं महाकाव्यों में किसी भी महाकवि ने सीता निर्वासन के विषय में सर्वथा नवीन मौलिक उद्भावनाएं नहीं की है ना ही अपनी कल्पना शक्ति से कोई परिवर्तन करने का उपक्रम किया है। इसका कारण जहाँ तक मेरी समझ में आता है शायद प्राच्यकवियों की दृष्टि नारीवादी चिन्तन के प्रति उदासीन रही है। कवियों को तद्युगीन सामाजिक चेतना के अनुरूप नायिका का अबला, भीरू, करूणक्रन्दन करने वाली, सर्वसाहा वाला रूप ही अतिशय प्रिय रहा है। यही कारण है कि महाकवियों ने वैदिक कालीन तेजस्वी नारियों (गार्गी, अपाला, मैत्रेयी) के चरित्र को उपजीव्य बनाकर ग्रन्थों का प्रणयन नहीं किया है। जबकि आधुनिक युग नारीविमर्श (नारीवादी चिन्तन का युग) का काल रहा है। अतः इस युग में मैत्रेयी के चरित्र को लेकर 'श्री कृष्ण लाल जी' ने 'मैत्रेयी नाटक' 'ब्रह्म देव शास्त्री जी' ने 'सावित्री' 'राजेन्द्रमिश्र' ने 'विद्योतमा' आदि नाटकों का प्रणयन किया है। 'राम जी उपाध्याय' ने अपने संस्कृत

नाटक' 'सीता अभ्युदयम्' में सीता को एक उच्च शिक्षिता, तेजस्विनी नारी के रूप में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्राच्य कवियों की दृष्टि नारी के प्रति सापेक्ष नहीं वरन् निर्पेक्ष रही है।

लेकिन संस्कृत साहित्य के इतिहास में यह बहुत गौरव का विषय है कि 19वीं, 20वीं शताब्दी में 'रेवाप्रसाद द्विवेदी' द्वारा प्रणीत 'उत्तरसीता चरित' तथा 'अभिराजराजेन्द्र मिश्र' द्वारा रचित 'जानकी जीवनम्' महाकाव्य में दोनों महाकवियों ने सीता निर्वासन के प्रसंग को अपने महाकाव्यों में सर्वथा नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। अपनी दिव्य कवित्व प्रतिभा से नवीन परिकल्पनाएं की है तथा उसके चारित्रिक सौष्ठव को नव्यता, दिव्यता प्रदान की है। यद्यपि महाकाव्य की कथावस्तु किसी सज्जन पुरूष अथवा महापुरूष पर आधारित होती है और उसके माध्यम से ही मानव जीवन की समग्रता का चित्रण इसमें किया जाता है। महाभारत के नामकरण के विषय में यह मत प्रकट किया गया है कि ''भरत वाच्यम महाभारतम मुच्यते'' अर्थात् भरतों की महत्ता के कारण ही इसके महाभारत कहा जाता है। इससे स्पष्ट है कि महाकाव्य में किसी महान् पुरूष की कथा को ही आधार बनाया जाता है। भामह ने 'सदाश्रय' और विश्वनाथ ने 'सज्जनाश्रय' कहकर इसकी मत की पुष्टि की है। सीता चरितम् महाकाव्य की कथावस्तु महापुरूष पर आधारित न होकर महान् स्त्री के चरित्र से सम्बंधित है। सीता यहां केवल करूणा का पात्र नहीं है। वह पतिव्रता पत्नी का आदर्श मात्र ही नहीं है बल्कि वह एक महान् स्त्री है जो मानवता के कल्याण के लिए अपने समस्त सुखों के साथ–साथ अपना जीवन भी त्यागने के लिए तैयार है।[1] भगवान राम के राज्य सिंहासन के आधे भाग पर विराजमान होकर भी जनापवाद के कारण स्वयं ही कौशल्या आदि माताओं और राम को अभिवादन करके लक्ष्मण द्वारा चालित रत से अयोध्या नगरी को छोड़कर वन के लिए प्रस्थान करती हैं।[2]

सीता कोई साधारण स्त्री न होकर महामुनियों के रक्त से समुद्भूत दिव्य ज्योति है[3] महायोगी विदेहराज से प्राप्त विनय और माता पृथ्वी से प्राप्त रत्नरूपदेह की साकार प्रतीक हैं।[4] योग विद्या के कारण समस्त प्राकृति कष्टों को सहने में

समर्थ हैं।[5] ग्रहस्थ आश्रम में रहते हुए वधुभाव से सबको यथोचित आदर सम्मान देते हुए अपनी इच्छा से पति के साथ वन जाकर पतिव्रत धर्म का पालन करती हैं तथा पति द्वारा जनहित के लिए प्राप्त वनवास को सहर्ष स्वीकार कर लेती हैं।

वन में रहते हुए पुत्र जन्म के बाद ऋर्षि के आश्रम में मुनि पत्नीयों, गायों, या हिरनियों आदि की पीड़ा को स्वयं दूर करती हैं। मुनियों का वेश धारण उन्हीं के समान आचरण करती हैं और भूमि पर सोती हैं। स्वयं ही चटाई, वस्त्र आदि बनाती हैं तथा अपने पुत्रों को भी स्वयं सेवा का व्रत सिखाती हैं।[6] दोनों बालकों को शिक्षार्थ कवि वाल्मीकि को सौंपकर सीता सन्यासी वेश धारण कर तप करती हैं और आश्रम में राम के आने पर भी परांड.मुख रहती हैं क्योंकि वशीजनों में त्यक्त वस्तु के प्रति फिर से आसक्ति पैदा नहीं होती।[7] महाकवि द्वारा आयोजित सभा में उपस्थित राम, जनक, माताओं और समस्त साकेत निवासियों द्वारा चलने का अनुरोध किये जाने पर भी अपने जीवन का कोई कृत्य शेष न देखकर, उत्तम समय व स्थान जानकर सीता शांत चित्त से स्थिर, सुखद, सम तथा भद्रासन से शोभित पद्मासन पुनः लगा लेती हैं। सीता के व्यक्तिगत चित्रण से उनकी सदाश्रयता प्रकट होती है, जो महाकाव्य की कथावस्तु के लिए परम् आवश्यक है।

द्विवेदी जी ने अपने महाकाव्य की भूमिका में ऐसा किंचित् भी उल्लेख नहीं किया है कि वे सीता निर्वासन की घटना से व्यथित रहें हैं अथवा इस घटना पर उनका विश्वास नहीं है अथवा उत्तरकाण्ड वाल्मीकि की रचना नहीं है। उन्होंने इस सन्दर्भ में अपना मन्तव्य नहीं दिया लेकिन महाकाव्य के इतिवृत्त में सीता निर्वासन के प्रस में सीता के चरित्र को आज के नारीवादी युग के अनुरूप सृजित किया है।

द्वितीय सर्ग में गुप्तचर द्वारा लोकापवाद की घटना के श्रवण गोचर होने पर राम की विक्रिया को देखकर सीता मूर्च्छित हो जाती है। इस स्थिति में राम महागज द्वारा उठाये गये कमलिनी की भांति सीता को उठाते है और राजभवन में आकर माताओं को बुलाने का आदेश देते हैं। माताओं के उपस्थित होने पर राम वज्रतुल्य कठोरवाणी को सभा के समक्ष कहते हैं। उस परूषवाणी को सुनकर माताएं निश्चेष्ट

हो जाती है और प्रजा मूक हो जाती है। ऐसी स्थिति में सीता स्वयं धैर्यपूर्वक कहना प्रारम्भ करती है :–

अस्तु में भवदभीप्सिता स्थितिर्हन्त कुत्रचिदपि क्षमातले।

विश्वमस्तु तु विशल्यतां गतं काममद्य सह कीर्तिभिस्तव।।[1]

सीता स्वयं ही वनगमन की अनुमति मांगती है :–

प्राणतोपि यशसि स्पृहागुरुः सूर्यवंशिषु हि या प्रशस्यते।

तां विभाव्य कलुषा स्नुषाऽद्य वो याति दूर मनुमन्यतान्तमाम्।।[2]

राम की विक्रिया को देखकर शायद सीता का अर्न्तमन अदम्य साहस और धैर्य से आप्यायित हो जाता है और वे स्वयं वन में जाने का निर्णय ले लेती है। सीता का यह आचरण भारतीय नारी को भारतीय संस्कृति के शिखर पर प्रतिष्ठित करने वाला है :–

यार्मि मातर इतः स्वतस्ततो यामि, यामि विपिनं न मे व्यथा

कीर्तिकायमवितुं सुमानुषा मृत्युतोपि न हि जातु बिभ्यति।।[3]

सीता लक्ष्मण से उनको अर्थात् स्वयं को वन में छोड़ने के लिए आदेशित करती हैं यथा :–

याम्यहं विपिनमेकला गुरूं त्वं पुरेव परिरक्ष सर्वतः।

त्यक्तधारमपि वारि शैत्यतो विप्रकर्षमिह नैव लिप्सते।।[4]

इन उद्धरणों से हम देखते हैं कि सीता आधुनिक नारी के अनुरूप स्वविवेक से निर्णय लेने में दक्ष है। अपवाद के भय से राम द्वारा गर्भवती का परित्याग किया जाना ही इस महाकाव्य की मूल कथा है। इस परित्याग के कारण समग्र कथावस्तु अग्रसर होती है और सीता का मुनि वेश धारण करके वन में निवास करते हुए उत्थान से परे की स्थिति होकर योगी बन जाना आदि का चित्रण किया गया है। अतः कवि ने अत्यन्त दक्षता पूर्वक अपने लघु कलेवर में समग्र कथा को समाहित

करने वाली सीता के चरित्र की उत्कृष्टता को प्रकट करने वाले नाम का चयन किया है।

एतद् विपरीत अभिराजराजेन्द्र मिश्र ने अपने महाकाव्य 'जानकी जीवनम्' की भूमिका में ही स्पष्ट रूप से अपना मन्तव्य देते हुए लिखा है कि– मैं यह नहीं कहता की सचमुच यह घटना घटी थी अथवा नहीं परन्तु इतना अवश्य मानता हूँ कि रामकथा के आदिस्रष्टा प्राचेतस वाल्मीकि ने न तो सीतानिर्वासन को स्वीकार किया था और ना ही लिखा था महर्षिवाल्मीकि प्रणीत रामायण अयोध्या वर्णन से प्रारम्भ होता है तथा युद्धकाण्ड की फलश्रुति से समाप्त हो जाता है। सारे विवादास्पद प्रसंग (सीता निर्वासन शम्बूकवध आदि)रामकथा की परिधि से बाहर है।[5]

राजेन्द्र मिश्र ने अपने महाकाव्य में सीता निर्वासन की घटना को बहुत सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है 18वें सर्ग[6] में सीता निर्वासन के समस्त घटनाक्रम को लोकमत द्वारा उत्तमोत्तम प्रकल्प के रूप में प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक महाकवियों ने सीता निर्वासन के प्रकरण को सर्वथा नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। और उनके चरित्र को भारतीय संस्कृति में सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित करने का सराहनीय प्रयास किया है।

उन्होंने भारतीय नारी को भारतीय संस्कृति के सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित किया है। सीता ने राक्षस संस्कृति के बीच रहकर भी राक्षस संस्कृति को ग्रहण नहीं किया बल्कि आर्य संस्कृति की रक्षा की है। माता कौशल्या का कथन है कि– 'तू राम और लक्ष्मण से भी बड़ी है।'[13] संस्कृत साहित्य के किसी भी मूर्धन्य विद्वानों ने सीता को राष्ट्रदेवी[14] राष्ट्र का गौरव[15] तथा रामायण नामक मन्दिर की देव प्रतिमा[16] नहीं कहा है। द्विवेदी जी का यह कथन राष्ट्र की महिमा को बढ़ाने वाला है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि द्विवेदी जी ने बदलती संस्कृतियों के संक्रमणकाल में सीता चरित्र के माध्यम से समन्वय स्थापित करने का स्तुत्य प्रयास किया है। इस प्रकार महाकवि ने अपनी नित्य नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से सीता के चारित्रिक सौष्ठव को स्वमत्यानुसारेण उन्मीलित करने का श्लाघनीय कार्य किया है।

महामहोपाध्याय द्विवेदी जी ने सीतानिर्वासन के सन्दर्भ में सीता के चरित्र को आधुनिक युगीन चेतना के अनुसार उकेरा है। इसके पहले किसी महाकवि ने इस प्रसंग में सीता के चरित्र का रेखा न नहीं किया है।

जीवन दर्शन एवं साम्प्रतिकी प्रासंगिकता

संस्कृत का समृद्ध साहित्य विश्वधरा का प्राचीनत साहित्य है किन्तु आज वैश्वीकरण, वैज्ञानिक एवं स चार क्रांति के युग में इसे विश्व का नवीनतम साहित्य कहें तो अतिश्योक्ति नहीं होगी क्योंकि इस साहित्य के गर्भ में हमारे वेदों, पुराणों तथा उपनिषदों में वे सभी नवीन सिद्धान्त, तकनीकियाँ, प्रवृत्तियाँ, धर्म–दर्शन, योग, जीवन–मूल्य आदि बहु आयामी तथ्य विद्यमान हैं जिसके आगे वैपि ती दृष्टियाँ नतमस्तक हैं (अचम्भित हैं)।

संस्कृत वाङ्मय की अक्षय ज्ञान–निधि युग–युगान्तरों से मानव के समग्र कल्याण की साधिका रही है। लौकिक साहित्य में रामायण और महाभारत आर्ष महाकाव्य इसके आदि स्त्रोत है। सीता का चरित्र सहस्त्राब्धियों से देश, काल तथा परिस्थित्यानुसार साहित्य सर्जकों का नित नूतन उद्भावनाओं द्वारा उन्मीलित करता रहा है। तथा सहित्य मर्मज्ञों, सामाजिकों, मनीषियों, तथा दार्शनिकों द्वारा अधीत और अध्यापित किया जाता रहा है। अधुना यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है– **सीता चरित्र ही क्यों?** इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि आज सतत् बढ़ रही अप संस्कृति के परिणाम स्वरूप हमारा समाज भोगवाद तथा भौतिकतावाद के दलदल में धंसता जा रहा है। सृष्टि के नैरन्तर्य के संवाहक नर–नारी प्रकृष्टेन चारित्रिक दुर्बलताओं के शिकार होते जा रहे हैं। ऐसे संक्रमित होते हुए काल में नवपीढ़ी के सर्वतामानेन अभ्युथान के लिए सीता के अनवद्य चरित्र के पौनः पुण्यने अनुशीलन से ही समाज एवं राष्ट्र का कल्याण होगा और हमारी सभ्यता, संस्कृति, संस्कार परम्परा, धर्म–दर्शन, जीवन–मूल्य सुरक्षित और संरक्षित हो सकेंगे।

चरित्र पर ही भारतीय राष्ट्र की नींव टिकी हुई है। इसी दृष्टि को लेकर

हमने ''सीता चरित्र का तुलनात्मक अध्ययन'' को अपने शोध का विषय बनाया है। इसी सन्दर्भ में भारत की **प्रथम महिला I.P.S. अधिकारी किरण बेदी** द्वारा 19 फरवरी 2010 को पत्रिका में प्रकाशित लेख का भी यही मन्तव्य है कि **''खुशहाल भारत के लिए दृढ़ चरित्र वाले महिला–पुरुष तैयार होने चाहिए।''**

इसी क्रम में महाकवि ने भी वैश्वीकरण भोगवादी संस्कृति, संचार क्रांति तथा अपसंस्कृति से सर्वाधिक आक्रान्त हो रहे विवाह संस्कार, परिवार तथा दाम्पत्य सम्बन्धों की पुर्नस्थापना सीताचरित के माध्यम से की है। उन्होंने दाम्पत्य सम्बन्ध की प्रगाढ़ता और पति–पत्नि के सम्बन्ध को अन्योन्याश्रित बताया है दोनों के मधुर सम्बन्ध से ही सामाजिक, पारिवारिक, समरसता संभव है। इसके साथ ही आर्य संस्कृति की प्रतिष्ठापना की है। सीता को दृढ़ चरित्र के कारण सूर्य वंश की कीर्तिपताका पर सम्पूर्ण मनुष्य सृष्टि के लिए वंदनीय धर्म की मुद्रा के रूप में और राम व लक्ष्मण से भी ऊँचा स्थान दिया है। तत्पश्चात् प्रजा द्वारा उनकी चारित्रिक पवित्रता के विषय में शंका प्रकट की गई है। इस पर भी उनका चरित्र क्षीर्णता को भी प्राप्त नहीं करता, क्योंकि उनकी माताओं व स्वयं श्रीराम को उनके चरित्र के प्रति दृढ़ विश्वास है। वे स्वयं अपने धर्म का निश्चय करके वन जाने के लिए तत्पर हो जाती हैं। वन में मुनि वेश धारण करके जीवन व्यतीत करते हुए अन्त में योग समाधि को प्राप्त करके भूमि में समा जाने पर तो उनका चरित्र उत्कर्ष को प्राप्त करता है। इतना ही नहीं समस्त जन उनकी समाधि की धूल को अपने मस्तक से लगाकर अपना जीवन धन्य समझते हैं जिससे सीता की महानता प्रकट होती है। असुर संस्कृति के मध्य रहकर भी सीता ने आर्य संस्कृति को सुरक्षित रखा है। यही कारण है कि महाकवि ने सीता को ''राष्ट्र देवी''[1] संज्ञा से सम्बोधित किया है। उन्होंने प्राचीन महाकवियों का अंधानुकरण नहीं किया और न ही सीता का भावुक, कातर, सर्वसाहा और करूण कृन्दन करने वाला रूप ही प्रस्तुत किया है अपितु द्विवेदी जी ने सीता को आधुनिक नारी वादी चेतना से युक्त साथ ही भारतीय संस्कृति से सम्पोषित भी किया है। वह सशक्त, तेजस्विनी, दृढ़, शक्तिशाली, आत्म बाल से युक्त निर्भीक नारी हैं। द्विवेदी जी ने अपने ग्रन्थ में सीता के निम्न ओजस्वी सम्बोधनों का प्रयोग किया है – दुर्ललिते, भुजजाते, मानिनी, कलवादिनी, आर्यशोणितभवा, ऋषिशोणितात्मना भारत प्रतिष्ठे आदि। सम्प्रति ऐसे ही ग्रन्थों के प्रणयन की आवश्यकता है।

संकेत सूची

1. अग्निपुराण, अध्याय 337 / 24, 25,
2. अग्निपुराण, अध्याय 337 / 28, 29, 30, 31
3. तत्रैव – 337 / 32–34
4. आचार्य भामह – काव्यालंकार–परिच्छेद–1 कारिका 19–22
5. आचार्य दण्डी – काव्यादर्श–परिच्छेद– 1, कारिका 14–20
6. आनन्दवर्धन – ध्वन्यालोक – पृष्ठ 164 – कारिका 2, पृष्ठ 188 कारिका 14
7. कविवर रुद्रट काव्यालंकार – परिच्छेद – 16, कारिका 5–10
8. तत्रैव – परिच्छेद – 16, कारिका 11–15
9. तत्रैव – परिच्छेद 16 / 16–19 कारिका
10. हेमचन्द्र – काव्यानुशासन – अध्याय – 8, सूत्र – 6
11. विद्यानाथ – प्रतापरुद्रयशोभूषण – काव्य प्रकरण, पृष्ठ 96
12. कविराज विश्वनाथ – साहित्यदर्पण – परिच्छेद 6, कारिका 315–322
13. तत्रैव – परिच्छेद 6 / 323 – 327 कारिका
14. डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी – संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास – पृष्ठ संख्या – 91
15. तत्रैव – पृष्ठ संख्या – 91
16. बलदेव उपाध्याय – संस्कृत साहित्य का इतिहास – पृष्ठ संख्या – 133
17. डॉ. जगन्नाथ पाठक एवं श्री बलदेव उपाध्याय संस्कृत वाङ्मय का वृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड, आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास–सम्पादकीय भाग पृष्ठ संख्या–29

18. श्री केशवराव मुसलगाँवकर – आधुनिक संस्कृत काव्य–परम्परा, प्रथम परिच्छेद, पृष्ठ संख्या 27, 30

19. डॉ. जगन्नाथ पाठक एवं श्री बलदेव उपाध्याय संस्कृत वाङ्मय का वृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड, आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास–सम्पादकीय भाग पृष्ठ संख्या–29

20. राजेन्द्र मिश्र – अभिराजयशोभूषण – पृष्ठ सं. 218/66–72

21. अभिराजयषोभूषण – पृष्ठ संख्या 219–221/73–76

22. डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी – अभिनवकाव्यालŠारसूत्र – पृष्ठ संख्या 325, 3/1/3

23. तत्रैव – पृष्ठ संख्या 326, काव्यविशेषविमर्श

24. तत्रैव – पृष्ठ संख्या 327, काव्यविशेषविमर्श

25. डॉ. रहसबिहारी द्विवेदी – नव्यकाव्यतत्वविमर्श – दूर्वा द्वितीयोन्मेष – साहित्यसमीक्षणम् – पृष्ठ संख्या 13

26. संस्कृत का अर्वाचीन समीक्षात्मक काव्यशास्त्र – अभिराजराजेन्द्रमिश्र, पृष्ठ संख्या – 121

27. वाल्मीकि रामायणम् – बालकाण्ड– 4.7

28. अभिराज राजेन्द्र मिश्र – जानकीजीवनम् महाकाव्य –15 / 46

29. तत्रैव –15 / 47, 48

30. तत्रैव – 15/58

31. तत्रैव – 18/45

32. तत्रैव – 18/68

33. तत्रैव – 18/69

34. तत्रैव – 18/79

35. तत्रैव —18 /91

36. तत्रैव —18 /94

37. तत्रैव —18 /109

38. तत्रैव — 18 /110

39. वाल्मीकि रामायण—किष्किन्धाकाण्ड — 6/16—22

40. डॉ. शंकरदेव अवतरे — सीतारामीयम् काव्य — पूर्वार्द्ध भाग — श्लोक—2

41. तत्रैव — पूर्वार्ध भाग — श्लोक—87

42. तत्रैव — उत्तरार्ध भाग — श्लोक 165

43. तत्रैव —उत्तरार्ध भाग — श्लोक 170

44. तत्रैव— उत्तरार्ध भाग — श्लोक 194

45. तत्रैव —उत्तरार्ध भाग — श्लोक 199

46. तत्रैव —उत्तरार्ध भाग — श्लोक 240

47. श्रीचामराजनगर रामशास्त्री तथा सीताराम शास्त्री प्रणीत सीतारावणसंवादझरी—पूर्व भाग — श्लोक—1

48. तत्रैव — उत्तर भाग — श्लोक—60

49. रामकथा — फादर कामिल बुल्के — पृष्ठ संख्या—153

50. आचार्य बलदेव उपाध्याय — संस्कृत साहित्य का इतिहास — पृष्ठ संख्या—314

51. महाकवि कुमारदास — जानकीहरण महाकाव्य — द्वितीय सर्ग — श्लोक —8

52. श्री केशवराव मुसलगाँवकर — आधुनिक संस्कृत काव्य—परम्परा—द्वितीय परिच्छेद, पृष्ठ सं. 57

53. तत्रैव —पृष्ठ संख्या 58

54. तत्रैव —पृष्ठ संख्या 59

55. तत्रैव —पृष्ठ संख्या 69

56. तत्रैव —पृष्ठ संख्या 58

57. तत्रैव —पृष्ठ संख्या 58

58. तत्रैव —पृष्ठ संख्या 58

59. उत्तरसीताचरित —1/1

60. रेवा प्रसाद द्विवेदी, उत्तरसीताचरित —1/66

61. तत्रैव—4/21

62. तत्रैव —4/30

63. तत्रैव—5/70

64. तत्रैव—3/24

65. तत्रैव—10/73

67. अस्तु में भवदभीप्सिता गतिर्यत्र कुत्रचन काानने वने।

विश्व मानवमशल्यतां व्रजेत् काममद्य सह कीर्तिभिस्तव।। —3/9

68. लक्ष्मणेरितरथा·थ सा·चलच्चेतनेव रघुवंशिनां पुरः।

तां विसृज्य बतपूश्च सा सतीं न वशिष्यत सुरद्रुहां पुरः।।—3/60

69. यावदेव श्रृणुते·स्य शासनं लक्ष्मणे विमुखमानसाः प्रभोः।

आर्षशोणितसमुद्भवा ततस्तावदेव निपुणं न्ययुंगतम्।। —3/46

70. वृषरवि—शशिरेन्दु— तापशीतं धन—पवमान— शरतकुशेशयाम्भः।

अतिशयपरिशुद्धनाडिचक्रा जनकसुता सुखमत्युवाह सर्वम्।।—6/44

71. मुखबन्ध।

72. स्वयमकृत कटं पटं घटं सा स्वयमसृजल्लघुपुत्रलांश्च साध्वी।

दिकनर–कुल– वधनौ ततस्तौ शिशु–वयसः स्वकृतिप्रतान्यशिक्षत्।। 6/37

73. कविरथ महान पीरैस्तैरात्मजैः परिवारितं

रघुपरिव्रढ़ं सामं धाम स्वकं खलु नीतवान्।

जनकतनया ज्ञात्वाप्येतद् बभूव परा3्मुखी

नखलु वशिनात्यक्ते वस्तुन्युदेति पुनारतिः।। –7/80

74. रेवा प्रसाद द्विवेदी, उत्तरसीताचरित–3/9

75. तत्रैव –3/25

76. तत्रैव – 3/21

77. तत्रैव –3/34

78. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनम्, पृ.स. –10

79. तत्रैव श्लोक संख्या–18/69, 18/110

80. रेवा प्रसाद द्विवेदी, उत्तरसीताचरित–

त्वयापि पुत्रि प्रथितामिमां सृतिं विहातुमुत्प्रेरितयापि रक्षिता।

चरित्रमुद्रा यदियं गरीयसी ततो·सि रामादपि लक्ष्मणादपि।।–1/18

81. सा कापि पत्नी पुरूषोत्तमस्य सा कालराप्रिर्दशकन्धरस्य।

भूर्जे âते स्थण्डिलमण्डलेि स्मन् राष्ट्रस्य देवी च पुनर्व्यलोकि।।–9/54

82. त्वयोन्नतं दाशरथं शिरो·द्य तत्, त्वया प्रकाशो·न्वय एष भास्वतः।

त्वया·स्ति पूता ननु मानवी मही त्वया सगर्व खलु राष्ट्रमस्तिनः।।–1/20

83. त्वमेव भास्वत्कुल–कीर्ति–केतने वृषाŠमुद्रासि नृलोकवन्दिता।

त्वमेव रामायणनाम्नि मन्दिरे विभासि सर्वप्रमुखा च देवता।। –1/19

84. रेवाप्रसाद द्विवेदी, उत्तरसीताचरितम्–9/54

तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय

(1) महाकाव्य की पात्र सूची

संस्कृत साहित्यशास्त्र के अनुसार काव्य की आत्मारस है। अतः यह स्वाभाविक है कि काव्य की समस्त विधाओं में काव्य के अन्य अंग साधन रूप में ही प्रकट होते हैं अंकी रस के उपकारक रूप में ही उनका उपनिबन्धन किया जाता है। यद्यपि नाट्यशास्त्र एवं काव्यशास्त्र में पात्रों को प्रकृति अवस्था सम्बन्धी भेदोपभेदो पर पर्याप्त विचार किया गया है लेकिन पात्रों द्वारा उस की अभिव्यक्ति को मुख्य माना गया है।

पात्र शब्द से अभ्रिप्राय है– रक्षा करने वाला। इस प्रकार यदि हम काव्यों में पात्र शब्द को परिभाषित करें तो शब्दावली इस प्रकार हो सकती है– काव्य में कथानक की रक्षा करने वाले व्यक्तियों को पात्र कहा जाता है।

किसी भी काव्य में कथानक बहुत महत्व रखता है, किन्तु इस तत्व की महत्ता, उस काव्य में प्रस्तुत पात्रों पर आधारित होती है। जिस प्रकार भोजन की महत्ता भोक्ता पर सृष्टिरूपी रंगमंच की महत्ता जीवधरी रूपी कलाकार पर, शरीर की महत्ता में रहने वाली आत्मा पर निर्भर करती है, उसी प्रकार काव्य के कथानक की महत्ता पात्रों पर निर्भर है। पात्रों को कथानक रूपी शरीर की आत्मा कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। पात्र कथानक में उसी प्रकार समाहित रहता है जैसे ''शिव'' में ''ईकार'' के बिना ''शिव शव'' है उसी प्रकार पात्रों के बिना कथानक की अपनी कोई सत्ता नहीं है। जिस प्रकार भ्रमर कुसुमित पुष्प के चारों ओर मंडराते है, उसी प्रकार पात्र कथानक के चारों ओर घूमते हैं। अतः काव्य के कथानक और पात्रों के सम्बन्ध को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। एक पाचक अपने भोजन की प्रशंसा भोक्ता के माध्यम से सुन सकता है, उसी प्रकार कवि कथानक की प्रशंसा पात्रों की समुचित योजना से ही कर सकता है। पात्र ही कवि के मानदण्डों को सâदय सामाजिकों तक पहुंचाने का कार्य करता है। नाटककार की तो सारी

सफलता ही पात्रों के प्रस्तुतीकरण पर निर्भर है। नाटक के अतिरिक्त उपन्यास, महाकाव्य, खण्डकाव्यों के लिए भी काव्यशास्त्री पात्र योजना की महत्ता को स्वीकार करते है। इसलिए काव्य की कथा किसी सज्जन के जीवनवृत्त पर आधारित होनी चाहिए। काव्य का नायक उदात्त होना चाहिए और काव्य में उसकी विजय की आवश्यक है।

1. महकाव्य की पात्र सूची
2. नायिका का काव्यशास्त्रीय स्वरूप
3. नायिका भेद
4. सीताचरितम् की नायिका एवं अन्य सत्रीपात
5. नायक का काव्यशास्त्रीय स्वरूप
6. नायक भेद
7. सीता चरितम् का नायक एवं अन्य पुरूषपात्र

अतः किसी भी कवि को काव्य के कथानक के अनुसार ही पात्र–योजना रखनी चाहिए। काव्य में पात्रों की संख्या इतनी होनी चाहिए कि पाठक काव्य पढ़ते समय उनका ध्यान रख सके और उनसे परिचित रहे एवं मुख्य पात्रों का सम्पूर्ण चरित्र उसके सामने आ जाए। संस्कृत साहित्य में चरित्र–चित्रण के सम्बन्ध में उतनी विविधता उतना शील वैचित्रय आदि दृष्टिगोचर नहीं होता। जितना अंग्रेजी व हिन्दी साहित्य में मिलता है। अतः संस्कृत की किसी भी विधा में चरित्र–चित्रण पर विचार करते हुए उपर्युक्त तथ्यों का ध्यान रखना चाहिए।

प्रस्तुत महाकाव्य में मानव पात्रों में स्त्रीपात्र और पुरूषपात्र दोनों का ही चित्रण किया गया है। स्त्री पात्रों में सीता, कौशल्या और उर्मिला प्रमुख है। पुरूष पात्रों में राम, लक्ष्मण, ऋषि वाल्मीकि, जनक मुख्य पात्र हैं तथा लव–कुश चन्द्रकेतु का भी चरित्र–चित्रण किया गया है।

प्रस्तुत **महाकाव्य उत्तरसीताचरितम् नायिका प्रधान है** अतः सर्वप्रथम स्त्री पात्रों पर दृष्टिपात करना सर्वसंगत है।

(2) नायिका का काव्यशास्त्रीय स्वरूप– विभिन्न काव्य शास्त्रियों द्वारा प्रतिपादिन नायिका स्वरूप का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार हैः–

वर्तमान समय नारी–जागरणों और उद्घोष का समय है। नारी का क्षेत्र आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा साहित्यिक दृष्टि से प्रगतिशील है। इसी नारी–भावना से प्रभावित होकर महाकाव्यकारों ने मुख्य–पात्र तथा कथा का सूत्र नारी के हाथ में देकर उसे नायिका के पद पर प्रतिष्ठित किया है। नायिका वह विशिष्ट पात्र है जो अन्य पात्रों के अन्तः स्थल पर प्रभाव डालती है। नायिका वह धूरी है जिसके इर्द–गिर्द कथानक का चक्र घूमता है। कामशास्त्र तथा नायिका भेद में कुछ नायिका सम्बन्धि मान्यताएं स्वीकार कर दी गई थी। नायिका का यह परम्परागत रूप शास्त्रीय नियमों से जकड़ा हुआ था। जाति अवस्था और प्रणय के आधार पर नायिका का नख शिख वर्णन किया जाता था। ऐसा युग की परिस्थिति के अनुकूल भी था। वर्तमान युग विज्ञान का युग है, अतः नायिका निरीक्षण तथा परीक्षण भी वैज्ञानिक दृष्टि से अनिवार्य है। केवल नायक की पत्नि को नायिका मान लेना असम्भव है। आधुनिक पाश्चात्य नाट्शास्त्र में यह अनिवार्य नहीं है कि नायक की प्रिया ही नायिका कहलाती है। नायिका रचना का प्रभावशाली, सशक्त और आकर्षित नारी पात्र है जो अपने आत्मबल और सत्य–संकल्प के आधार पर विशेष गुणों को प्रदर्शित करती है। युग की चेतना को आत्मसात् करके वर्तमान असन्तोषजनक परिस्थितियों के प्रति विद्रोह और आक्रोश व्यक्त करके नारी मान्याताओं की स्थापना करना उसका उद्देश्य है। रचना में अनेक नारी पात्र होते हैं, जिनका सम्बन्ध साधारण जीवन से होता है। इनमें से कोई एक नारी पात्र अपने प्रभावोत्पादक गुण से अन्य को आकर्षित करती है। वह काव्य की धुरी बनकर चारों ओर की घटनाओं को एकत्रित करते हुए सांसारिक जीवन की समस्याओं का समाधान अपने विशिष्ट गुणों से करती है तो वह नायिका है अर्थात नायिका मे ंये विशिष्टताएं होना अनिवार्य है। महाकाव्यकार ऐसी ही नारी को या ऐसे ही व्यक्तित्व

को नायिका पद पर सुशोभित करता है जो अपनी प्रतिभा के आधार पर समाज का कल्याण करती है।

महाकव्य एक ऐसी रचना है जिसका प्रादुर्भाव ऐसे समय होता है जब जाति और संस्कृति का पुनरूत्थान होता है और ऐसी रचना के लिए आदर्श और यर्थाथता से मिश्रित पात्रों की आवश्यकता होती है। अतः महाकाव्य के लिएऐसी नायिका की आवश्यकता होती है जो विलासमय जीवन की उपेक्षा करते हुए अपने विशिष्ट गुणों से समाज सुधार कर सके।

नायिका भेदः–

नाट्याचार्य भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में नायिका के चार भेदों का उल्लेख किया है– दिव्या, नृपपत्नी, कुल स्त्री और गणिका।[1] रामचन्द्र–गुणचन्द्र ने भी नाट्यशास्त्र के आधार पर ही चार भेद बताये हैं– कुलजा, दिव्या, क्षत्रिया एवं पण्यकामिनी।[2] कुलजा नायिका ब्राãण या वणिक तथा उदात्त प्रकृति की होती है। दिव्या दिव्यकुलोद्भव होती है। इसी प्रकार क्षत्रिया सद्वंशोद्भूता क्षत्रिय कुल की ललना होती है और प्रायः नृपपत्नी ही हुआ करती है। प्रकृति से दव्या और क्षत्रिया नायिकाएं भी धीरा, ललिता और उदात्ता तीन प्रकार की होती है। पण्यकामिनी अर्थात वेश्या नायिका ललितोदात्तसा होती है।

धनंजय और विश्वनाथ ने नायिका के तीन प्रकार बतलाएं हैंः–स्वीकाय, अन्या (परकीया) तथा साधारण स्त्री[3] स्वकीया नायिका शीलवती लज्जावती गृहकर्मपरा तथा पतिव्रता होती है[4] अन्यस्त्री की कोटि की नायिका दो प्रकार की हो सकती है– कन्या तथा परिणीता।[5]

कन्या अजातोपमया, लज्जावती और नवयौवना होती है। वह पिता आदि के आधीन रहती है। अन्योढा या परिणीता यात्रा आदि की इच्छुक हुआ करती है, दूसरों के प्रति प्रेमभाव रखती है और उसे किसी भी संगीत, वार्तालाप में तनिक भी संकोच नहीं होता। तीसरी श्रेणी की नायिका साधारण स्त्री गणिका होती है, जो शिक्षित कलाचतुर, धीर, प्रगल्भा तथा धूर्त होती है।

रामचन्द्र–गुणचन्द्र, धनंजय विश्वनाथ आदि आचार्यो ने अपने लक्षण–ग्रंथो में स्वीया नायिका के पुनः तीन भेद बतलाये है,– मुग्धा,मध्या और प्रगल्भा। मुग्धा वह है जिसमें सद्यः यौवन का प्रस्फुटन तथा काम भाव का उदय हुआ है। उसे रतिलीला में झिझक होती है, उसका प्रणय कोप कोमलता से युक्त होता है। ऐसी नायिका को उसके मृदु स्वभाव के कारण प्रसन्न करना नायक के लिए सरल होता है।

स्वीया नायिका का दूसरा भेद है मध्या। वह मध्यम आयु मध्यम काम और मध्यम मान वाली होती है। साहित्यदर्पण के अनुसार जो वैविध्यपूर्ण रति–लीलाओं में निपुण हो चुकी होती है जिसमें काम–पीपासा बढ़ती दिखती है, और जिसे प्रणयालाप में कोई हिचक नहीं हुआ करती, वह मध्या कहलाती है और नायक के प्रतिकूल आचरण करने पर वह मान प्रकट करती है जिससे उसके तीन भेद हो जाते हैं– धीरा, अधीरा और धीराधीरा।

प्रगल्भा नायिका में यौवन, क्रोध और काम अत्यन्त दीप्त रहते हैं। प्रिय के द्वारा स्पर्श किए जाने पर ही वह अचेतन सी हो जाती है। मध्या के समान इसके भी तीन भेद हैं– धीरा, अधीरा और धीराधीरा।

मध्या और प्रगल्भा नायिकाओं के प्रत्येक भेद को ज्येष्ठ और कनिष्ठ उपभेदों में विभाजित करने से उनके भेदों की संख्या बारह हो जाती है। स्वीया, परकीया और सामान्य नायिकाओं के अवस्था भेद से तथा नायक के साथ सम्बन्धानुसार आठ भेद होते हैं– स्वाधीनपतिका, खण्डिता, अभिसारिका, कलहान्तरिता, विप्रंलब्धा, प्रोषितभर्तृका, वासकसज्जा और विरहोत्कण्ठिता।[6]

स्वाधीनभर्तृका नायिका का प्रिय अनेकविध प्रणय– क्रीड़ओं की लालसा लिए सदा उसके समीप बना रहता है।[7] जब नायिका को अपने नायक का किसी दुसरी नायिका से सहवास का ज्ञान हो जाए तथा इस अपराध के कारण वह ईर्ष्या से कलुषित हो उठे, तो वह खंडिता कहलाती है।

अभिसारिका नायिका कामपीड़ित अवस्था में अपने प्रिय के पास दूती आदि भेजती है अथवा स्वयं ही चली जाती है। ''अभिसारयति अथवा स्वयमेव

अभिसरति'' इस आधार पर अभिसारिका दो प्रकार की होती है। पुनः श्वेत परिधान धारण करने पर शुक्लाभिसारिका तथा कृष्ण वस्त्र से आच्छन्न होने पर कृष्णाभिसारिका कहा जाता है।[8]

कलहन्तरिता नायिका अतिशय क्रोध के वश होकर क्षमा मांगने के लिए झुके हुए प्रिय का भी तिरस्कार कर देती है तथा अनन्तर अपने व्यवहार के विषय में पश्चात्ताप भी करती है।[9] संकेतस्थान में समय पर प्रिय के उपस्थित न होने पर विप्रलब्धा नायिका अपने आपको अत्यधिक अपमानित समझती है।[10] प्रोषितभर्तृका को स्वामी के कार्यवश दूर देश चले जाने पर विरहावस्था झेलनी पड़ती है।[11]

वासकवज्जा नायिका अपने प्रियतम से मिलने के लिए अपने घर में ही सज–धज कर बैठी रहती है।[12] विरहोत्कण्ठिता नायिका का नायक उसके पास आने का निश्चय करके भी दैववश नहीं आ पाता है और इधर वह नायिका अपने प्रिय के नहीं आने से सतत् व्याकुल रहा करती है।[13]

इस प्रकार विश्वनाथ ने तेरह स्वीया, एक परकीया एक कन्या और एक वेश्या, इन सोलह प्रकार की नायिकाओं को अवस्था भेद के अनुसार कहे गए आठ भेदों से गुणा करके 128 प्रकार की नायिकाएं बतायी हैं। पुनः उत्तम, मध्यम और अधम इन तीन भेदों से तिगुने होकर तीन सौ चौरासी भेद हो जाते हैं।

सीताचरितम् की नायिका एवं अन्य स्त्रीपात्र

सीता

प्रस्तुत महाकाव्य की नायिका के पद पर सीता आसीन हैं, जैसाकि महाकाव्य के नाम सीताचरितम् से स्पष्ट ही है। आरम्भ से लेकर अन्त तक उनके इर्द–गिर्द ही कथाचक्र घूमता दिखायी देता है। विश्वनाथ ने नायिका को भी नायक के सामान्य गुणों से युक्त बताया है। सीता इन सामान्य गुणों से युक्त होते हुए स्वीया नायिका के रूप में चित्रित की गई है। उनका व्यक्तित्व एवं सौन्दर्य अनुपम है यथा राम के आधे सिंहासन पर विराजमान निमिकुल की तपस्याओं का सफल या सूर्यवंशीय महात्माओं के पुण्यों का परिपाक, जानकी नाम आर्यलक्ष्मी संसार के मंगल

विधान के लिए शरीर धारण करके उपस्थित हुई उषः श्री के समान प्रतीत होती है।[14]

समाधि में से उठकर प्रकट होती हुई सीता का रूप– वर्णन तो कवि के उपमाओं के माध्यम से अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया है। उनका रूप–गुण अद्वितीय है, यथा नवीन समुद्र मन्थन से उत्पन्न हो रही लक्ष्मी–सी पद्मासन पर विराजमान, आश्रम में महामुनियों की पूर्ण प्रज्ञा सी पुनः जाज्वल्यमान, लोकनेत्रों में शिव की ज्योतिष्मती चन्द्रकला–सी सुधा बिखेरती, मूर्तिमती वैदिक संकृति–सी सन्यासकषाय धारण की हुई, आदिकवि की छन्दस्वती (पद्यमयी और मूर्तिमती) प्रतिभा–सी प्रसाद सौम्य आशय ली हुई, वह मुनियों के रक्त की संघशक्ति, वह पृथिवी तल की दिव्यपुत्री, वह पुरूषोत्तम की दिव्य पत्नी, रावण की काल–रात्रि और इसीलिए राष्ट्र की देवी वह सीता पुनः दिखाई देती है।[15] सीता के ओज में लधिमा शरीर में अणिमा, चरित्र में महिमा, अन्त करण में वशित्व यश में प्राकाम्य तथा बुद्धि में गरिमा है इस प्रकार वह सिद्धियों से परिपूर्ण है।[16] सीता का राम के प्रति अपरिमित प्रेम एवं श्रद्धा उनके पातिव्रत्य धर्म का परिचायक है। लोकापवाद को सुनकर विचलित हुए राम जब सीता को ही त्यागने का विचार करते हैं तो वे दुःखी न होकर स्वयं उनकी कीर्ति को स्थिर रखने के लिए वन, कानन, जहां राम चाहें, वहीं रहने के लिए तैयार हैं। केवल विश्वमानव को निष्कंटक रहना चाहिए। सुखशान्ति के जल से शीतल राम के अक्षय राज्य में तपन नहीं पैदा करना चाहती है।[17]

पति द्वारा पूर्ण गर्भभारभरालसा सीता को विजन वन में त्याग दिए जाने पर भी उनका हृदय पति के लिए समुन्द्र के प्रति गंगाजल की भांति अतीव स्वच्छ ही रहता है। धर्म भारतीय नारियों के लिए सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। प्रजाहित की रक्षा हेतु स्वयं अपने पति को अपना सुख त्यागने के लिए प्रेरित करती है क्योंकि दीपक स्नेहदाह लेकर ही विश्व को प्रकाशित कर पाता है।

सीता के चित्रांकन में कवि ने धैर्य, गम्भीरता, पण्डित्य और अपूर्व भाषण क्षमता आदि गुणों को भी अंकित किया है। सीता परित्याग के अपने निश्चय को

प्रकट करने में असमर्थ भगवान राम की विमलचित धर्मपत्नी स्वयं ही धैर्यपूर्वक अपने पाण्डित्यपूर्ण विचारों को प्रकट करती है – मनुष्य अपने भीतर अन्धकार से आवृत्त नेत्रों से बाह्य परिस्थितियों को तो देखता है, किन्तु दूसरे के उत्कृष्ट धर्म और दर्शन को नहीं देख पाता। वह देखता है, कि सूर्यबिम्ब से कभी भी शीतलता उत्पन्न नहीं होती और चन्द्रबिम्ब की हिमशीलता नहीं छूटती, किन्तु जनता दोष को ही स्वतः प्रमाण मानती है। उसकी दृष्टि में कमल एकमात्र पंकज (पंक से उत्पन्न) ही है, जबकि वह जल से भी उत्पन्न रहता है और सूर्यप्रभा को भी अपनाए रहता है।

प्रेम की शाश्वतता ठीक वैसे ही होती है जैसी सुवर्ण में सुन्दर कान्ति, जिसमें विप्रिय की आग रंच भर भी विकार नहीं ला पाती। यह अन्तरिक्ष और यह पृथिवी अहर्निश विश्व के प्रत्येक कर्म के साक्षी रहा करते हैं किन्तु विधाता ऐसा कुटिल है कि वाणी को उसने इनमें भी आकाश कुसुम बना दिया है।[17]

एक राजघराने की पुत्री और पुत्रवधू होते हुए प्रसव की कठिनावस्था में असहाय जनशून्य वन में छोड़ दिए जाने पर भी सीता न तो विरोध करती हैं और न किसी को उलाहना देती हैं, बल्कि स्वयं मौन रह कर तीव्रतम वेदना को सहन करती रहती हैं।

अन्तःकरण से स्निग्ध होने के कारण सीता वाल्मीकि आश्रम के तृण, तुरू, मृग, पक्षी, धेनु, बछड़े और द्विजातीय लोगों के बच्चों पर भी अपने पुत्रों के समान मातृभाव रखती हैं। मृगों के सफेद और चितकबरी पीठ वाले अतीव छोटे छौनो को अपनी गोद में सुलाती हैं और उनमें कोपल, दूध और मधु की स्पृहा जगाती है।[18]

सीता स्वयं दयार्द्रावस्था में होने के कारण दूसरों की कारूणिक दशा को शीघ्र ही समझ जाती है। आरम में मुनि पत्नियों, गायों या हिरनियों में जिस किसी को भी प्रसव होता है। अतिकरूण सीता उनमें से प्रत्येक की पीड़ा अपने हाथ से संजोई सामग्री द्वारा दूर करती हैं।[19] महायोगी विदेहराज से प्राप्त विनययोग और माता पृथिवी से प्राप्त गम्भीर भाव से युक्त सीता वन में पहुँचने पर सोचती है कि भुवनतल पर (पशु–पक्षी आदि के) अनेक भोंं में विभक्त जो चेतना के विकास

दिखाई दे रहे हैं ये सब हमारे साथी और सगे हैं। इनके साथ रहते हुए हम कहीं भी वियोग का अनुभव नहीं करते। उनके पिता जनक नाम से सारे संसार के पिता माने जाते है और माता पृथिवी ने सम्पूर्ण मनुष्यलोक को जन्म दिया है। उनका पति है युगपुरुष, सबकी अन्तरात्मा तब उनकी भी कोई सीमा क्यों होनी चाहिए। ऐसा सोचते हुए सीता का विनय से प्रच्छन्न गर्वभव दिखायी देता है।

सीता के चरित्र की अन्य विशेषताएँ हैं कार्यकुशलता एवं स्वयंसेवा। वे अपने नितान्त सूक्ष्म शिल्पों से आश्रम की मुनि बालिकाओं के हाथ भी कुशल बना देती हैं, जिससे ऋषि कुल की भूमि से भी सभ्यता का परम और चरम विकास दिखाई देने लगता है।[2] यदि अकेली सीता ही जंगल को नगर बना सकती हैं तो नगर की महिलाएँ मिलकर गांवों में क्या नहीं कर सकती, यदि रूचि लें।

स्वयंसेवा की भावना भी सीता में कूट–कूट कर भरी है। काफी निकल आए सूर्यबिम्ब के रंग के दो वस्त्र अतसी के धागों से स्वयं बनाकर पहनती हैं और रानी के वेष के पट और परिधानों के सुख से भी अधिक परितोष का अनुभव करती हैं। चटाई, वस्त्र बरतन के अतिरिक्त खेल–खिलौने भी स्वयं बना लेती है और इस प्रकार सूर्यवंश की वृद्धि के हेतु उन दोनों पुत्रों को वे बचपन से ही स्वयंसेवा का व्रत सिखा देती हैं।[3] धान के खेतों को अपने दोनों पुत्रों के साथ स्वयं ही निराती है और किसानों की कठोर हाथों से की गई स्वभूमिसेवा को करारी मात देती है।[4]

सीता सदैव सदाचार का पालन करती हैं आश्रम के नियमों के अनुसार मुनि वेश धारण करके रहती हैं और भूमि पर ही सोती है। उस समय हिमगिरि के सर्वोच्च शिखिर से लेकर समुद्र की गंभीरतम् खाड़ियों तक की अपनी सम्पूर्ण भारतभूमि के वक्ष को अपना परम सुकुमार तल्प मानती है। पिता के घर सीखी समाधि को आश्रम में साधती है और उनका नाडीचक्र योगविद्या से नितान्त परिशुद्ध होने के कारण वह जेठ के सूर्य की तपन माघ के चन्द्र की ठंड, बरसाती बयार तथा शरत्कालीन कमलमण्डित जल इन सबको सुखपूर्वक सहन कर सकती है।[5]

सीता वन में रह कर भी अपने मातृभाव का पालन करते हुए बच्चों के गुणों पर पूर्ण ध्यान देती है, विकसित होते पुष्पों पर कल्पलता की भाँति। जो विद्वान होते हैं वे बच्चों को अपने देश का अंकुर समझ कर उनके प्रति कभी भी उदासीन नहीं होते है। ऐसा नहीं कि वन में उत्पन्न कमल से सुगन्ध या फल में मिठास नहीं होती अपितु प्रत्येक वस्तु की नियति कारण सामग्री पर निर्भर रहती है, देश भेद पर नहीं। इस कारण निमि वंश और सूर्यवंश की लज्जा सीता अपने दोनों बच्चों के शरीर वन में भी पूर्ण ममता के साथ प्रतिदिन नए स्नानादि संस्कारों से परिपुष्ट करती हैं।[2] व्रतनियमों से कृशकाय होने पर भ्झी वे धैर्ययुक्त परिम से दोनों बच्चों को पालती हैं क्योंकि आर्य जाति के तपस्वियों में बच्चों का पालन प्रथम और सर्वप्रधान ताप हुआ, करता है।[3]

इतना सब करते हुए उनके मन में एक ओर अतीव वत्सलता उतड़ती है तो दूसरी ओर व्यथा भी, क्योंकि नारी अपने बच्चे को अपने पति की गोद में देख कर ही अपने मातृभाव को चरितार्थ मानती है।[4] किन्तु सीता का हृदय अत्यन्त होने के कारण वे इस व्यथा को एक क्षण से अधिक नहीं रहने देती, क्योंकि वशीजनों में विकार पानी में आग की भाँति दीर्धायु नहीं होता।[5]

लवकुश के साथ चन्द्रकेतु का युद्ध समाप्त हो जाने के पश्चात् राम सहित वाल्मीकि ऋषि आश्रम में पहुंचते हैं तो सब यह जानकर भी सीता पराड़मुख ही रहती हैं क्योंकि वशी जनों में त्यक्त वस्तु के प्रति फिर से असक्ति पैदा नहीं होती। भरत तथा लक्ष्मण को लेकर गुरू वसिष्ठ के साथ राम की सभी माताएँ एवं विदेहराज जनक के भी आश्रम में पहुँच जाने पर सबके प्रति सीता तटस्थ ही रहती है। वे ऐसी प्रतीत होती हैं जैसी आत्मा में विलीन राजहंसी या अपने (स्वरूपभूत) पुरुष में परा एक वाक् लगा करती है।[6] इससे सीता का महासत्व अर्थात् हर्ष शोकादि से अपने स्वभाव को नहीं बदलने का गुण अभिव्यक्त होता है।

मनौवैज्ञानिता

सीता की मानसिक स्थिति का ज्ञान उस समय होता है जब वन पहुँच कर भगवान राम की पत्नी मुग्धाक्षी सीता यह सोचती हुई अपने चरणों से गंगा को पवित्र कर रही थीं कि इस वन में वे कहाँ रहेंगी और उन जैसी अभागिनी को रहने के लिए कौन सा स्थान मिलेगा। आः चेतना की प्रविकच शिखा वाले मनुष्यों के लिए प्रकृति द्वारा उपहृ अथवा विशाल उत्संग भी लौल्य के कारण उसी प्रकार छोटा पड़ गया है जिस प्रकार उन्मुक्त पक्षियों के लिए पिंजरा।

इसी कारण मनुष्य कुछ भित्तियों के बने घर को ही अपना निवास मातना और एक प्रकार से उसी का गुलाम बन गया है। वह इस व्याकीर्ण भुवन को अपना नहीं मानता धिक्कार है। विश्व भर में व्यक्ति के बीच फूट डालने वाला यह अपनी रुचि का खण्डित रह गया है, एक नहीं हो पा रहा।[2] भुवनतल पर जितने भी पशु पक्षी आदि है, वे सब हमारे साथी और सगे है। इनके साथ हम कहाँ नहीं रहते, इसलिए हमें कहीं भी वियोग का अनुभव नहीं करना चाहिए।

यह सब सोचते हुए सीता कोई निर्धारित नहीं करना चाहती, क्योंकि समस्त संसार के पिता कहलाने वाले जनक उनके पिता है और सम्पूर्ण मनुष्य लोक को जन्म देने वाली पृथ्वी उनकी माता है। उनका पति युग पुरूष है, सबकी अन्तरात्मा, इसलिए अपनी भी सीमा नहीं रखना चाहती।[3] अपनी इन भाव भूमिकाओं से स्वयं को बचाती हुई सीता तटभूमि पर पहुँच जाती है।

पुत्र जन्म के पश्चात् सीता सीता मुनि वाल्मीकि के पवित्र आश्रम में पहुँचती हैं और परिपक्व फल से टूटती टहनियों वाली लताओं को देख कर वे प्रसव समय की अपनी दशा का स्मरण करके उष्ण आँसू बहाती हैं। तत्क्षण उनके मन में विचार उठता है हन्त, नारी का सब कुछ संसार में केवल दूसरों के लिए ही समर्पित है, संसार में परमाणु बराबर भी ऐसी वस्तु नहीं जिसे उसकी अपनी वस्तु कहा जा सके।[4]

यह (नारी) प्रणय के सरोवर में प्रियरूपी गजराज का असह्य करोपमर्द पाती है तो सौभाग्य से लिपटा इसका अपना सब कुछ श्लथ विश्लथ ही रहता है। मनुष्य जाति की चेतना के इतिहास में सक्रियता के साथ आगे बढ़ी है प्रणयवश पुरन्ध्रि (कुटुम्ब संस्था का मेरूदण्ड नारी) सचमुच एकमात्र उत्कृष्टतम समर्पण ही है तेरे हृदय की वास्तविकता। इन सब भावों से दिग्धचित रघुकुल महिषी का मन सैंकड़ों विकल्पों से भर आता है। जैसे वन का आघात होने पर गंगा के जल में भी तरंगमाला उठने ही लगती है।

पुनः वाल्मीकि के आश्रम में कुटी पाकर राजसुखरूपी तृण से वितृष्ण सीता के मन में विचार उठता है कि सचमुच वे बहुत ही धन्य हैं, जो पुत्र–जन्म से गार्हस्थ की चरितार्थात के पश्चात् आदिकवि की कृपा से इस आश्रम में आ पहुंची हैं जो देवताओं के लिए भी स्पृहणीय है।

सीता के हृदय में उठने वाले व्यथित भावों के माध्यम से समस्त नारी जाति की व्यथा प्रकट होती है। ये भाव कुछ खण के लिए ही उनके मन में जन्म लेते हैं, तत्पश्चात् हृदय का विषाद दूर करके वे अपने राष्ट्र के विकास की इच्छा से अपने बच्चों का अतीव शान्त चित से पालन करती है जो उनकी चारित्रक दृढ़ता को प्रकट करने में सक्षम है।

कौशल्या

कौशल्या का चित्रण रानी के रूप में न होकर माता के रूप में ही हुआ है। वनवास से लौट कर आये हुए अपने पुत्र और पुत्रवधू को देखकर ममता से युक्त हो उठती हैं और उनके ग्रीष्म वर्षा और ठंड में जंगलों में भटकने में अपना ही अभाग्य मानती है।

विधाता के वाम होने पर भी स्नेहपूर्ण चित्त से उनके बेटे के लिए धारण किए व्रत को न तोड़कर दोनों कुल की लाज बचाने वाली बहू (सीता) को सास

होते हुए भी वन्दनीय मानती हैं ? इतना ही नहीं, बल्कि सीता को सूर्यवंश की कीर्तिपताका पर मनुष्यसृष्टि के लिए वन्दनीय वृष (धर्म) की मुद्रा और ''रामायण'' नामक मन्दिर में सबसे अधिक महत्वपूर्ण देवप्रतिमा स्वीकार करती हैं।[3]

सपत्नी पुत्र लक्ष्मण और भरत के प्रति भी उनका स्नेह वात्सल्य कम नहीं है अपितु रामभद्र और जनकात्मजा सीता भी उन्हें उतने प्रिय नहीं है जितने वे दोनों जिनमें दूसरे के लिए अपने सुख के परित्याग का व्रत विद्यमान है।[4]

सीता के विषय में फैले अपवाद को सुनकर अत्यन्त पीड़ित होती हुई और बार–बार मूर्च्छित होती हुई कौशल्या का ऐसे विलाल करना स्वाभाविक है कि विधाता ने कपूर के समान कुलपावन पुत्रवधू क्यों दी और दी तो उस पर विपत्ति पर विपत्ति की अग्नि छोड़ने का हठ क्यों पकड़े हुए हैं ? विपत्तियों द्वारा मसली जाने पर भी उनकी यह बहू (सीता) बकुलमाला सी सुगन्ध उत्तरोत्तर बिखेरा करती है। यदि यही कलुषित है तो संसार भर में कौन पतिव्रता पवित्र होगी।[2] सीता का जंगल में जाने का विचार सुनकर वाष्परूद्ध कण्ठ से किसी प्रकार प्रस्ताव करती है कि सीता को आप्त बुद्धि वाले प्राचेतस ऋषि (वाल्मीकि) को सौंप दिया जाए।

वाल्मीकि आश्रम में समाधि से निकल कर आई अपनी पुत्रवधू सीता के प्रति सभी को सम्मानयुक्त देखकर माता कौशल्या संसार में सती महिलाओं की पुनः प्रतिष्ठा का अनुभव करके मानती हैं कि अब अन्तःकरण में स्थित रावण की भी मृत्यु हो चुकी है।[3]

एक ओर पुत्र राम और पुत्र वधु सीता का मुख देख कर प्रसन्न होती है तो दूसरी ओर अपने समधी जनक को देख कर उनकी आँखों में आँसू आ जाते हैं। उस समय दशरथ जी का अभाव खटकता है क्योंकि घर–द्वार, बाल–बच्चे और समधीसौर वाली महिलाओं का जो कौटुम्बिक रस है वहीं उनका स्वर्ण होता है।[4]

उर्मिला

प्रस्तुत काव्य के नारी पात्रों में सीता और कौशल्या के बाद उर्मिला का ही स्थान है। जो अन्यन्त वाक्पटु बहिन के दुःख से अत्यन्त दुःखी, भावुक और पुरुष वर्ग के प्रति आक्रोश से युक्त चित्रित की गई है। वन जाते हुए सीता को कुछ समय के लिए लक्ष्मण द्वारा अपने घर ले जाने पर उर्मिला बड़ी प्रसन्नचित होकर घर आई लक्ष्मी के समान सीता का सत्कार करती है। सीता द्वारा अनुकूल व्यवहार न पाकर व उसकी मनोदशा को भांप कर मुख हो उठती है और पूछने के लिए व्याकुल हो जाती है कि उसे देख कर भी सीता का प्रणयसमुद्र पहले के समान तरतिल और तरंगित क्यों नहीं हो रहा है ? उसके स्मितवत्सल मुख से कुमुद जैसे दोनों दाँत बाहर क्यों नहीं निकल रहे हैं और कुन्दकली को निस्सपतन क्यों बनाना चाह रहे हैं।[5]

अपनी बहिन के दुबले कपोलों की मसृण और स्निग्ध सिकुड़न के साथ निकली अमृततुल्य बोली से उसका कुशल–मंगल जानने के लिए धैर्य खो बैठती है और उसे सच–सच बताने के लिए बाध्य कर देती है क्योंकि प्रणाम करने वालों के प्रति साधुजन भीतर या बाहर की कोई गांठ नहीं रखते।[1]

सीता के परित्याग का कारण जान कर तो उर्मिला का दुःख और आवेश एक साथ उमड़ पड़ता है। उसके मनोद्गार दर्शनीय है कि निर्गल पशु समाज में भी निर्दयता उस सीमा तक नहीं पहुंचती जिस तक मनुष्य समाज में। क्या पक्षी अपनी भावी सन्तान का ध्यान नहीं रखते और घोंसले नहीं बनाते ? एक तो अबला, फिर रिश्ते में परिणीता, फिर पक्वगर्भा और चन्द्रकिरणें से निष्कलंक। हन्त, उसे भी छोड़ा जा रहा है और वह भी विद्वानों द्वारा।[2]

उसके हृदय में स्त्री–पुरूष के सम्बन्धों के प्रति उठने वाले भाव भी सशक्त है और नारी चेतना का आव्हान भी स्पष्ट झलकता है। यथा–पुरूष पुरूषार्थ के चौरास्ते पर बने चबूतरे पर चढ़ कर मार्ग जानना चाहता है तो स्त्री मर्यादा, शास्त्र और युग के अनुसार उसका निर्देश कातर है। इस प्रकार व्रत दोनों के महान हैं

किन्तु यदि पुरूष उस मर्यादा को अपनी ओर से नष्ट करना चाहता है तो अबला होते हुए भी नारी को प्रबला क्यों नहीं हो जाना चाहिए विश्वकल्याण के लिए। बहन के दुःखी और आवेशयुक्त होकर स्वयं भी वन साथ जाने की इच्छा प्रकट करती है।

इस प्रकार कवि ने उर्मिला का चित्रण भी बड़े सुनछर और विस्तृत ढंग से किया है। जैसा अन्यत्र दिखायी देना कठिन है क्योंकि उर्मिला का चरित्र प्रायः कम ही चित्रित किया गया है लेकिन द्विवेदी जी ने पूरा एक सर्ग उसके औश्र सीता के बीच होने वाले वार्तालाप में व्यय किया है और उसके माध्यम से स्त्री और पुरूष के सम्बन्ध की विशद् व्यंजना की है।

नायक का काव्यशास्त्र स्वरूप

महाकव्य में वर्णित पात्रों में नायिका के साथ ही नायक का भी विशेष स्थान है। उसका चरित्र–चित्रण करने से पूर्व उसके स्वरूप एवं भेदों पर विचार करना भी आवश्यक प्रतीत होता है। सर्वप्रथम नायक के स्वरूप का वर्णन करते हुए दशरूपककार ने लिखा है कि नेता (नायक) विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियभाषी, लोकप्रिय, पवित्र, वाग्मी, प्रसिद्ध–वंशोत्पन्न, स्थिर, युवा, बुद्धि, उत्साह–स्मृति–प्रज्ञा–कला और मान से समलंकृत, शूर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्र को नेत्र बनाये हुए और धार्मिक होता है। साहित्यदर्पणकार ने भ्झी इसी प्रकार का लक्षण दिया है कि दाता, कृतज्ञ, पण्डित, कुलीन, लोागों के अनुराग का पात्र, लक्ष्मीवान, रूप, यौवन और उत्साह से सम्पन्न तेजस्वी, चतुर और सुशील पुरूष काव्यों में नायक होता है।

वह नायक चार प्रकार का बताया गया है– धीरललित, धीरप्रशान्त, धीरोदात्त, धीरोद्धत। धीरललित निश्चिन्त, कलाओं में आसक्त, सुखी और कोमल होता है। इसी प्रकार का लक्षण साहित्यदर्पणकार ने भी दिया है। द्विजादि नेता के सामान्य गुणों से युक्त होने पर धीरशान्त कहे जाते है। अपनी सात्तिव्कता से सविशेष शोभा पाने वाला अतिशय गम्भी र, क्षमाशील, डींग न हाकने वाला, स्थिर अपने अहंकार को न प्रकट होने देने वाला और हाथ में लिए काम को प्राणपण से पूर्ण करने वाला

धीरोदात्त नायक होता है। धीरोद्धत नायक घमण्डी, असहिष्णु, माया और धोखाधड़भ का व्यवहान करने वाला चंचल और डींग भरने वाला होता है।

इन चार प्रकार के नायकों की नायिका से सम्बन्ध के अनुसार चार अवस्थाएं होती है दक्षिण, शठ, धृष्ट और अनुकूल। जब दूसरी नायिका के प्रति नायक का चित्त अनुरागी हो जाता है, तो जो नायक पहली नायिका के प्रति सहृदय व्यवहार करता है, वह दक्षिण नायक है। शठ नायक पहली नायिका का ध्यान नहीं रखता और नयी नायिका से छिप छिप कर प्रेम करता है। घृष्ट नायक के अंग पर तो अन्य नायिका के साथ प्रणय व्यापार से उभरे हुए विकार स्पष्ट दिखाई देते हैं। जिसकी एक ही नायिका होती है, उसे अनुकूल नायक कहते है।

पूर्वोक्त सोलह प्रकार के नायकों की ज्येष्ठ, मध्यम और अधम तीन कोटियां होने से अड़तालीस भेद हो जाते है।

5 ''सीताचरित्'' का नायक एवं अन्य पुरूष पात्र

राम

प्रस्तुत महाकाव्य सीताचरितम् के नायक पद को श्रीराम सुशोभित करते हैं। वे नायक के सामानय गुणों से युक्त होते हुए धीरोदात्त प्रकृति के नायक हैं। उनके चरित्र की विभिन्न विशेषताओं का विवेचन निम्नलिखित हैं–

सर्वप्रथम राम की चारित्रिक दृढ़ता का अनुमान लगाया जा सकता है, जब कवि ने काव्य के आरंभ में ही कहा है–वह राम नामक भगवान् और भरत नामक वह कोई लोकोत्तर मानव जब मिले तो उन्होने उसी प्रकार एक उत्कृष्ट चरित्रादर्श का निर्माण किया करते हैं। राम के गंभीर स्वभाव की तुलना गंभीर हृदय भारताब्धि से की जा सकती है।

प्रियदर्शी राम के जलभरित मेघ के समान उत्पलश्याम और शुभ शरीर को ग्रीष्म जैसी वनवासवधि के व्यतीत हो जाने पर आंखों से पीता हुआ साकेत निवासी जनसमुदाय चातक की भाँति प्रतीत होता है। वनवास से लौटकर श्रीराम पिता के

भवन में पहुंच कर माता कैकेयी के प्रति जो विचार प्रकट करते हैं उनसे अपनी विनम्रता का ही पश्चिय देते हैं। मता कैकेयी की अपनी वनवास के पीछे छिपी मौन नियती जैसी मौन मनोभावना को मुखर शब्दों में स्पष्ट करते हैं हे माता आपने संसार को निष्कण्टक बनाने के लिए अपने हृदय को सशल्य बनाया। अतः राजनीति के दूरदर्शी सुमेधाओं में निश्चित ही आपका प्रथम स्थान है। रावण का वध एक नाट है तो यह जिसकी प्रतिभा से स्फुरित हुआ वह द्रष्टा और प्रतिभासम्पन्न कवि आप ही हैं और उसका प्रयोग कराने वाली सूत्रधारिणी भी आप ही हैं हम तो केवल अभिनय करने वाले पुतले बने हें। इस प्रकार वनवास देने वाली माता के प्रति तनिक भी द्वेष न करने वाले राम के विनम्र स्वभाव के फलस्वरूप कैकेयी के प्रति रूष्ट भरत, लक्ष्मण आदि भी अपनी मनोवृत्ति पर लज्जि हुए बिना नहीं रह सकते।

राम की लोकप्रियता के कारण ही सभी राजकुमारों सहित प्रजाजन भी कुल क्रम से चले आ रहे राजपद पर त्रैलोक्य का शोक दूर करने वाले श्रीराम को ही अभिषिक्त किए जाने का समर्थन करते है। यही नहीं चारों दिशाएं पृथ्वीतल और आकाश भ्झी उसी स्वर को दोहराते है। इसी प्रकार राम ने अपने त्याग से उज्जवल कार्यो द्वारा जनमानस में जो वास्तविक स्थान प्राप्त किया वहीं उनका सच्चा राज्याभिषेक है।

नगरवासियों के भाव परिज्ञान के लिए भेजा हुआ दूत जब आकर श्रीराम के समक्ष स्पष्ट रूप से सीता के प्रति फले जनापवाद को कहने में असमर्थ हो जाता है तब शान्तचित, स्थिर बुद्धि और निर्दोष आचारपथ वाले प्रियदर्शी राम उसे क्षण भर में प्रसन्न करके कृपापूर्ण प्रश्नों द्वारा अनुगृहीत करके अपने स्थिरप्रज्ञ होने का प्रमाण देते है।

राम का कर्त्तव्यपरायण और प्रजानुरंजक रूप अनुपम है। पौर जानपदों में सीता के चारित्रय के विषय में प्रसृत प्रवाद सुन कर वे विचलित हो उठते हैं। ऐसे विषय प्रसंग मे ंउनके स्थान पर यदि कोई अन्य राजा होता तो उसने किसी युक्ति का अवलम्ब लेकर स्वयं को पत्नि परित्याग रूपी कटु कर्त्तव्य से मुक्त करने का

प्रयास अवश्य ही किया होता, लेकिन राम लोकानुरंजन के लिए सर्वथा दोष रहित, पवित्र तथा लतातुल्य प्रिया में ही सुख पाते हैं। इस प्रकार प्रजा रंजक राम अपनी प्रियपत्नी का परित्याग करके प्रजापालक का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। अपने राजधर्म के पालन में हिमाचल सी निश्चलता लिए निष्काम राम ममत्व का बंधन तोड़ कर मूर्तिमान से प्रतीत होते हैं।

गुरूजनों के प्रति राम की अपार श्रृद्धा है। अश्वमेध यज्ञ के अश्व को देखने के लिए वाल्मिकी –आश्रम में उपस्थित हुए श्रीराम महाकवि वाल्मीकि को प्रणाम करते हैं तो उस क्षण ऐसा प्रतीती होता है मानों अपने प्रकाश के प्रकाशक चक्षु को सूर्य ने प्रणाम किया हो। आश्रम में ऋषि बच्चों (लव–कुश) को अपने माता–पिता की पहचान करवा कर उद्यानपाल की भांति उन दोनों बालकों को उनके स्वामी श्रीराम को समर्पित करना चाहते हें, किन्तु गुरू वसिष्ठ के रहते हुए अपने पुत्रों का समर्पण लेने में स्वयं को योग्य नहीं समझते। जब गुरू वाल्मीकि से प्राप्त करके वे दोनों पुत्र श्रीराम को सौंपते है तभी राम उन पुत्रों को वसिष्ठ और वाल्मीकि जैसे पूज्यों की दृष्टि से सुपरीक्षित पुत्रोंके रूप में स्वीकार करते हैं औश्र उनकी उपब्धि से प्रसन्न होते हैं।

मनोवैज्ञानिकता

सामान्यता संस्कृत महाकाव्यों में नायकलक्षणानुसार अत्यन्त गुणी होते हैं। प्रतिनायक द्वारा प्रस्तुत किए गए विघ्नों का सामना और उनके निवारण में ही नायक के चरित्र का उत्कर्ष दिखाया जाता है। इस प्रकार नायक के गुणों में काव्य के आदि से अन्त तक एक समानरूपता–सी रहती है और इसलिए चरित्र–प्रकाश की दृष्टि से कोई नवीनता या वैशिष्ट्य दृष्टिगोचर नहीं होता है क्योंकि चरित्र के क्रमिक विकास से पाठक स्वयं अनुमति कर लेना है कि इन विघ्नों का निवारण हो ही जाएगा, परन्तु प्रस्तुत महाकाव्य में कुछ विलक्षणता दिखाईदेती है। यहां नायक राम को प्रतिनायक द्वारा उपस्थित विध्नों का सामना न करके सीता के प्रति फैले जनापवाद जैसी विषम–स्थिति का सामना करना पड़ता है। दूत के मुख से

प्रियातिरस्कारमयी अतएव लोहे के थन के अघात जैसी विषतुल्य वाणी को सुनकर राम का हृदय विदीर्ण हो उठता है और उनके मस्तिष्क में विचार उत्पन्न होते हैं कि गणनातीत कालुष्यों से उपद्रवग्रस्त नृ–जीवन को जिस राष्ट्रपति ने अपने नीति मार्ग से नहीं सुधारा, पदमात्र के लिप्सु और अतीव जुगुप्सित हृदय वाले उस (राष्ट्रपति) के सत्त्व को धिक्कार है।

आर्यो की सदा ही विशुद्ध बनी रहने वाली संस्कृति का जो मनस्विनी सदा ही मन, वचन और कर्म से सेवन औश्र रक्षण करती रही है और धर्म कर्म में जो मृत्यु से भी नहीं डरती, आह! लोग उसकी भी निन्दा कर रहे हैं।1 इसका कारण वे स्वयं को मानते हुए अपराध भाव से ग्रस्त हो जाते हैं कि उनकी त्रुटि के कारण ही उनकी जनता अशिक्षित है। बच्चा यदि विष् खाता है तो इसमें दोष पिता का ही होता है तथा रोग यदि बढ़ता है तो उसमें निंन्दा वैद्य की ही होती है।2

यह कैसी बात है कि राक्षस रावण के घर रहने का दुर्भाग्य तो स्वतः प्रमाण है (बिना प्रमाण के सबको मान्य है) किन्तु अग्निशुद्धि नहीं। लगता है शरीर से नष्ट हो जाने पर भी वह रावण लोगों के मन में अभी भी अनंग (कामदेव) के समान सक्रिय है। हे विधाता! यह कैसा आग्रह कि गंगा और अग्नि के समान विशुद्ध चेतना की मेरी केल मुझ पर ही केन्द्रित चित्त वाली प्रिया को पापशंका के झंकोरों से लता की भांति झकझोर रहे हो।

इस वाक्यों से राम की मानसिक स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है, जब कर्त्तव्य और भावना से कटु स्थिति उपस्थित है। क्या करूं? अपनी चेतना को छोडूं या जनता को, आग मे ंकूदूं समुद्र में। एक ओर समाज धर्म का प्रश्न है तो दूसरी ओर मेरे वैयाक्तिक अस्तित्व का इन दोनों में लता को छोडूं या द्रुम को, जो दोनों परस्पर में अत्यन्त आश्लिष्ट हैं।

1. इस प्रकार, उत्तर कोसल की जनता के स्वामी श्रीराम का अत्याचार से विचलित चित्त ऐसा लगता है जैसे प्रभंजन से तरल समुद्र में नौका या उसी

प्रकार के सरोवर में कमल। अन्ततः वृक्षतुल्य राम लतातुल्य प्रिया को ही छोड़ने का निर्णय लेते हैं और भावना पर कर्त्तव्य की विजय होती है।

लक्ष्मण

राम और सीता का वर्णन हो और लक्ष्मण को चित्रित न किया जाए, यह असम्भव है। प्रस्तुत महाकाव्य में भी लक्ष्मण भ्रातृप्रेमी आज्ञापालक और गुरूजनों के प्रति श्रद्धा–भाव रखने वाले चित्रि किए गए है।

सर्वप्रथम राम औ सीता के साथ वनवास से लौटने पर माता कौशल्या द्वारा उनके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता (स्वसुख का त्याग) का संकेत देकर उन्हें राम और सीता से भी अधिक प्रिय माना गया है। भाई राम के आदेश का यन्त्र की भांति पालन करने वाले लक्ष्मण को जब आदेश दिया जाता है कि सीता को वन में छोड़ आएं तो तात मातरमहो कथम् कह कर लक्ष्मण अपनी असमर्थता प्रकट करना चाहते हैं लेकिन कथं मा वद कह कर राम अपना आशय प्रकट करते हैं इस दुविधा की स्थिति में लक्ष्मण किकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं क्योंकि एक ओर अग्रज का आदेश और एक ओर ऋषियों के रक्त से बनी सीता का स्वाभिमान। इन दोनों के बीच लक्ष्मण के परम अनुराग को पथ की दीपिका बना दिया जिसके एक ओर मेघ हो ओर दूसरी ओर मेघ की ही तेज हवा।

अपनी आंखों में आंसू लिए लक्ष्मण मौन् हृदय से उस रथ पर आर्यधर्म के ही समान आरूढ़ होने का प्रयत्न करते हैं, जिस रथ पर सीता सवार होती है। लक्ष्मण इक्ष्वाकुकुल की सत्ता की मूल को मनेचरी कैसे बनाए और अपने बड़े भाई की आज्ञा का उल्लंघन भी कैसे करें। विचिकित्सित चित्त लक्ष्मण बहुत देर तक आंसू बाह कर (सीता की बहिनों) उर्मिला आदि को उनकी पूजा का अवसर देने हेतु अपने घर ले जाते हैं। कर्त्तव्य और भावना का इससे बड़ा उदाहरण क्या हेा सकता है कि भावना के वशीभूत हो कर भाभी का त्याग न कर सकने पर भी आज्ञापालन के कर्त्तव्य को पूरा करने के लिए उन्हें भावना का त्याग करना पड़ता है।

लक्ष्मण का वात्सल्य प्रेम भी एक स्थल पर दिखायी देता है। जब वाल्मीकि आश्रम में सीता लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु के ललाट पर तिलक करती है तो अपने भाग्य को मित और अपने पुत्र के भाग्य को अमित मानकर चुप बैठे लक्ष्मण को ईर्ष्या और प्रसन्नता दोनों ही होती हैं क्योंकि वीर होने के साथ–साथ वे पिता भी हैं लक्ष्मण की भाईया और भाभी के प्रति इतनी श्रद्धा और स्नेह की भावना है कि वे देह से राम के साथ है और हृदय से (चन्द्रकेतु के रूप में) सीता के साथ। इस प्रकार वे दोनों की सेवा एक साथ करते हैं और मर्यादा तथा सत्य दोनों की रक्षा भी साथ करने में सक्षम हैं।

वाल्मीकि

प्रस्तुत काव्य में ऋषि वाल्मीकि जी का भी चित्रण हुआ है। सर्वप्रथम उनका चित्रण दिखाई देता है जब सीता की (वन में पहुंचने पर) करूण अवस्था को देखकर वृक्ष वनस्पति निष्कान्ति हो जाते हैं और पक्षी भी क्रन्दन करते दिखायी देते हैं। यह सब देख कर ऋषि वाल्मीकि भी अत्यन्त व्याकुल हो उठते हैं वे कवि जो हैं। वन स्थिति को देख कर उनके आर्ष हृदय में एक प्रकाश–किराण प्रकट होने का सूक्ष्म चित्रण किया गया है जो उनकी महात्मता को प्रकट करता है।

ऋषि वाल्मीकि कवि और विद्वान व्यक्ति के रूप में दिखायी देते हैं जो ज्ञानाग्नि की शिखा के समान हैं। स्वगत और परगत दोनों प्रकार के भावों को विवेचन करने वाले हैं जिनकी दृष्टि प्रकृतिकृपण रहती है और जड़ तथा चेतन का भेद नहीं करते है। उनके नाम की सार्थकता की भी कवि ने बड़ी सुन्दर व्याख्या की है कि कवि नामक जो व्यक्ति इस विश्व में वाग्रूपा उस परा हृदय नदी कविता को प्रकट करना चाहता है वह तो क्रिमिओं द्वारा उत्पादित वाल्मीक को भी अपनी सिद्धि में आचार्य मानता है केवल वैभव को ही। अतः आदिकवि वाल्मीकि कहलाता है। ऋषि योगाभ्यास में निपुण और समस्त ब्रह्माण को ध्यान द्वारा देखने वाले हैं। इसीलिए वन को भिन्न भूमिका में पहुंचा देख कर उनका मन भी किसी भिन्न ही भूमिका में जा पहुंचता है और उन्हें समाधि लग जाती है। विमल वृद्धि के धनी

आदिकवि ध्यान लगा कर ही देख लेते हैं कि जनक जैसे योगी की पुत्री सीता, जनता के हृदय के विकार के कारण वन में आई हुई है और उसने दो पुत्रों को जन्म दिया है तथा उसकी सेवा इस भारतभूमि की लताएं उनकी वायु और उनकी देवियां कर रही है। तब स्वतः निर्णय लेकर अपने कर्त्तव्यपथ पर बिना लड़खड़ाहट से चलते हुए महामुनि वनदेवियों के साथ लताकुंज में जानकी के पास पहुंचते हैं और अपनी सक्रियता प्रकट करते हैं।

ऋषि चारों वेदों की चतुर पीठिका पर आसीन है। उनके हृदयरूपी प्रयाग में ऋषिता, मुनिता और कविता की आर्य त्रिवणी सतत प्रवाहमान रहती है और इसलिए उनका हृदय विश्वरूपी देवता के वशीकरण के कठिन अनुष्ठान में समर्थ है। वे वाक्निपुण कुशल शिक्षक और महाकवि के गुणों से युक्त है सीता के आग्रह करने पर लव कुश को प्रशिक्षित करने के लिए उनकी रूचि देख कर शिक्ष प्रदान करने के लिए तैयार होते हैं क्योंकि अच्छे शिक्षकों का प्रयास भी विफल हो जाता है यदि रूचिरूपी जल को ग्नि के रास्ते खींचा जाए।

कुलपति का कर्त्तव्य, शिक्षा का उद्देश्य और कवि तथा विद्वान के गुण आदि बताते हुए ऋषि की भाषणपटुता व्यक्त होती है। आश्रम में सभा को सम्बोधित करने के लिए खड़े हुए वाल्मीकि की क्रान्ति का चित्रण दर्शनीय है– पीले रंग की आसन पर स्थित भास्वरदिव्य देह प्राचेतस ऋषि प्रभातकाल में सुवर्णिगिरी मेरू की शिला पर स्थित सूर्यबिम्ब की शोभा और तेज को धारण किए हुए प्रतीत होती है–

दर्भासने पिड्गरुचौ स्थितः स प्राचेतसो भास्वरदिव्यदेहः।

मेरोः शिलायामुषसि स्थितस्य बभार कान्तिं रविमण्डलस्य।।

जनक

विदेहराज जनक का चित्रण भी इस काव्य में यथास्थल किया गया है। वाल्मीकि आश्रम में आयोजित सभा की अध्यक्षता जनक जी द्वारा ही की जाती है क्योंकि उन्हें पर और अपर का विवेक है इसलिए अर्थनिश्चय में वे अतीव कुशल है। आसपास बैठे मुनिजनों से युक्त वे ऐसे प्रतीत होते हैं। सन्तान के प्रति स्वाभाविक

वात्सल्य प्रेम से युक्त सभापति जनक जब सीता को समाधि से निकल कर आने के पश्चात् सबके द्वारा सम्मानित किए जाते हुए देखते हैं तो प्रसन्न हो उठते हैं क्योंकि प्रत्येक गृहस्थ अपनी बेटियों का समादर देखता है तो स्वाभाविक रूप से खुश होता ही है। इतना ही नहीं पुत्री के प्रति उनके अतीव वत्सल मुख से निकल पड़ता है बेटी मेरी तू सफेद हुए मेरे इन बालों की लाज सिद्ध हुई है।

अपनी पुत्री के बिना मातामह जनक को अपने दोनों दौहित्रों की (लव–कुश की) प्राप्ति से जो वहीं प्रसन्नता अनुभव होती है, जो गुरू को अपने उन शिष्यों पर हो सकती है जिन्हें उसका वह शास्त्र याद हो जिसकी पुस्तक खो गई हो। पुत्री के प्रति फैले जनापवाद को जान कर जनक जनता पर क्रोध व्यक्त नहीं करते अपितु हित कर सम्पूर्ण भूतल को प्रसन्न कर चुकी अपनी बेटी के प्रति जनता के मन को प्रणाम करके पवित्रारूपी अमृत से युक्त देखकर कृतकव्य हो जाते हैं। इस प्रकार कवि ने जनक के रूप में स्नेहपूर्ण, कर्मयोगी व गृहस्थ का चित्र कुशलतापूर्वक खींचा है।

लव–कुश दो क्षत्रिय–कुमारों के ये दो आदर्श कवि ने हमारे समक्ष रखे हैं ये जुड़वा बन्धु आयु से तो छेटे हैं परन्तु शरीर से भव्य और बुद्धि प्रखर है। सूर्य और प्रथिवी के बच्चों राम और सीता की आत्मा से उत्पन्न वे दानों बालक जन्म–काल से मानो रोदसी त्रिलोकी का प्रतिनिधित्व प्राप्त किए हुए हैं क्योंकि उनमें निरतिशय तेज सूर्य का गुण और निरतिशय सहिष्णुता पृथिवी का गुण दोनों ही गुण जन्म से ही विद्यमान है।

नवनीत जैसे हाथ और घुटनों के बल चलती हुई उन बच्चों की जोड़ी का स्पर्श पाकर मुनि के आश्रम की भूमि भी रोमांचित हो उठती है। सिर पर लहराते हुए काले केश, मुनियों के यज्ञ की भस्म से उद्भासित भाल और अरूणावर्ण का वल्कल शरीर पर धारण किए उन दोनों की जोड़ी दो कार्तिकेयों की जोड़ी के समान प्रतीत होती है। मुनि वाल्मीकि द्वारा वैदिक विधियों से उन दोनों बालकों का मुण्डन कराके, उन्हें यज्ञोपवीत सूत्र पहनाए जाते हैं और अश्वत्थ के दण्ड देकर,

मूंज की मेखला पहना कर बलि– नियमन के लिए वामन बनाया जाता है। नियमों से शुद्ध उन दोनों को परा और अपरा ये दोनों प्राच्य विद्याएं अक्षर–अक्षर करके पढ़ाई जाती है और तब अतीव सूक्ष्म एवं दिव्य अस्त्र विद्या भी उन्हें दे दी जाती है। ऐसा इसलिए कि हमारा जो वृषरूप भगवान धर्म है वह (हिंसक तो नहीं है परन्तु) सींग नहीं छोड़ता है।

चारों विद्याओं के गहन कान्तार में मदमत्त गजराज बन कर वे दोंनों अच्छे छात्र की शुभ वृति की व्याख्या भली भांति करते हुए प्रतीत होते हैं। अंगो सहित सभी वेदों और शास्त्रों में उन दोनों का भावित देख कर समावर्त्तन संस्कार के लिए कवि द्वारा अपिना काव्य (रामायण) भी सरस्वर पढ़ा दिया जाता है।

भीतर से निरस्ततम और बाहर से निरोग वे दोनों भाई ऐसे लगते हैं मानों तरास कर तैयार की गई हो रत्नशिलाएं हो। आत्मा, मन, इन्द्रिया और बुद्धि से प्रसन्न अतः शुभ शरीर वाले वे पृथिवी के रक्षण की शक्ति दिग्गजों के समान धारण किए हुए हैं। दायित्व की धुर अनुशासित चित वाले उन बालकों पर पर्याप्त प्रसार लिए हुए है जिस प्रकार भगवान विष्णु के वक्षः स्थल पर लक्ष्मी। उनमें क्षत्रियोचित स्वाभिमान भी पूरा–पूरा है। यज्ञीय अश्व के रक्षकों द्वारा की गई जय घोषणा के साथ दूसरे क्षत्रिय वीरों के अपमान के उद्‌गार होने से स्वभाव से वीर वे उन्हें सहन नहीं कर सकते हैं और अपमान पूर्ण उक्तियों का शमन अश्व के निरोध में ही देखते है। भला कटु उक्तियों का शमन कटूक्तियों से कही हुआ है?

युद्ध छोड़कर अपने–अपने पूज्यों को प्रमाण करने में लगे हुए उन बालकों का संघर्ष विनय दर्शन में भी दिखाई देता है। अपनी आकृति विनय और वाणी से वे सभी का मन आकृष्ट कर लेते है।

माता के प्रति उनका विशेष स्नेह है। समस्त सभाजनों को प्रणाम भी वे अपने पिता का नाम ज्ञात न होने से माता का नाम लेकर ही करते है और वाल्मिकि जी द्वारा पिता की पहचान करवा दिए जाने पर पिता को जानते हुए भी आंखों में आंसू लेकर अपनी माता की ओर ही देखते है। वृक्ष सूर्य प्रति प्रीतिमान् होने पर भी अपना सिर पृथिवी की ओर ही झुकाते है।

दोनों स्वाभिमानी हैं, फिर भी उनमें गुरूजनों के प्रति पूर्ण आदरभाव है। अध्ययन करते हुए वे (बालक) गुरू के आदेश से ही अध्ययन छोड़ते हैं, स्वतः प्रवृत्ति से नहीं। भौंरे जो मधु से दूर होते हैं वे क्या स्वयं प्रवृत्तिय से दूर होते हैं, तेज हवा चलने पर ही दूर होते हैं।

इस प्रकार कवि ने लव और कुश के रूप में शूर, शास़स्त्रसम्पन्न, बुद्धिमान, स्वाभिमानी और विनयशील क्षत्रिय कुमारों के मनोवेधक चित्र अंकित किए हैं।

चन्द्रकेतु

लक्ष्मण–पुत्र चन्द्रकेतु का चरित्र भी कुश–लव के समान आकर्षक है। वह शूर, निर्भय, विनयसम्पन्न और सौजन्यशील है। राम द्वारा अश्वमेध का अश्व छोड़े जाने पर चन्द्रकेतु ही विशाल सेना के साथ वाल्मीकि आश्रम पहुंचता है। अपने पूज्यों में एकता देखकर चन्द्रकेतु भी लव–कुश के साथ एक हो जाता है, समुद्रों के एक हो जाने पर उनकी तरंगो में भेद कैसा रह जाता है? युद्ध में एकता हो जाने पर चन्द्रकेतु की लव–कुश से मित्रता हो जाती है और वह भी उनके साथ अध्ययन निरत हो जाता है क्योंकि उत्सव तो वही है जो वय और प्रवृत्ति के साम्य से खुशी–खुशी मनाया जाता है। इतना ही नहीं गुरू के आदेश से अध्ययन छोड़ दिए जाने पर वह वित्रता के कारण कुश औश्र लव को भी सभा–स्थल ले आता है। सभा मे ंसभी पूज्यों को अपने पिता का नाम लेकर प्रणाम करता है।

सीता के आश्रम में प्रकट होने पर चन्द्रकेतु भी अपनी बड़ी मां के पास शीघ्र ही पहुंचता है और सिर झुकाकर उनके चरणारविन्दों में प्रणाम करता है। सीता के चरणकमलरूपी तीर्थ में प्रणाम के लिए झुके उसकी शोभा वर्णनीय है। चन्द्रकेतु नया लक्ष्मण है और सीता कौशल्या है। अन्तर इतना ही है कि माता ही पुत्र से स्वयं के लिए अरण्यवास मांग रही है लेकिन पुत्र नहीं दे रहा है।

इस प्रकार चन्द्रकेतु वीर, मित्रभाव से युक्त और गुरूजनों पर श्रद्धा रखनेवाला दिखाया गया है। इनके अतिरिक्त वसिष्ठ भरत और शत्रुधन आदि के संक्षिप्त शब्दचित्र कवि ने कुशलतापूर्वक खींचे है।

संकेत सूची

1.	दिव्या च नृपपत्नी च कुलस्त्री गणिका तथा।		
	एतास्तु नायिका ज्ञेया नानाप्रकृतिलक्षणः।। ना.शा	–	7/24
2.	नायिका कुलजा दिव्या, क्षत्रिया पण्यकामिनी।		
	अन्तिम ललितोद्धता पूर्वोदात्त त्रिधापरे।। ना.द.	–	4/19
	स्वान्या साधारणस्त्रीति तदगुणा नायिका त्रिधा। दशरूपक,	–	2/15
	अथ नायिकात्रिविधा स्वाडन्या साधारणी स्त्रीति। सा.द.,	–	3/68
3.	स्वीया शीलार्जवादियुक्। दशरूपक,	–	2/15
	विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रतः स्वीया। सा.द.	–	3/80
4.	परकीया द्विधा प्रोक्ता परोढ़ा कन्यका तथा। तत्रैव,	–	3/81
5.	कन्या त्वजातोपयमा सलज्जा नवयौवना। तत्रैव,	–	3/83
6.	यात्रादिनिरतान्योढ़ा, कुलटा गलितत्रपा। तत्रैव,	–	3/82
7.	साधारणस्त्री गणिका कला प्रागल्भ्यधोर्त्ययुक्। दशरूपक,	–	2/21
	धीराकलाप्रगल्भा स्द्वेश्या सामान्यनायिका।। सा. द.	–	3/84
8.	मुग्धा मध्या प्रगल्भेति त्रिविधाः सयुरियाः पुनः।		
	मुग्धा वामा रते स्वल्पमानरोहद् वयसाः।।ना.द.	–	4/21
	प्रथमावतीर्णयौवनमदनाविकारा रतौ वामा।		
	कथिता वृदुक्ष्य माने समाधिकलज्जवती मुग्धा।। सा.द.	–	3/71
	मुग्धा नववयः कामा रतौ वामा मृदुः क्रुधि। तत्रैव,	–	2/16
9.	मध्या मध्यवयः कामनामा मृच्छन्ति– मोहना। ना.द.	–	4/22

मध्या विचित्रसुरता प्ररूढस्मरयौवना।

ईषत्प्रगल्भंवचना मध्यमव्रीडिता मता। सा.द. — 3/42

10. प्रगल्भेद्ववयो–मन्यु कामा स्पर्शेप्यचेतना। ना.द. — 4/22

11. साहित्य दपर्ण — 3/72–73

12. कान्ती रतिगुणाकृष्टा न जहाति यदन्तिकम्।

विचित्रविभ्रमानसक्ता सा स्यसात्स्वाधीन भर्तृका। सा.द. — 3/74

13. पार्श्वमेति प्रियो यस्या अन्यसंभोगे चिह्नितः।

सा खण्डितेति कथिता धीरैरीर्ष्याकषायिता।। तत्रैव, — 3/75

14. अभिसारयते कान्तं या मन्मयवशंवदा ।

स्वयं वाभिसरत्येषा धीरैरूक्ताभिसारिका।। तत्रैव, — 3/76

15. चाटुकारमपि प्राणनाथ रोषादपास्य या।

पश्चात्तापवप्नोति कलहान्तरिता तु सा।। तत्रैव, — 3/82

16. प्रियः कृत्वापि संकेत यस्या नायाति संनिधिम्।

विप्रलब्धता तु सा ज्ञेया नितान्तमवमानिता।। तत्रैव, — 3/83

17. नानाकार्यवशाद्यस्या दूरदेश गतः पतिः। — 3/84

18. कुरूते मण्डनं यस्याः सज्जिते वासवेश्वनि।

सा तु वासमसज्जा सयाद्विअदितप्रियसंगमा।। स.द. — 3/85

19. आगन्तुंकृतिचत्तोडपि दैवान्नयायाति चेत्प्रियः।

तदनागमदुःखार्त्ता विरहोत्कण्ठिता तु सा।। वहीं, — — 3/86

20. इति साष्टाविशांतिशतमुत्तममध्याध्मस्वरूपेण।

चतुराधिकाशीतियतं शतत्रयं नायिका भेदाः।। वही — 3/87

21. निमिकुलतपसां वा सत्फलं, पुण्यपाको

रविकुलजनुषां वा जानकीत्यार्यलक्ष्मीः।

व्यरूचदवनिपालस्यार्धभद्रासनस्था

श्रितवपुरित लोकस्योदयायौषसी श्रीः।। सी.च. — 1/68

22. पदमासनस्था कमलेव नूत्नपयोधिमन्थादुपजायमाना।

प्रज्ञेव पूर्णा विमले मुनीना पदे पुनर्भास्वरतां दधाना।।

ज्योतिष्मतीवेन्दुकलेन्दुमौलेनेत्रेषु लोकस्य सुधां दुहाना।

वपुष्मतीव श्रुतिसंस्कृतिर्नः सन्यासकाषायमुपासना।।

छन्दस्वतीव प्रतिमादिसूरेः प्रसादसौम्याशयतां श्रयाणा।

सा संघ्शक्तिर्मृनिशोणितस्य का कापि पुत्री पृथिवीतलस्य।।

सा कापि पत्नि पुरुषोत्तमस्य सास कालरात्रिर्दशकन्धरस्य।

भूर्जे ह्रते स्थण्डिलमण्डले सा राष्ट्रस्य देवी च पुनर्व्यलोकि।। सी.च.

— 9/51—54

23. लघुत्वमोजस्यणिमा शरीरे तस्यास्तदानी महिमा व वृत्ते।

वशित्वमन्तः करणे यशः सु प्राकाम्यमासीद् गरिमा च बुद्धौ।। तत्रैव, — 9/55

24. अस्तु मेगवदभीप्सिता गतिर्यत्र कुत्रचन काानने वने।

विश्वमानवमशल्यतां व्रजेत कममद्य सह कीर्तिभिस्तव।

किन्तु देव! यदि सौख्यवारिभिः शीतमस्ति तव राजयमक्ष्ज्ञयम्।

तेन मादृश—विगीत—वृत्तिना जन्तुना किमिह तापकारिणा। तत्रैव, — 3/8—9

25. सात्यकच्छं जलमिव सिन्ध्वे द्युन्धि रामाय प्रणयपरीतमेव सीता।

स्वं भावं विकचमिवाब्जमाश्रयन्ती वैभाती रूचिरिवभास्कराय रेजे।। तत्रैव,

— 5/3

26. आर्य यावदवधि प्रजाहिते दीक्षितो·सि सुखमात्मनस्त्यजेः।

स्नेहदाहसहितो हि दीपको विश्वमज्जवलयितं प्रगल्भते। तत्रैव, – 3/10

26. वीक्षते यछपि सूर्यबिम्बतः शैत्यमुद्भवति नैव जातुचित्।

एवमेव न निशीथिनीपतः क्वापि नश्चयि तुषारशीतता।। सी.च. – 3/5

किनतु विश्वसिति दूपणं प्रमापूतमेव जनता स्वतः सदा।

तोयजं भवति पंकजं भवति पंकजं हि तन्मानसे श्रयदपि प्रभां रवे।। तत्रैव –3/6

27. सैव काचिदपि शाश्वती स्थितिः प्रेम्णि हेम्नि रूचिरा यथा द्युति।

विप्रियाग्निषु न यत्र विक्रिया लेशतोपि लवतोपि जायते।। तत्रैव, – 3/19

अन्तरक्षिमवनिर्दिवानिशं विश्वकर्मणि भवन्ति साक्षिणः।

किन्तु दैवहतकेन वाग्मिता तेष्वपि द्युकुसुमायिता कृता।। तत्रैव, – 3/20

28. सितशबलितपृष्ठकान् मृगाणामतिलघुकान् पृथुकान् निजाङ्.कशरूय्याम्।

अतिशमधिरोप्य रामजाया किसलयदुग्ध–मधु– स्पृहानकार्षीत्।। तत्रैव, –6/28

29. प्रसवविकृतिमत्रमानवीनामधचतथैव गवां मृगाङ्.गनानाम्।

इयमितिकरूणा स्वहस्तदत्तैरुपकणैरुपशान्तिमानिनाय।। तत्रैव, –6/29

30. तातो मे जनक उदाहृतो जगत्या माता में नृभुवनसूरियां धरित्री।

भर्त्ता में युगपुरूषोडन्तरात्मभूत किं तद् यद् भक्तु ममापि कापि सीमा।। सी.च. – 5/12

31. इयमिह मुनिबालकाः स्वशिल्पे कुशलकरा असृजन्नितान्त सूक्ष्मे।

ऋषि–कुल–भुवि येन सभ्यताया अपि परमश्चरमो विकास आसीत्।। तत्रैव, –6/30

32. तरूण तरणि सोदरं वसाना वसनयुगं क्षुमया स्वयं कृतं सा।

अतिशयपरितोषमाप राज्ञी–पट–परिधानसुखं विषूचयन्ती।। तत्रैव, – 6/37

स्वयमकृत कटं पटं घटं सा स्वयमसृजल्लघुपुत्तलाँश्च साध्वी।

दिनकर–कुल–वर्धनौ ततस्तौ शिशुवयसः स्वकृतिव्रता न्यशिक्षत।। तत्रैव,– 6/38

33. किसलयशिशुसोदरेण सीता कलमभुवः स्वकरेण मृद्नती सा।

कठिन–कर–कृतां स्वभूमिसेवां कृषकजनस्य सुदूरमत्वशेत।। तत्रैव, –6/36

34. वृषरवि–शिशिरेन्दु–तापशीतं घन–पवमान–शरत्कुशेशयाम्भः।

अतिशयपरिशुद्धनाडिचक्रा जनकसुता सुखमत्युवाह सर्वम्।। तत्रैव, –6/44

भवतु विमवविस्तरो महीयान् ननु, यदि वास्तु वनेचरत्वमुग्रम्।

भवति बुधजनो न हि स्वदेशाड्.कुर इव बालजन` कदाप्युदस्त।। सी.च., – 6/49

35. प्रभवति न हि सौरभं न वन्ये सरसिजनौ, न च मिष्टता फलेन।

नियतिमनुकरोति भावजाते जनकगुणात्र तु देशसंविभागात्।। तत्रैव, –6/50

निमि–रवि–कुल लज्जयेति हर्षात् सुतयुगलीविपिनेडपि रक्तयेव।

प्रतिनव–परिकर्म– संविधामिः प्रतिदिनमड्.गसमृद्धिमाप्यते रम।। तत्रैव, – 6/51

36. नियमकृशवपुर्विदेहपुत्री धृतिसुभगेन परिश्रमेणपुत्रौ।

अपुशदपि च बाललालनं न प्रथमतर तप आर्यतापसेषु।। तत्रैव, – 6/58

37. हृदय उदयमाप रामपत्न्या अतितरवत्सलता तथा व्यथापि।

पतिहृदि निजवत्समाप्य नारी भवति हि तप्ततमा स्वभातृभावे।। तत्रैव,–6/59

38. परमियमतिमात्रदान्तभावा विकृतिमिमामकरोत् राखीं क्षणं हि।

वशिषु न हि विकारजातमम्भः स्वनल इव श्रयते प्रकाममायु।। तत्रैव, –6/60

39. आसीद् विदेहाधिपतेः सुता तु तथा तटस्था निखिलेषु तेषु।

यथा विलीनात्मनि राजहंसी यद्वापि गीः कापि परा स्वपुंसि।। तत्रैव, – 9/3

40. नृणामाः प्रविकचचेतनाशिखानामुत्संग प्रकृतिविनिर्मितोपि लौल्यात्।

संकीर्णः समजनि पक्षिसन्ततीनां मुक्तानामिव बत पंजरप्रदेशः।। तत्रैव,–5/7

42. धिक् कोयं निजरूचिनामको जनानां विश्वस्मिन् मानसिशयोस्ति भेदहेतुः।

योनेद जगदखिलं समुद्रशैल नघाघैः शकलिमेकतां न याति।। सी.च.,–5/10

41. अकृत मनासि हन्त–हन्त नारी जगति समर्पितचेतना परार्थे।

न खलु न खलु विद्यतेडत्र तस्या अणुपरिमाणमपि ''स्व''– संशितत्वम।। तत्रैव,–6/4

43. प्रणयसरसि वल्लभद्विपेन्द्रादसहमवाप्य करोपमर्दमेषा।

वहति कमलिनीव विश्लथं स्वं परिगतसौभगमात्मनो हि सर्वम्।। सी.च. –6/5

अशिथलचरणं पुरा व्रजन्ती मनुजनुषां ननु चेतने तिहासे।

प्रणयपरवशे! पुरन्ध्रि सत्यं त्वमिह पराध्र्यसमर्पणैकभावा।। तत्रैव, – 6/6

44. सुते! विधौ वामविधायिनी व्रतं सुताय में स्निग्धमना न याडत्यजः।

कुलद्वयस्यापि सुरक्षितत्रपा त्वमेव वन्द्याडसि शुभे! ममाधुना।। तत्रैव, – 1/16

45. त्वमेव भास्वत्कुल–कीर्ति केतने वृषाड्.कमुद्राडसि नृलोकवन्दिता।

त्वमेव रामायणनाम्नि मन्दिरे विभासि सर्वप्रमुखेव देवता। तत्रैव, – 1/19

46. तत्रैव, –1/23

48. कथ विधातर्धनसारसत्रिभामिमां कुलं शोधयितुं स्नुषामदाः।

कथं च तत्राग्निनिभं विपद्व्रजं विधातुमेतान् महतो ग्रहानगाः।। सी.च.– 2/49

49. इयं विमर्द्दे बकुलावली यथोत्तरोत्तरं सौरभमेव मे वधूः।

सृजत्यसौचेत् कलुषा तंतः शुचिर्जगत्त्रये का नु पतिव्रता भवेत्।। तत्रैव,– 2/53

50. तत्रैव, – 9/59

51. तुष्टापि पुत्रमभिवीक्ष्य मुखं च वध्वाः सम्बन्धिसत्रिधिमवेक्ष्य परन्तु माताः

भर्त्रे तदाश्रुकलुषाडडस, कुटुम्बिनीनां योडयं कुटुम्बरस एष हि नाकलाभः।। तत्रैव, – 9/65

52. सी.च. – 4/12/15

53. अपि चामृतसत्रिमेन ते वचसा माशिवेतरं दिशेः।

भागिनि क्रशिमानमागतैर्मसृणरिनग्धकपोलकुचितैः।। तत्रैव, – 4/18

तदलं बहुना, निबोध मां हतधैर्या भागिनि! ब्रवीतु सत्।

प्रणतिप्रवणेषु साधवो विरताभ्यन्तरबाहम्मुद्रणाः।। तत्रैव, – 4/21

54. समजेषु निरर्गलेष्वापि श्रयते निर्घृणता न तां प्रथाम्।

श्रयते मनुजेशु यां, खगाः किमु नो नीडकृतः प्रजाकृते।। सी.च., – 4/38

अबला प्रथमं ततो वधूः परिणीताथा निषेकपाकभृत्।

अपि चेन्दुमरीचिनिर्मला विबुधैर्हन्त तथापि हीयते।। तत्रैव, – 4/39

55. पुरूषः पुरुषार्थचत्वरे पदवीं ज्ञातुमितोडभिलष्यति।

महिला समयं परीक्ष्य तां दिशतीत्येवमुभौ महव्रतौ।। तत्रैव, – 4/54

पुरूषः स्थितिमीदृशीं यदि प्रतिहन्तुं क्रमते स्वतस्तातः।

अबला प्रबलात्वमीयुषी किमु न रयाज्जगती– शिवेच्छया।। तत्रैव, –4/57

56. नेता विनीतो नधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।

रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरोयुवा।। दशरूपक, – 2/1

बुद्धत्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वित।

शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः।। तत्रैव, — 2/2

57. त्यागीकृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।

दक्षोडनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्धयशीलवान्नेता।। सा.द. — 3/30

58. भेदैश्चतुर्धा ललितशान्तोदात्तोद्धतैरयम्। दशरूपक, — 2/3

59. निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखीमृदुः।। तत्रैव, — 2/3

60. निश्चिन्तो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात्। सा.द.,— 1

61. सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिकः।

महासत्त्वोडतिगम्भीरः क्षमावानाकित्थनः। दशरूपक, — 2/4

62. स्थिरो निगूढाहंकारों धीरोदात्तो दृढव्रतः।

दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो मायाच्छदमपरायणः।। तत्रैव, — 2/5

63. धीरोद्धतस्त्वहंकारी चलश्चण्डो विकत्थनः।

स दक्षिणः शठो धृष्टः पूर्वा प्रत्यन्ययाहृत।। तत्रैव, — 2/6

64. दक्षिर्णोर्रस्यां सहृदयः मूढविप्रियकृच्छठः।

व्यक्तांगवैकृतो धृष्टो अनुकूलनस्त्वेकनायिकाः।। दशरूपक, — 2/7

65. स रामनाम भगवान्स मानवस्तथ च कश्चिद् भरतेतिनामभाक्।

विनिर्ममाते मिलितौ, हिमाचलो महोदधिश्चापि यथाडडर्यभूमिकाम्।। सी.च. — 1/2

66. स सीतया भ्रातृयुगेन तेन चान्वितः स्वपुर्या शुशुभे गभीरहृत्।

कुमारिकायामिव भारतोदधिः ससिंहलश्रीरुदधिद्वयाचितः।। तत्रैव,— 1/3

67. तदुत्पल—श्याम—शुभं वनावधेः शुचेरिवान्ते वपुरक्षिभिः पिबन्।

पयस्विमेघप्रभमाप चातकव्रतानि साकेतनिवासिनां व्रजः।। तत्रैव, — 1/4

68. इमां त्रपातो नतपूर्वविग्रहामुवाच रामो जननि प्रभावतः।

तवैव यातः सुगतिं प्रजेश्वर समं तलेनैव भुवो न संशयः।। तत्रैव, – 1/33

69. यदस्ति पौलस्त्यवधेतिनाटकं त्वमेव तत्र प्रणिधानवानृषिः।

त्वमेव तत्रासि च सूत्रधारिणी वयं तु मूका ननु तत्र पुत्तलाः।। सी.च., –1/35

70. ततश्च रामं प्रति तैः सभाजनैरघोषि तारं सह राजसूनुभिः।

कुलागते राजपदेऽभिषिच्यतां त्रिलोकशोकापनुदेष राघवः।। तत्रैव, – 1/60

71. प्रतिस्वचैः किं च दिशां चतुष्टयी तदेव निर्व्याजशुभं जगौ वचः।

तदेव हेमाम्बुजरेणुभिः समं दिवः प्रतीयाय भुवस्तलं वचः।। तत्रैव, – 1/61

72. स शान्तचेताः स्थिरधीः क्षणेन तं प्रसाद्य भृत्यं प्रियदर्शनः प्रभु।

कृपाचितैः प्रश्नवचोभिरार्जवादनाविलाचारमथोऽन्वकम्पत।। तत्रैव, – 2/18

73. स वृक्षवृत्तिर्जनताकृते प्रियां लतामिव त्यक्तुमनास्ततोऽभवत्।

भवन्ति चेतासि महात्मनां सदा परार्थसंपादनसौख्यभांजि यत्।। तत्रैव, –2/37

74. निज– नरपति–धर्म–रक्षणायां हिमगिरी–निश्चलतां वहन् निराशीः।

धृंतवपुरिव कर्मयोग एष क्षपित–ममत्वतयां तदान्वभावि।। सी.च., – 3/69

75. चक्षुषे कृतवान् सूर्य प्रणामं हन्त तत्क्षणे।

स्वप्रकाश–प्रकाशाय रामो यत् कवयेऽनमत्।। तत्रैव, – 8/62

76. रामस्तु नात्मानमभंरत येाग्यं गुरौ वसिष्ठे सतिपुत्रलब्ध्यै। तत्रैव,– 10/21

स चापि वाल्मीकि वसिष्ठदृष्टिपरीक्ष्झितौ प्राय सुतावहृष्यत्।। तत्रैव,– 10/28

77. सी.च., – 2/28

78. मनोवचः कर्मसु याडर्यसंस्कृति सदैव शुद्धा भजते मनस्विनी।

न कम्पते धर्मणिमृत्युतोंडपि या जनोडयमेनामपि हा जुगुप्सते। सी.च.– 2/25

79. समैव किन्त्वत्र परिच्युतात्मनस्त्रुतिर्यदेषा जनतास्त्यशिक्षिता।

पितुः सः दोषः शिशुरति यद् विशं भिषगहि वाच्यों यदि वर्धते रूजा। तत्रैव, – 2/26

80. कथं नु रक्षो–गुह–वास– दौर्भगं स्वतः प्रमाण न च बह्निशोधनम्।

अवैमि नष्टों वषुषाप्यनड्यगवज्जनान्तरड्गोषु कृति स रावण। सी.च. – 2/27

81. तत्रैव, – 2/32

82. किमत्र कायऊविपरीतताकटुः स्थितिः मम संप्रति स्थिता।

परित्यजानि स्वचितिं, जनानुत, व्रजानि वह्नौ यदि वाद्य वारिधौ। तत्रैव,– 2/34

समाजधर्मः स्थित एकतोडन्यतो विभाति वैयक्तिकता च मत्पुरः।

उदयस्तामत्र लता, द्रुमोडथवा, परस्पराशिलष्टतमात्मनोर्द्धयोः । तत्रैव, – 2/35

83. तदेत्थमन्त चलमस्य वैशसाद् बभौ विभोरूत्तरकोसलौकसाम्।

यथा पयाधों तरले प्रभ जनात् प्लवोडथवा वारिरूहं सरोवरे।। तत्रैव, –2/36

84. न रामभद्रो जनकात्मजापि वा तथाडद्य यहां रुचिरौ तथा युवाम्।

ययोः परार्थे निजसौख्य–वर्जन–व्रतं समाजद्रुममूलमीक्ष्यते।।सी.च., – 1/23

85. एकतोडग्रजनियोग एकतः स्वभिमान ऋषिशोणितात्मनः।

तद्द्वयेडस्य परमानुरागिता मेघ–वात–पथ– दीपिकी कृता। तत्रैव, – 3/53

86. तनयां जनकस्य लक्ष्मणो भुवमिक्ष्वाकुकुलस्य सन्ततेः।

विदधीत वनेचरीं कथं कथामार्यस्य वचश्च लड्घयेत्।। तत्रैव, –4/1

विचिकित्सितमानसस्ततश्चिरमश्रूणि विमुच्य जानकीम्।

भागिनीभिरथोर्मिलादिभिः परिसंभावयितुं गृहं ययौ।। तत्रैव, —4/2

87. तस्मिन् क्षणे स्वानि मितानि मत्वा भाग्यानि पुत्रस्य तथाडमितानि।

स्थितोडपि तूष्णीं बत लक्ष्मणोडपि सेर्ष्यः सहर्षश्च बभूव वीरः।। सी.च., — 10/35

88. देहेन रामं हृदयेन सीतां तस्मिन् क्षणे सार्धमुपासमानः।

स लक्ष्मणोडपि प्रतिमापरो यः स्थितिं च सत्यं च समं ररक्ष। तत्रैव,— 10/41

89. तत्रैव, — 5/26

90. बोधाख्यज्वलनशिखैव कापि सूरिर्वेक्ति स्वपरमनोगतान् स भावान्।

तद्दृष्टो जड इति चेतनेति भेदः कार्पण्यात् प्रकृतिकृतात्र सिद्धिमेति।। तत्रैव, — 5/31

91. वल्मीकं क्रिमिजनितं स्वसिद्धिहेतुमाचार्य स तु मनुते न भूतिमात्रम्।

विश्वस्मिन् कविरिति न संज्ञितः परां तां वाग्रूपां हृदयनदीं य उज्जिगीर्षुः।। तत्रैव, — 5/32

92. तत्रैव, — 15/59

93. स खलु विमलमेधाः सूरिराद्यः समाधौ जनहृदयविकारात् काननं सेवमानाम्।

फलितसुतयुगां तां जानकी भारतीयैर्व्रततितिमरूद्भिः सेव्यमानामपश्यत्।। सी.च. — 5/61

94. ततः स्वतो निश्चितपीठमाश्रितः कवि स्वकर्त्तव्यपथे महामतिः।

अकम्पपादं चलितो मनस्विनीमुपेयिवांस्ता वनदेवतासखीम्।। तत्रैव, — 5/63

95. ऋषि—मुनि—कवि—तात्रिवेणीरार्या प्रवहति मानसनाम्नि वः प्रयागे।

प्रभावाति खलु विश्वदैवते वो हृदयमिदं ननु कार्मणे विधाने। तत्रैव, — 7/3

96. युगलमिदमतः परीक्ष्य शिक्षारुचिमनुरूपमहं प्रशिक्षयिष्ये।

व्रजति विफलतां सतां प्रयासोरूचिपसां शिखिवर्त्मकर्षणेन।। तत्रैव, – 7/25

97. अयि बत, यदि द्विया सतीनां न हि परिपालनमस्ति किं तया नः। सुरभिरपि वृथैव पायसश्चेद् यदि न समेधयतेऽत्र विक्लवान् सा।। तत्रैव, – 7/36

98. अध्यक्षतां श्रीजनकोऽत्र चक्रे परावरप्रत्यय–निश्चितार्थः।

या आबभासे मुनिभिर्वृतोऽत्र यथात्मयोनिर्दिवि नारदाद्यैः।। सी.च., – 9/8

99. तां सर्वसम्भ्यैरभिनन्द्यमानामवेक्ष्य हृष्टः सः सभापतिश्च।

सर्वोऽपि गेही तनयाजनस्य मादरे हृष्यति यत् स्वभावात्।। सी.च. – 9/57

100. अथोद्गता तस्य मुखाच्च वाणी पुत्रीं प्रति प्रीतिमृतः प्रसहा। वत्से ममं त्व सिततां गतानां लज्जासि सिद्धा मम मूर्धजाम्।। तत्रैव, – 9/58

101. मातामहस्यापि विना स्वपुत्रीं दौहित्रयोर्हनत तयोः प्रसादः।

जातेऽनवाप्तप्रतिके स्वशास्त्रे स्वभ्यस्तयोः शास्त्रकृतः प्रसादः ।। तत्रैव,– 10/29

102. स जनको जनकोपपराड्मुखो दुहितरं हितरजित–भूतलाम्।

जन–मनो नमनोदितपुण्यतामृतमथैक्ष्य बभूव कृतक्रियः। तत्रैव, – 10/61

103. रविधरणिसुताऽडत्मजात–युग्मं प्रतिनिधितामिव रोदसीत्रिलोक्याः।
निरतिशय–महः सहिष्णुभाव द्वय महितं जनुषः प्रभृत्यवावत्।। तत्रैव,– 6/47

104. निज–करनवनीत–जानु–याता सुतयुगली मुनिधाम संस्पृशन्ती।

अतनुत च विनिद्ररोमलक्ष्मीमिव नवसरस्यमिषेण तां स्वभूमिभ्।। तत्रैव,–6/56

105. तदनु नियमशुद्धौ तौ परां चापरां च प्रतिपदमुपदिश्य प्राच्यविद्यां कवीन्द्रः।
अगमयत् पटिष्ठामस्त्रविद्यां च दिव्यां न हि भवतिवृषात्मा धर्म उत्सृष्टश्रृड्ग।।
सी.च. – 7/59

106. चातुर्विद्यवने मत्तमातड्गत्वमुपागतौ।

सच्छात्रस्य शुभां वृतिं तावपि व्यारत्यतामल्।। तत्रैव, – 8/3

साड़गेषु सर्वशास्त्रेषु भावितौ वीक्ष्य तौ कविः।

समावर्तनसंस्कारायेव काव्यं निजं जगौ।। तत्रैव, – 8/4

107. निरस्त–तमसावन्त र्बहिर्ध्वस्तरुजौ च तौ।

अन्वहार्ष्टां समुल्लेखशुद्धौ रत्नमहोपलौ।। तत्रैव, – 8/6

आत्मेन्द्रियमनोबुद्धि प्रसाद– शुभ्र– विग्रहौ।

रक्षितुं क्ष्मां क्षमामेतौ दिड्.मातड्गाविवोहतुः।। तत्रैव, – 8/7

108. तद्वीराणां जयोद्घोषानन्यक्षत्रावमानिनः।

सोढुं नाशक्नुतां सीतासुतौ वीरस्वभावतः।। तत्रैव, – 8/17

तावश्वस्य निरोध हि तादृशामुत्तर गिराम्।

अमन्येता, कटूक्तीनां कटूक्त्या प्रशमः कुत।। तत्रैव, – 8/18

109. स्व–स्व–पूज्य–प्रणामाय त्यक्तसंरम्भयोर्द्वयोः।

शिशूना पक्षयोस्तत्र संघर्षो विनयेडप्यभूत।। तत्रैव, – 8/61

110. ज्ञात्वापि तातं, जननी निजां तौ विलोकयामासतुरुद्गताश्रू। रविं प्रति
प्रीतिभृतोडपि वृक्षाः शिरांसि भूमिं प्रति नामयन्ति।। सी.च., – 10/19

111. गुरोर्नियोगाद् वटवो विरेमुः स्वाध्यायतो नैव निजप्रवृत्त्या।

112. माध्वीकतः किं मधुकृत्समूहः स्वयं प्रवृत्या चलति प्रवाते।। तत्रैव, – 10/10

113. तद्रक्षणप्रसड्गेन बलेन महता वृतः।

लक्ष्मणस्यौरसश्चन्द्रकेतुराश्रममीयिवान्।। तत्रैव, – 8/16

114. स चन्द्रकेतुश्च वयस्भावात् तेष्वेव बालेष्वभक्त् स्वधीतिः।

स उत्सवो यो हि वयः– प्रवृति– साम्येन सम्यक् प्रथते प्रहर्षात।। तत्रैव,
– 10/7

115. वयस्भावादथ चन्द्रकेतुः कुशं लवं चापि हठात्रिनाय। तत्रैव, — 10/11

ननाम सौमित्रिसुतोडर्चितेभ्यः संकीर्त्त्य नाम स्वपितुः। तत्रैव, — 10/13

116. तस्मिन् क्षणे लक्ष्मणसंभवोपि सुवं प्राप तथा शिरः स्वम्।

ननाम तत्पादकुशेशयाभ्यामद्याप्यसादृश्यविमाननाभ्याम्।। सी.च., — 10/30

सीताङ्घ्रितीर्थे प्रणतस्य तस्य द्वावेव शोभां ननु धातुमीशौ।

कुमारिकायां निजराष्ट्रभूम्यै नतो विवेको यदि वा महाब्धिः।। तत्रैव, — 10/31

117. सा कोसेलेन्द्रस्य सुता नवीना स चापि नूत्नो बत लक्ष्मणों हि।

अयं विशेषो वृणुतेडत्र मातैवारण्यवासं, न च राति पुत्रः। वही, — 10/40

चतुर्थ अध्याय

चतुर्थ अध्याय

(1) रस स्वरूप विषयक काव्यशास्त्रीय अवधारणाः–

किसी भी काव्य को पढ़कर पाठक के एक अनोखे आनन्द की प्रतीति होती है, वहीं आनन्द की प्रतीति रस कही जाती है। सर्वप्रथम तो यह रस क्या है? रस उस विशाल वट वृक्ष के समान है, जिसकी शाखा–प्रशाखाएं शब्द, अर्थ, गुण, दोष, रीति, छन्द जिसकी प्राणदायिनी शक्ति है, वह रस है। गुण दोष्झदि काव्य के सौन्दर्योपकरण है और उनको संश्लिस्ट कर सचेतन कर देना रस का कार्य है।

व्याकरण–व्युत्पत्ति के अनुसार रस शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से हैः– 1 रस्यते इति रसः अर्थात् जो आस्वादन किया जाय वह रस है और 2 सरते इति रसः, अर्थात् जो बहे वह रस है। इस प्रकार रस में स्वाद और द्रवत्व दो धर्म विद्यमान है। ऋग्वेद में रस का प्रयोग एक स्थान पर सोमरस के लिए आस्वादन अर्थ में किया गया है। (दधानः कलशे रसम्, ऋग्वेद 9/63/13) ब्राहम्ण ग्रन्थो में उसको मधु के अर्थ में ग्रहण किया गया है, यथाः रसो वै मधु। आगे चलकर उपनिवद् ग्रन्थों में उसके आस्वादन और प्रवत्व दोनों प्रकार के स्वभावों का वर्णन बहुत ही सूक्ष्म ढंग से किया गया और रस से ही ऋग् यजुः तथा साम की ऋचाओं की उद्भावना बतायी गयी हैं (छान्दोग्य उपनिषद् 4/17) रस शब्द का यह अनेकविध विवेदन दर्शन–ग्रन्थों, रामायण औश्र महाभारत आदि में भी किया गया है, किन्तु काव्य के अनुरूप उसकी सभ्यता व्याख्या पहले–पहले आचार्य भरत ने की है।

ऋुतियों में, जिस रसतत्तव को अनन्त, अखण्ड, स्वंयप्रकाश, सच्चिदा–नंद धन– स्वरूप पर ब्रहम की संज्ञा तक दी गयी है, काव्यशास्त्रियों न`भी उसी ऋद्ध और विद्वता के साथ रस को सत्वगुण विशिष्ट, स्वंय प्रकाश, चिन्मय, आनन्द स्वरूप और ब्रहम्स्वादसहोदर आदि विशेषणों से काव्यात्मका के रूप में प्रतिष्ठित किया है। प्रत्यक्ष रूप से रसास्वादन मधुर, अम्ल, कटु, तिक्त आदि षड्रसों द्वारा होता है और अप्रत्यक्ष रूप से काव्यविष्ज्ञयक रसानुभव रीति अनुभाव और संचारीभाव कारणस्वरूप विद्यमान रहते हैं।

भरतकाल में रस केवल नाटक का ही तत्व था। काव्य मे ंउसका कोई स्थान नहीं था किन्तु क्रमशः उसने काव्य में भी स्थान प्राप्त किया और काव्य के अन्तर्गत नाटक की भी गणना होने लगी। काव्य से सहृदय सामाजिक को रस की अनुभूति किस प्रकार होती है। इसका उत्तर भरतनाट्यशास्- मे ंएक सूत्र के रूप में मिलता है– विभाव अनुभाव और व्याभिचारि भावों के सहयोग से रसनिष्पति होती है।[1]

हमारे मन में अनेक भावनांए विद्यमान रहती हैं जो किन्ही विशेष कारणों और परिस्थितियों के उपस्थित होने पर सुषुप्त अवस्था को त्याग कर जागृत अवस्था में आ जाती है। हमारी चेष्टाएं इन भावनाओं को प्रकट करती हैं और कुछ सहायक तत्व इन भावनाओं को पुष्अ करते हैं। इस प्रकार हृदय में स्थित सुषुप्त भावना ही क्रमशः जागृत, प्रकट और पुष्ट होकर रस का रूप धारण कर लेती हैं जिस प्रकार चांवल से भात बनाने के लिए पात्र, अग्नि, जगल और पाचन विधि का ज्ञान अपेक्षित है, उसी प्रकार भावना को रस रूप में परिणत करने के लिए कारण, विशिष्ट वातावरण, चेष्टाएं औश्र सहायक कारण अपेक्षित हैं।

काव्यशास्त्रीय दृष्टि से दखा जाए तो भावना ही हृदय में स्थित स्थायी भाव और उसकी उत्पत्ति के जो कारण हैं वे विभाव शब्द से, कार्य चेष्टाएं आदि अनुभव शब्द से और सहकारी कारण व्यभिचारि भाव नाम से कहे जाते हैं अर्थात् कारण रूप विभाव, कार्यरूप अनुभाव तथा सहकारी रूप व्याभिचारि भावों के सहयोग से व्यक्त होने वाले स्थायी भावों को रस कहते हैं।

स्पष्ट है कि सुषुप्त स्थायी भाव को रस नहीं कहा जा सकता। विभावादि द्वारा रस रूप में परिणत स्थायी भाव ही आनन्दानु भूति करा पाता है। इसलिए रस को आनन्द करते हैं। स्थायी भाव को मूल प्रवृत्ति यही स्थायी भाव आसवाद्य होने पर रस की संज्ञा प्राप्त कर लेता है।

भारतीय काव्यशास्त्रीयों के मत में 8 प्रकार के स्थायी भाव माने गये हैं और 9 वां प्रकार निर्वेद माना गया है। इन स्थायी भावों के 9 ही रस माने गये हैं। इसके

अतिरिक्त कुछ लोागें ने वात्सल्य रस और भक्ति रस की भी परिकल्पना की है। जहां तक आनन्दानुभूति का प्रश्न है, वहांह इन दोनों रसों की परिकल्पना उचित ही है। वत्सल को तो रस कह सकते हैं, किन्तु भक्ति को नहं। रसों का यह वर्गीकरण मनोवैज्ञानिक आधार पर किया गया है। व्यक्ति के मन में रहनेवाली पुत्रेषणा नामक मूल प्रवृत्ति की उपेक्षा हम नहीं कर सकते। पुत्र के प्रति स्नेह नामक पुत्रेषणा नामक मूल प्रवृत्ति से सम्बद्ध है। पुत्र के प्रति स्नेह स्त्री पुरूष के परस्पर स्नेह से बिल्कुल भिनन है। स्त्री पुरूष का प्रेम समव्यस्कता के आधार पर होता है। अतः वत्सल रस अलग ताना जा सकता है।

भक्ति या आदर नामक मूल प्रवृत्ति का किसी भी मनोवैज्ञानिक ने उल्लले ख नहीं किया। अतः भक्ति को हृदय में स्थिर में स्थिर स्थायी भाव नहीं माना जा सकता। माता–पिता गुरू और ईश्वर के प्रति श्रद्धायुक्त स्नेह को ही भक्ति कहा जाता है। भक्ति का प्रादुर्भाव सामाजिक परिस्थितियों, पूज्य जनों का समाज में विशिष्ट स्थान, लोक– परम्परा इत्यादि के अनुसार होता है। स्पष्ट ही है कि पुत्र–पुत्री के प्रति प्रेम भी श्रद्धा का सम्मिश्रण नहीं हो सकता, रमजी–रमण विषयक प्रेम में बराबरी का दावा होता है, अतः उसमें श्रद्धा की वह मात्रा नहीं होती जो गुरू, माता–पिता और ईश्वर के प्रति प्रेम में मिली रहती है।

''श्रंगार रस'' में रति नामक स्थायी भाव और वत्सल रस में बालक के प्रति वात्सल्य नामक स्थायी भाव ही बलशाली होते हैं, जबकि पूज्यजनों के प्रति प्रेम में मात्र स्नेह से काम नहीं चलता, उसमें स्नेह व श्रद्धा की मात्रा लगभग समान ही रहती है। अतः स्नेह और श्रद्धा के सम्मिश्रण रूप भक्ति को भक्ति रस का स्थायीभाव नहीं माना जा सकता है। अतः मनोवैज्ञानिक आधार को ध्यान में रखते हुए हम रसों की संख्या दस से अधिक मान सकते हैं

(2) ध्वनिस्वरूप विषयक काव्यशास्त्रीय अवधारणा

घ्वन्यालोक का अज्ञातनामा कारिकाकार, जिसको कि उसके कर्तूत्वाभिधान घ्वनिकार के नाम से पुकारा जाता है, और जिसके वृतिकार आनन्दवर्धनाचार्य है, ये

दोनों काव्यशास्त्र में अपना विशिष्ट सथान रखते हैं। इस आचार्यदद्वव ने काव्य–शास्त्र के क्षेत्र में जिन नये अनुसंधान कार्यो एवं नयी विचार–वीथियों का सूत्रपात किया, वहीं ध्वनि–संप्रदाय के नाम से प्रचलित हुआ। काव्यशास्त्र की व्यापकता और दुर्गमता को बोधगम्य बनाने हेतु रस, अलंकार और नीति आदि जिन नये वादों–विचारों का निर्माण हुआ, ध्वनि–संप्रदाय उनमें अतिसूक्ष्म वैज्ञानिक प्रणाली का प्रभावशाली मत था।

काव्यस्यात्मा धवनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्व अर्थात काव्य की आत्मा ध्वनि है, ऐसा मेरे पूर्ववर्ती विद्वानों का भी मत है से विदित होता है कि ध्वनिविषयक चिंतन ध्वन्यालोक का निर्माण होने से पहले भ्झी हो चुका था किन्तु विनापि विशिष्ट पुस्तकेषु से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी पूर्ववर्ती आचार्य ने गंभीरता–पूर्वक उस पर स्वतन्त्र विवेचन ग्रंथरूप में उपस्थित नहीं किया। आर्चाय भरत के रस–सिद्धान्त से ध्वनिकारों ने अवश्य प्रेरणा प्राप्त की हैः किन्तु उस पर सर्वथा आश्रित होकर नहीं। रस– सम्प्रदाय की मान्यता के सम्बन्ध में ध्वन्यालोक पर लोचन टीका के लेख अभिनवगुप्तपादाचार्य ने काव्यस्यात्मा ध्वनि इस कारिका की व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया है कि तेन रस एवं वस्तुतः आत्मा वस्त्वलंकार–ध्वनिस्तु सर्वथा रसं प्रति पर्यवस्यते अर्थात् ध्वनि के त्रिविध प्रकार (वस्तु अलंकार और रस) रस में ही पर्यवसित हो जाते हैं। इसलिए काव्य की वास्तविक आत्मका रस ही है, किन्तु वह सर्वथा ध्वनिसंपृक्त है।

ध्वन्यालोक से काव्यशास्त्र के क्षेत्र में एक नये युग का प्रवर्तन होता हैः ऐसे शक्तिशाली युग का जिसके अस्तित्व को मानने वाले आचार्यो की एक लम्बी परम्परा है। ध्वनि– सिद्धान्त एक ऐसा अद्भुत सिद्धान्त काव्यशास्त्र के क्षेत्र में उदित हुआ, जिसके कारण दूसरे सभी सिद्धान्त निस्तेज हो गये। ध्वन्यालोक पर लोचन टीका के लेखक कारण दूसरे सभी सिद्धान्त निस्तेज हो गये। ध्वन्यालोक पर लोचन टीका के लेखक आचार्य अभिनवगुप्त का काव्यशास्त्र मे ंवही स्थान है, जो व्याकरणशास्त्र में पाणिनी की अष्टाध्यायी के व्याख्याकार या भश्याकार पतञ्जलि का।

ध्वनि सिद्धान्त वैयाकरणों के स्फोटवाद से प्रभावित है। स्फोटवाद से प्रभावित है। स्फोटवाद के शब्द– साम्य और व्यापारसाम्य के आधार पर ध्वनिकार ने अपने इस वैज्ञानिक विचार पर आधारित सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की ध्वनिसिद्धान्त की सारी आधारभित्ति व्यजनाशक्ति पर टिकी है। ध्वनिवादियों का यह यह आधार इतना जमा हुआ और ठोस था कि भट्टनायक और महिम भट्ट जैसे आलोचक यत्न करने पर भी उसकी नीव का एक भी पत्थर हिला–डुला देने में सर्वथा निरूपाय रहे।

ध्वनिवादियों का अभिमत है कि रसानुभूति और भावानुभूति न तो शब्दोच्चारण में मात्र से ही सम्भव है और न वाच्यार्थ ही उसका स्पष्टीकरण कर सकता है। अतः अभिधा और लक्षणा से पृथक व्यंग्यार्थ– प्रतिपादिनी शक्ति व्यंजना द्वारा ही रस और भाव की सूक्ष्म आभ्यन्तरिक चेतना से साक्षात्कार किया जा सकता है, ध्वनि– सिद्धान्द के प्रतिपादन में जिसका प्रमुख सथान है। मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ द्वारा हम ब्रम्हाकृतियों का पता भर लगा सकते है। आभ्यन्तरिक चेतना, जिसकी तिरोभूति रस है, उसकी गवेषणा या परिचिति अन्तश्चक्षु द्वारा ही हो सकती है, जिसके रहस्य को व्यंजना शक्ति ही स्पष्ट करने में सक्षम हो सकती है। रस– सिद्धानत के प्रतिपादन में सांख्याकार भट्टनायक ने जिस भुक्तिवाद का उल्लेख किया है, उसके द्वारा भी व्यंजना को बोधगम्य किया जा सकता है।

भट्टनायक, कुंतक और महिम भट्ट प्रवृति ध्वनिविरोधियों के प्रबल प्रहारों के बाद भी ध्वनिवाद के अस्तित्व को उत्तरवर्ती सभी आचार्यो ने सम्मान के साथ ग्रहण किया आचार्य मम्ट के ध्वनि सिद्धान्त का समर्थन ही नहीं किया वरन ध्वनि विरोधियों का भी प्रबल खण्डन किया। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ के मतानुसार वाच्यार्थ की अपेक्षा, अत्यधिक चमत्कार पूर्ण व्यंग्याथ– प्रधान काव्य ही प्रकाशान्तर से ध्वनि है। कविराज विश्वनाथ के बाद पण्डितराज जगन्नाथ ने ध्वनि–सिद्धान्त की व्यापक व्याख्या की और फलतः ध्वनि– सिद्धान्त का यह प्रभाव इतना बढ़ा कि उसके भेदोपभेदों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म वैज्ञानिक वर्गीकरण 90,4,55 संख्या तक पहुंचा।

(3) ''सीताचरितम्'' महाकाव्य में रस योजना

सीताचरितम् काव्य में यद्यपि अनेक रसों का समावेश नहीं है तथापि जो रस विशेषतः प्रयुक्त हुए हैं उनमें कयण वात्सल्य और वीर प्रमुख है। सीताचरितम् जैसा नाम से ही स्पष्ट है कि इस काव्य में सीता के ही उत्तरचरित का वर्णन किया गया हे जो वनवास से लेकर समाधि तक मूल रूप से उनके ही जीवन की घटनाओं को चित्रित करता है। अतः इस काव्य में अंगीरस की दृष्टि से देखा जाए तो शात्न् रस का ही नाम आता है। अन्य करूण वात्सल्य आदि तो उसके अंगरूप में ही परिपुष्ट होते हैं। ये रस प्रस्तुत महाकाव्य में किस प्रकार अभिव्यक्त हुए हैं, उनका विवेचन निम्नलिखित है–

शान्त रस

भारत काव्यशास्त्रियों की शान्त रस के विषय में अवधारणा है कि सत्तव–गुणसम्पन्न पुरूष के हृदय में स्थित शम नामक स्थायीभाव ही आस्वादन योग्य होकर शान्त रस की पदवी पाता है। इसका रंग कुन्दपुष्प के समान श्वेत है, अथवा चन्द्रमा के समान है, जो सात्त्विकता का द्योतक है। पुरूषों को मोक्ष रूप पुरूषार्थ की प्राप्ति कराने वाले श्री भगवान् नारायण इस रस के देवता है। जन्म मरण से भय, वैराग्य तत्वों और शास्त्रों के चिन्तन से उत्पन्न होने वाला शानत रस होता है। क्षमा, ध्यान तथा उपकार आदि के द्वारा उनका अभिनय किया जाता है। महर्षियों के आश्रम, भगवान् के क्रीड़ाक्षेत्र, तीर्थस्थान, तपोवन, सत्संग आदि इसके उद्दीपन विभाव हैं। यम– नियम यतिवेष धारण करना, रोमांच इत्यादि इसके अनुभाव हैं। इस रस का प्रादुर्भाव होने पर व्यक्ति में द्वेष, ईर्ष्या ममत्व आदि भावों का सर्वथा अभाव हो जाता है। वह सुख दुःख से रहित एक विलक्षण ही आनन्द प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त श्रृंगारादि सांसरिक रसों में धर्म, अर्थ, काम–इन तीन पुरूषार्थो की झलक दिखाई देती है, किन्तु अलौकिक आनन्दानुभूति कराने वाले शान्त रस में सर्वश्रेष्ठ पुरूषार्थ मोक्ष की झलक मिलती है।

श्रृंगार को यदि रसराज की पदवी दी गई है, तो इसे रसाधिराज मानना चाहिए क्योंकि इसके प्रादुर्भव के समय अन्य सभी रसों की सत्ता इसी में विलीन हो जाती है। विश्वनाथ कवि राज ने महाकव्य के लक्षण में श्रृंगार, वीर और शांत–इन तीन रसों में से किसी एक को अंगीरस होना आवश्यक बताया है और अन्य रस उसके अंग में अभिव्यक्त होते हुए, उसको परिपुष्ट करते हुए दिखाए जा सकते है।

सीताचरितम् महाकाव्य का मुख्य रस शान्त ही है परम उद्देश्य मोक्ष है। सीता ही शान्तरस की नायिका है। उनके हृदय में स्थिर शम नामक स्थायीभाव, विशिष्ट वातावरण में प्रबुद्ध होकर शान्तरस का रूप धारण कर लेता है। वैराग्य, तत्त्व चिन्तन इसके आलम्बन हैं। महर्षि वाल्मीकि का आश्रम, तपोवन इसके उद्दीपन विभाव है। यमनियम, यतिवेश धारण करना इसके अनुभाव हैं। निर्वेदन, मति, प्राणियों पर दया आदि इसके संचारी भाव हैं। शान्त रस का सर्वप्रथम उदाहरण दिखाई देता है–सीताजी की पराङ्मुखता देखकर। जब वाल्मीकि आश्रम में लवकुश और चन्द्रकेतु के साथ राम भी आते हैं। तो सीता फिर असक्ति पैदा नहीं होती। आश्रम में सभी माताओं व श्रीराम को साथ देखकर भी सीता तटस्थ ही रहती है और ऐसी प्रतीत होती हैं मानों आत्मा में विलीन राजहंसी या अपने पुरूष में पुरावाक्। हंस से तात्पर्य है युक्तयोगी और जो रूपादि विषयों से मन हटाके किसके ध्यान में एकाग्र हो जाता है उस योगी को युक्त कहते है।

जब आत्मलाभ हो जाने पर व्यक्ति में परामात्मरूपी परज्योति उदित हो विलीन हो जाती है, तब कहां रागद्वेष्ज्ञ कहां कामक्रोध और कहां मदमत्सर। इसीलिए सीता जी को सभी परिजनों को सामने पाकर किसी प्रकार का मोह उत्पन्न नहीं होता। न ही उन्हें किसी प्रकार के पुनः वियोग का कोई डर है क्योंकि जो स्व– आत्मतत्त्व है, उसमें शरीर की भिन्नता से भिन्नता नहीं आती और जिसमें भिन्नता आती है वह स्वआत्मतत्त्व नहीं होता। जो कोई स्व नामक आत्मतत्त्व में अवस्थित हो जाता है वह न वियोग से डरता है औश्र नहीं शरीरपात से।

मोक्ष की इच्छा करने वाले व्यक्ति मित्र तथा शत्रु के साथ समव्यवहार वाले और सुख दुःख में समानावस्थ में रहने वाले होते हैं। वाल्मीकि– आश्रम में सभा के सामने उपस्थित होने पर सीता जी शिष्टाचार पर ध्यान देखकर उठती हैं और सबको प्रणाम करती हैं क्योंकि जो विद्वान आत्मलाभ पर लेते है वे समदर्शी हो जाते हैं और उन्हें तब मित्र–शत्रु तथा बूढ़े–बालक सब समान दिखाई देते हैं। उनकी यह समत्व दृष्टि शम की अनुभावक होने के कारण अनुभाव कही जा सकती है।

सब प्रकार के विषयों से इन्द्रियों में मोक्ष प्राप्ति कर लेने और प्राणरोध स्वरूप प्राणायम लग जाने से सीता का ध्यान सुदृढ़ हो जाता है। इस स्थिति में सीता का उत्थान से परे की स्थिति में स्थिर हो कर युक्त योगी बन जाना और रसलीनता की स्थिति में पहुंच जाना शान्त रस की परिपूर्ण अभिव्यक्ति में समर्थ है।

वात्सल्य

अपनी सन्तान या उस श्रेणी के अन्य किसी प्रिय सम्बन्धी से जो स्नेह होता है उसे वात्सल्य कहा जाता है। वात्सल्य में भी रति–भाव ही दूर से झांकता दिखायी देता है। रतिभाव का रूपांतर ही कहा जा सकता है, इसमें रति के परम उत्कर्ष को देखकर और प्रकट चमत्कारक होने के कारण कुछ प्राचीन और आधुनिक काव्य शास्त्री उसे रस का पद देने के लिए तैयार है। इसमें वात्सल्य स्नेह स्थायी होता हैं, पुत्रादि इसका आलम्बन और उसकी चेष्टा तथा विद्यालय, शूरता, दया आदि उद्दीपन विभाव होते हैं। आलिंगन, अंगस्पर्श, सिर चूमना, देखना रामांच आनन्दाश्रु आदि इसके अनुभाव होते हैं। अनिष्ट की आशंका, हर्ष, गर्व आदि इसके संचाररी होते है। इसका कर्ण कमलगर्भ के समान और ब्राही आदिक माताएं इसकी अधिष्ठात्री देवियां हैं। सीताचरितम् महाकाव्य में वात्सल्य की झांकी भी अनेक स्थलों पर दिखाई देती है। श्रीराम के लक्ष्मण और सीता सहित वनवास से लौटने पर माता कौशल्या का उनके प्रति जो स्नेह उमड़ता है, उसमें पूर्णरूपेण वात्सल्य झलकता है। श्रीराम के वन में निवासी की स्थिति का ध्यान करके कह उठती हैं– कहां तो तू पहले चलने का कौतुक करता था तो पुष्पों से ढंके पथ पर पैर रखता था अज़ैर

कहां छुईमुई सी इस बहू और छोटे भाई के साथ तेरे पैरों में कांटे टूटे। इतना ही नहीं राम जैसे पुत्र को जन्म देकर स्वयं को धन्य मानती हैं क्योंकि राम के शारीरिक, बोद्धिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार के पराक्रम परिष्कृत सिद्ध हुए है जिसमें सूर्यवंश के साथ–साथ मां कौशल्या का जन्म भी धन्य हो गया है।

यहां माता कौशल्या का वात्सल्य स्नेह स्थायी भाव है, पुत्र राम आलम्बन, उसके बौद्धिक, मानसिक आदि पराक्रम की चेष्टाएं उद्दीपन विभाव है। राम के कार्यो से जनित गर्व, हर्श आदि संचारी भाव है।

माता कौशल्या का वात्सल्य स्नेह पुत्र की अपनेज्ञा अपनी पुत्रवधू के प्रति और भी अधिक दिखाई देता है। आंखों में आंसू लेकर वे पातिव्रत्य के पालन से अधिक दुबली सीता से कहती है– बेटी, विधाता के वाम होने पर भी स्नेहपूर्ण चित्त से तूने मेरे बेटे के लिए धारण किए व्रत को जो नहीं जोड़ा और दोनो कुल की लाज बचा ली, इसलिए हे शुभे! मुझ सासा के लिए तू बहू ही आज वन्दनीय हो गई है।

भरत और लक्ष्मण के प्रति तो कौशल्या का वात्सल्य और भी अधिक है क्योंकि दूसरों के लिए अपने सुख का परित्याग करने वाले वे दोनों उन्हें रामभद्र और जनकात्मजा (सीता) से अधिक प्रिय है।

वन में ऋषि आश्रम में रहकर अपने पुत्रों को पालतमे हुए सीता के मन में व्यथा तो होती ही है क्योंकि नानी अपने बचचें को पति की गोद में देखकर ही अपने मातृभाव को चरितार्थ मानती है फिर भी सीता जती के मन 3 में एक ओर अतीव वत्सलता भी उमड़ती ही है। वाल्मीकि आश्रम में समस्त सभाजनों के सामने सीता के प्रकट होने पर सब लोग उन्हें भक्ति और भय से प्रणाम करते हैं तो सभापति जनकयह देखकर खुश होते है। क्योंकि प्रत्येक गृहस्थ अपनी बचिचयों का समादर देखता है तो स्वभाविक रूप से प्रसन्न होता ही है ओर उसका वात्सल्य अपनी सन्तान के प्रति अधिक उमड़ता है। वात्सल्य की पराकाष्ठा दिखाई देती है जनक के वत्सल मुख से निकले इसे वाक्य में मेरी बेटी तू सफेद हुए मेरे इन बालों

की लाज सिद्ध हुई। यहां जनक का सीता के प्रति वात्सल्य स्नेह स्थायी भाव है। सीता आलम्बन विभाव है उनकी चारित्रिक दृढ़ता तेज आदि उद्दीपन विभाव हैं। जनक का हर्षित होना अनुभव है और उनकी पुत्री का आदर देख कर गर्व अनुभव करना सचारी भाव है।

सीता का निर्वेद के साथ वात्सल्य भाव भी दर्शनीय है। जब सीता के चरणकमल रूपी तीर्थ में प्रणाम करने के लिए झुके हुए चन्द्रकेतु का सिर नाती के सिर के समान ततकल सूंघती हैं, लेकिन प्रणाम के समय सिर पर लगी तपोवन की पवित्र धूल को दूर नहीं करन चाहती तब इस प्रकार के माता के वात्सल्य और शान्ति का मिश्रण देख कर मुनित्व अधीर हो उठता है और सद्गृहित्व आश्वासन की लम्बी सांस लेने लगता है।

इतना ही नहीं अन्तः करण से वत्सल्य होने के कारण सीता में वाल्मीकि आश्रम के तृण, तरूमृग पक्षी धेनु बछड़े और द्विजातीय के बच्चों पर भी अपने पुत्रों के समान का यथार्थ चित्रण हुआ है।

करूण

इष्ट के नाश और अनिष्ट की प्राप्ति से करूण रसय आविर्भूत होता है। यह कपोतवर्ण होता है और इसके देवता यमराज हैं। इसमें स्थायी भाव शोक होता है और विनष्ट बन्धु आदि शोचनीय व्यक्ति आलम्बन विभाव होते है। प्रारब्ध की निन्दा, भूमिपतन, रोदन, विवण्रता, उच्छवास, निश्वास, सतम्भ और प्रलाप इस रस में अनुभाव होतेहै। निर्वेद विवर्णता, मोह, अपस्मानर, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, श्रम, विषाद, जड़ता उन्माद औश्र चिन्ता आदि इसके संचारी भाव है।

प्रस्तुत काव्य में करूण की भी विशद व्यंजना हुई है। सर्वप्रथम राम द्वारा भेजे गए गुप्तचर से विदेहनन्दिनी के प्रति संशायालुता की बात सुनकर कौन विचलित नहीं होता। अन्तः कमल जैसे भगवान् राम का हृदय भी दूत के द्वारा प्रियतिरस्कारमयी लोहे के घन के आघात जैसी विषतुल्य वाणी को सुन कर विदीर्ण हो उठता है और वे भी मूर्च्छित हो जाते है।

भगवान् राम दूत को विदा करके चले जाने पर इतने कातर हो जाता है कि प्रिया के अनिष्ट की शंका करके विलाप करने लगतें हैं क्योंकि अपने प्रिय को नष्ट करने हेतु उद्यत राक्षसी वृत्ति को देखकर सभी का हृदय व्यथित हो उठता है अपनी प्रिया के प्रति लोगों की शंका को जान कर राम अत्यन्त व्याकुल हो उठते हैं कि आर्यो की सदा ही विशुद्ध बनी रहने वाली संस्कृति का जो मनस्विनी सदा ही मन वचन औश्र कम र्से सेव और रक्षण करती रहती है और धर्म– कर्म में जो मृतयु से ाी नहीं डरती, आह लोग उसकी भी निन्दा कर रहे हैं।

इतना ही नहीं अपनी पत्नी के चरित्र की दृढ़ता को जानते हुए भाग्य से भ्झी कह उठते है– हे विद्याता यह कैसा आग्रह कि गंगा अग्नि के समान वशुद्ध चेतना की मेरी, केवल मुझ पर ही केन्द्रित चित्त वाली, प्रिया को पापशंका के झंकारों से लता की नाई झकझोर रहे हो।

उपर्यूक्त उदाहरणें में प्रिया(सीता) के अनिष्ट (वियोग) की प्राप्ति आलम्बन विभा है, उसके प्रति लोगों में फैला अपवाद उद्दीपन विभा है। मूर्च्छित होना, रुदन प्रारब्ध की निन्दा, प्रलाप आदि अनुभाव हैं। जड़ता विषाद आदि संचारी भाव है।

सीता के प्रति लोगों में फैले अपवाद का वृतान्त जान कर अत्यन्त पीड़ित राम–माताएं भी बार–बार मूर्च्छित होती है और उत्तरोत्तर अधिक सन्तप्त होकर बुद्धि का धैर्य खोकर विलाप करने लगती है ओर विधाता को ही कोसती है कि यह मेरी बहू इन्द्र के अंश को भूमि के समान मेरे पुत्र के परिपक्व अंश को धारण किए हुए है। विधाता तू इस पर वृत्रासुर के समान कलंक के ओले क्यों बरसाना चाह रहा है तूने कुलपावन पुत्र वधू क्यों दी और दी तो उस पर विपत्ति पर विपत्ति की अग्नि छोड़ने का हठ क्यों दूर पकड़े हुए है? बहू और बेटे के जोड़े को निहार कर मेरी वह मरूस्थली बहुत दिन बाद उर्वर हुई थी। विधाता इसे उजाड़ने के लिए तूने फिर से कलंक का अकाल क्यों उपस्थित कर दिया।

उपर्युक्त श्लोंको में भी सीता के अनिष्ट की प्राप्ति आलम्बन और उनके प्रति फैला अपवाद उद्दीपन विभाव है। माताओं का मूर्च्छित होना, विलाप करना और

भाग्य की निन्दा करना आदि अनुभाव है। विषाद् जड़ता और चिन्ता आदि संचारी भाव है।

अपने प्रति लोगों के अपवाद को सुनकर सीता इतनी विचलित नहीं होती जिनती कि श्रीराम की विक्रिया को देख कर और मूर्च्छित हो जाती हैं राम की दशा को देखकर स्वयं ही निर्णय कर लेने वाली सीता के वचनों में कैसी करूणा का भाव दिखाई देता है कि हे देव यदि आपका अक्षय राज्य सुख–शान्ति के जल से शीतल है तो उसमें तपन पैदा करने वाली मुझ जैसी निन्दित व्यक्ति का क्या प्रयोजन? मै कानन वन, जहां आप चाहें, रह सकती हूं। केवल विश्वमानव को आपकी कीर्ति के साथ निष्कण्टक रहना चाहिए। सीता की करूणा की पराकाष्ठाा दिखती है। जब वे अपने स्वामी राम से याचना करती है कि अपनी इस प्रणय–भिखुकी को क्षीरसिन्धुतुल्य उज्ज्वल हृदय की आसन्न परिचारिका केपद से वंचित न करें चाहे उसका सब कुछ छूट जाए। स्वामी के चरणतीर्थ में अन्तिम प्रणाम करके माताओं की चरणरज को अपने आंचन में निधि के समान धारण करती है।

जब सीता चित्त की अबलाजनोचित कातरता को रोककर अंजलि बांध कर भरत से अपने वन में पहने हुए पुराने वल्कलों की याचना करती हैं और उस सती का वाक्य जब पूरी सभा कोन तक पहुंचता है तो सबको प्रतीत होता है कि उनपर वज्र प्रहार हुआ है। वह सभा उसे सह नहीं सकती है और वे लता के समान भूमि पर जा गिरती है।

माताओं के द्वारा सीता को आप्त बुद्धि वाले प्राचेतस ऋषि के आश्रम में छोड़ दिए जाने की आज्ञा देने पर श्रीराम जब लक्ष्मण को आदेश देते है तो उनके हृदय की विकलता का अनुमान सहज ही हो जाता है– तात, वनों में विचरण करते हुए तुमने पुत्र भाव से जिसकी सेवा की है, गर्भ के भार से अतीव अलसाई तुम्हारी वही भौजाई आज नष्ट की जा रही है, वह सहन कर लो।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रस्तुत काव्य में करूण रस का भी भावभियंजक चित्रण हुआ है।

वीर

उत्तम पात्र में आश्रित वीर रस है। इसका स्थायी भाव उत्साह, देवता महेन्द्र और रंग सुवर्ण के सदृश होता है। इसमें जीतने योग्य रावणादि आलम्बन होते है ओर उनकी चेष्टा आदि उद्दीपनविभव होते है। युद्ध के सहायक धनुष आदि यद्वा सैन्य अन्वेषण आदि इसका अनुभाव है। धैर्य, मति स्मृति तर्क, रोमांच आदि इसके संचारितभाव है। दान धर्म, दया और युद्ध यह वीर चार प्रकार का होता है। दानवीर, धर्मवीर, दयावीर, और युद्धवीर।

प्रस्तुत काव्य में अश्वमेध के लिए छोड़े गए अश्व को मुनिकुमारों द्वारा पकड़ लिए जाने पर अश्व की रक्षा के लिए आए हुए लक्ष्मण पुत्र चन्द्रकेतु और मुनिकुमारों का युद्ध चित्रित किया गया है। चन्द्रकेतु की सेना के वीर सैनिक जयघोष करते है, किन्तु उसमें दूसरे क्षत्रिय वीरों के अपमान के उद्‌गार होने से स्वभाव से वीर होने के कारण उन जयघोषों को सीता के पुत्र सह नहीं सकते। अपमानपूर्ण उक्तियों का शमन अश्व के निरोध में ही देखते है और दोनों बालको के तेज में बड़े से बड़े यौद्धओं के भी बाण महाप्रलय की अग्नि में शलभ्ज्ञ के समान सिद्ध होते है।

उस युद्ध में ऐसी धूल उड़ी कि सेना के वीर लोग काफी कुशल योद्धा होने पर भी और काफी ध्यान से देखने पर भी यह जान नहीं पाते कि कहां रथ है औश्र कहां मत्तेभ (मदमाते हाथी) तथा कहां घोड़े हैं और कहां पदाति सैनिक और न यही समझ पाते हैं कि कहां भूमि तल है और कहां जल, कहां आकाश है और कहां उसका चन्द्र तथा कहां अग्नि है और कहां सूर्य उस युद्ध में (रामरूपी) ब्रम्हा के पुत्रों (लव–कुश) के अस्त्रसंपात ने चन्द्रकेतु के भटों का संहार शरीर से बाद में किया बुद्धि से पहले चराचर में अकालप्रलय की अशंका पैदा करने के कारण चर्तुदश विश्वों की चर्तुदशी उस समय अमावस बनने जा रही थी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि उपर्युक्त उदाहरणों में वीर की अभिव्यंजना की गई है। परन्तु जिस युद्ध का उद्देश्य एक ओर यज्ञ की रक्षा हो और दूसरी शत्रु मद की शान्ति, वह युद्ध शस्त्राभ्यास से अधिक हो हीक्या सकता था?

संकेत सूची

1. विभावानुभावव्यभिचारिसं योगाद्रसनिष्पत्तिः। भरत–नाट्यशास्त्र.
2. कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च। रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः।। का.प्र. – 4/27 विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः। व्यक्तः सः तैर्भिभावाद्यैः स्थायीभावो रसः स्मृतः।। तत्रैव,– 4/2
3. रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा। जुगुप्सा विस्मयश्चेत्थमष्टौ प्रोक्ताः शमोडपि च।। सा.द. – 3/175 रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा। जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावः प्रकीर्तिताः।। का.प्र. – 4/30 निर्वेदस्थायिभावोडस्ति शान्तोडपि नवमो रसः। तत्रैव– 4/37
4. श्रृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः। वीभत्सोडद्भुत इत्यष्टौ रसाः शान्तस्तथा मतः।। सा.द. 3/182
5. स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः।

   स्थायी वत्सलतास्नेहः पुत्राद्यालम्बनं मतम्।। तत्रैव – 3/251
6. ध्वन्यालोक – 1/1
7. डॉ. नागेन्द्रः रीतिकाव्य की भूमिका, पृ.सं. 127
8. संसारभय–वैराग्य– तत्त्व– शास्त्र विमर्शनैः।

   शान्तोडभिनयनं तस्य क्षमा–ध्यानोपकारतः।। ना.द., – 3
9. ना.शा. – 16/83, 84–87
10. कविरथ महान् वीरैस्तैरात्मजैः परिवारितं

    रघुपरिवृढं रामं धाम स्वकं खलु नीतवान।

    जनकतनया ज्ञात्वाप्येतद् बभूव पराङ्.मुखी

    न खलु वशिनां त्यक्ते वस्तुन्युदेति पुनारतिः।। सी.च., – 8/70

11. आसीद् विदेहाधिपतेः सुता तु तथा तटस्था निखलेषु तेषु।

यथा विलीनात्मनि राजहंसी यद्वापि गीः कापि परा स्वपुंसि।। तत्रैव– 9/3

12. क्व द्वेषरागौ क्व च लोभमोहौ क्व क्रोधकामौ मदमत्सरौ वा। यदात्मलाभे परमात्मसंज्ञं ज्योतिः पर किंचिदुदेति पुंसि।। सी.च., – 9/4

13. न देहभेदेन विभिद्यते स्वं विभिद्यते यच्च तदस्ति न स्वम्। स्वनाम्नि भूम्नि स्थितिमान् विभंति न वा वियोगात्र च देहपातात्।। तत्रैव– 9/5

14. व्युत्थाय सा च तनया जनकस्य शिष्टाचारं व्यपेक्ष्य निखिलानपि तान् ननाम। मित्रे रिपौ जरति बालजने च लब्धलाभा भावन्ति विबुधा समदर्शिनो यत्।। तत्रैव– 9/63

15. शब्दादिभ्यस्तदनु करणग्राम आसाद्य मोक्षं तस्या आत्मन्यमृतजलधौ बिन्दुभावेन मग्नः।

प्राणायामः स्वयमथ तदा प्राणरोधस्वरूपः प्रादुर्भूतः सहजसुभगो ध्यानदार्च दुहानः।। तत्रैव, – 10/68

16. स्थितावस्यामेष्ज्ञा स्थितिमलभतोत्थानरहितां युतो युक्तो योगी
युपरतसमाधिच्युतिरभूत्।

अगात् साधारण्यं तदनु तिसृषु व्यक्तिषु परं, नरो नारी क्लीबं क्व नु दधति भेदं रसलये।। तत्रैव– 10/71

17. स्फूटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः। स्थायी वत्सलतारनेह, पुत्राद्यालम्बनं मतम्।। सा.द., – 3/251

18. उद्दीपनानि तच्चेष्टा विद्याशौर्यदयादयः।
अलिङ्गनाङ्गसंस्पर्शशिरश्चुम्बनमीक्षणम्।। सा,द – 3/251 पुलकानन्द

प च म अध्याय

पंचम अध्याय

महाकाव्य का शिल्प विमर्शः–

अलंकार विवेचन

अलंकार शब्द अलम् उपसर्गपूर्वक कृ धातु से ध प्रत्यय के योग से निर्मित हुआ है। इस शब्द का अभिप्राय है–सजाने का उपकरण /काव्यशास्त्रीय दृष्टि से अलंकार को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है– कविताकामिनी को सुसज्जित करने वाले अनुप्रास– उपमादि उपकरणों को अलंकार कहा जाता है जिस प्रकार स्त्रि– पुरूष अपने सौन्दर्य की अलंकार सृष्टि अभिवृद्धि के लिए अलंकारों का प्रयोग करते है उसी प्रकार भाषा को अलंकृत करने वालों तत्वों में अलंकार का प्रमुख स्थान है। इसी कारण कुछ आचार्यो ने काव्य शास्त्र को अलंकार शास्त्र भी कहा है। काव्य मीमांसाकर राजशेखर को वेद का सातवां अंक स्वीकार करते है।

सप्तमड मिति यायावरीयः

भामह के अनुसार नारी का मुख सुन्दर होते हुए भी आभूषणों के बिना शोभा नहीं देता। वनिता के स्वाभाविक सौन्दर्य का अलंकारों के बिना कोई मूल्य नहीं है। इसलिए भामह ने अलंकार रहित कथन को काव्य न कहकर उसे वार्ता की संज्ञा से अभिहित किया है। अलंकार शब्द का लौकिक प्रयोग जितना प्रसिद्ध है, शास़ीय प्रयोग भी उतना ही प्रसिद्ध है। जिस प्रकार शरीर शोभावर्धन के हेतु हार केयूर आदि अलंकार कहे जाते है। उसी प्रकार–शब्दार्थ स्वरूप शरीर की शोभावृद्धि द्वारा रस रूप शरीर की शोभा का उत्कर्ष करने वाले उपमादि अलंकार कहे जाते है।

आचार्य मम्मट ने काव्य प्रकाश में अलंकार स्वरूप विवेचन प्रसंग में अलंकार को परिभाषित करते हुए कहा है कि–

उपकुर्वन्ति तं सन्तं येडगंद्वारेण जातुचित्।

हारादि वदलंकारास्तेडनुप्रासोपमादयः।।

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ भी मम्मट का ही अनुसरण करते हुए अलंकार का स्वरूप निरूपित करते हैं–

शब्दार्थयोरस्थिरा ये धार्मः शोभातिशायिनः।

रसादीनुकुर्वन्तोडलंकारास्तेडगंदादिवत्।।

अलंकार की उपयोगिता वाणी की सज्जा के लिए ही नहीं अपितु भावों की अभिव्यक्ति के लिए भी है। भाषा की पुष्टि व राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान है। वे वाणी के हास, अश्रु, स्वप्न, पुलक, हाव–भाव हैं।

सातवीं सदी के आलांकारिक आचार्य दण्डी ने भी अपनें अलंकार ग्रन्थ काव्यादर्श में काव्य के सौन्दर्य कारक धर्म को अलंकार कहा है–

काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते।

आचार्य रुरूयक का कथन है कि प्राचीन आचार्यो ने अलंकार को काव्य में प्रधान तत्व माना है–

तदेवमलड् कारा एव काव्ये प्रधानमिति प्राच्यानां मतः।

जयदेव तो अलंकारों से रहित शब्दों और अर्थ को काव्य स्वीकार ही नहीं करते उनका कहना है कि जिस प्रकार अग्नि का उष्णता से रहित (शीतल होना सम्भव नहीं है,) उसी प्रकार अलंकार रहित काव्य भी असम्भव है–

अड्.गीरोति याः काव्यं शब्दार्थवनलड्. कृती

असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलड्. कृती।

जीवन के विस्तार के साथ–साथ कविजन की नवीन कल्पनाओं से नवीन अलंकारों का प्रस्फुटन होता रहता है। अतः अलंकारों की संख्या के विवेचन के बारे में कवियों का मत साम्य नहीं प्राप्त होता है। अलंकारों की संख्या कितनी है? यह यथार्थतः बताना विषय समस्या है।

अलंकारों की सर्वप्रथम चर्चा व विवेचन भरतमूनि नें अपने नाट्यशास्त्र नामक ग्रन्थ में किया है इन्होने चित्रांलकार पर एक पूरा अध्याय लिखा है। काव्यप्रकाशकार ने अलंकारों का विवेचन किया है। भामह ने व दण्डी ने अलंकारों का वर्णन किया है। शब्दालंकर तथा अर्थालंकार है रुय्यक में अलंकारों की उद्‌भावना की है। शब्द व अर्थ दोनों को मिलाकर काव्य कहा जाता है। इसलिए अलंकारों का वर्गीकरण मुख्य रूप से दो प्रकार का है–

शब्दालंकार

अर्थालंकार

यद्यपि अलंकार बाहरी साधन होते हैं तथापि उनके पीछे अलंकृतिकार की आत्मा का उत्साहव ओज छिपा होता है आचार्य रेवा प्रसाद द्विवेदी ने महाकाव्य सीताचरितम् में सहज रूप से शब्दालंकारों और अर्थालंकारों का प्रयोग किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन अलंकारों का प्रयोग द्विवेदी जी ने अपने रचना चातुर्थ को प्रदर्शित करने के लिए जानबूछकर नहीं किया अपितु स्वतः ही ये अलंकार उनकी भाषा शैली में गम्फित हो गये है।

सामान्यर्तः अलंकार के दो भेद बताए गये हैं–

1. शब्दालंकार 2. अर्थालंकार

शब्दालंकार

काव्य–शरीर में सौन्दर्य का सृजन करने के प्रत्यक्ष उपादान शब्दालंकार ही होती हैं। अर्थ–ज्ञान से पूर्व भी शब्द–चयन नाद–सौन्दर्य आदि के द्वारा विशेष रूप से संस्कृत भाषा में मन को बरबस आकृष्ट करने वाली जिस रमणीयता का अनुभव होता है, वह शब्दालंकारों की ही देन है। जहां शब्द का परिवर्तन करके उस का पर्यायवाचक दूसरा शब्द रख देने पर अलंकार नहीं रहता है, वहां यह समझना चाहिए कि उस अलंकार की स्थिति विशेष रूप से उस शब्द के कारण ही थी।

इसलिए उसे शब्दालंकार कहा जाता है। प्रस्तुत महाकाव्य में भी शब्दालंकार का प्रयोग यथास्थान किया गया है।

यमक्

आचार्य मम्मट के अनुसार अर्थ होने पर भिन्नार्थक वर्णों की उसी क्रम से पुनरावृत्ति यमक शब्दालंकार कहलाता है। वाल्मीकि आश्रम में सीता के प्रति कहे गये साकेतनिवासियों के वचनों को सुनकर जनक की स्थिति का वर्णन करने में यमक अलंकार का ही प्रयोग हुआ है– हित करके सम्पूर्ण भूतल को प्रसन्न कर चुकी अपनी पुत्री के प्रति जनता के मन को प्रणाम के कारण पवित्रतारूपी अमृत से युक्त देखकर जनता पर कोप न करने वाले जनक भी अब कृतकृत्य हो गए।

यहां पर ''जनको.....'' इत्यादि वाक्य में पहली बार के जनको इन वर्णों के सार्थक ओर दूसरे बार के जनकोप को मिलाकर बने जनको के अनर्थक होने से और उसी क्रम से स्थित वर्णों की आवृत्ति होने के कारण यमक अलंकार स्पष्ट प्रतीत होता है। पद और उसके एक भाग आदि में रहने से वह यमक अनेक प्रकार का हो जाता है।[3] कहीं प्रथम पाद द्वितीय तृतीय या चतुर्थ चरण में आवृत्त हो सकता है। तो कहीं द्वितीय पाद तृतीय तथा चतुर्थ पाद के स्थान में आवृत्त हो सकता है। और यहां पर स्थविरता विरतामिव और कांचन कांचनता आदि पदों में वर्णों की क्रमशः आवृति है। अन्य स्थलों पर भी यमक के सुन्दर उदाहरण दिखाई देते हैं।

अर्थालंकार

अर्थालंकार पद में अर्थ शब्द से अभिप्राय है जो वर्णन का विषय हो, अलंकार का अर्थ है जिससे सजाया जाए। भाव यह है कि कवि सामाजिकों, श्रोताओं और पाठको को आनन्दरूप रस की अनुभूति करा देने के लिए काव्य का निर्माण करते हैं, इलिए अनुभव योग्य रस के साधन, काव्य के शरीर शब्द और अर्थ का इस शैली से उपन्यास करते हैं कि रसास्वादन सुचारू रूप से हो सके।

कोई भी वस्तु जो अपने यथार्थरूप में है, उसकी नूतन उल्लेखमय विलक्षण ही अलंकार है। इसका उल्लेख सर्वप्रथम भामह ने किया है। आचार्य अभिनवगुप्त ने व्याख्या की है– शब्द और अर्थ की वक्रता का मतलब है लोकोत्तर रूप में अवस्थान। यही अवस्थान उपमादि अलंकारों का अलंकरात्व है। शब्द और अर्थ की वक्र उक्ति का नाम ही आतिशयोक्ति है। अतए भामह ने अतिशयोक्ति का निरूपण करते हुए लिखा कि वह ही सर्वत्र वक्रोकित का अन्य से विभावन करती है। फलतः वक्रोक्ति और अतिशयोक्ति दोनों पर्याय है।

दण्डी की मान्यता है कि सम्पूर्ण वक्रोक्तियों का मूल श्लेष है, इसी से वक्रोक्तियों में श्री आती है। स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति भिन्न–भिन्न दो अंग हैं, और यही काव्य का स्वरूप है। तत्पश्चात् वामन ने सर्वालंकार साधारणता के लिए उपमा का अभिषेक किया भामह, वामन, दण्डी के इन सिद्धान्तों का एक सूत्र में ग्रंथन रूद्रट ने किया है। – ''अर्थालंकारों के मूलाधार चार हैं जो निम्नलिखित हैं– वास्तव, औपम्य, अतिशय, श्लेष। अन्य समस्त अलंकार इन्ही के विशेष रूप हैं।

वस्तु के यथावत् स्वरूप ही वास्तव है। किसी वस्तु का सम्यक् वर्णन करने के लिए उसी के समान अन्य वस्तु का उल्लेख करना औपम्य माना जाता है। वस्तु के प्रसिद्ध स्वरूप से भी भिन्न अलोक सामान्य ढंग से कहना अतिशय कहा जाता है। अनेकार्थक पदों से रचित एक काव्य के अनेक अर्थ किए जाने पर अर्थ–श्लेष समझना चाहिए।

उपमा

परवर्ती आचार्यो के द्वारा अधिकतर अलंकारों के मूल में उपमा की ही सत्ता स्वीकार की गई है। आलंकारित ''उपमा'' को अलंकार–वृक्ष का बीज मानते हैं क्योंकि उपमा में वह शक्ति है जो कि अनेकानेक अलंकारों को जन्म दे सकती है। अलंकार का तात्पर्य वैचित्रय है और उपमा समस्त वैचित्रय की मातृभूमि है। अप्पय दीक्षित ने उपमा का प्रस्ताव करते हुए कहा है– काव्यरूपी नाटकशाला में यह नटीरूप अकेली उपमा ही विभिनन अलंकारों के रूपों को धारण कर अपना नृत्य

दिखाती हुई सहृदयों के चित को आह्लादित करती है। राजशेखर भी उपमा की प्रशंसा करते है। दण्डी उपमेय और उपमान में जिस किसी प्रकार के सादृश्य की प्रतीति को उपमा कहते है। मम्मटाचार्य ने उपमान में भेद के साथ साधर्म्य को उपमा कहा जाता है।

''सीताचरितम्'' महाकाव्य में साम्यमूलक अलंकारों का प्रयोग अधिक हुआ है। उपमा का प्रयोग स्वतन्त्र रूप में और अन्य अलंकारों के साथ संकर और संसृष्टि रूप में भी सर्वाधिक हुआ है।

सर्वप्रथम राम और भरत के मिलाप को हिमालय और महोदधि के मिलन के समान बताते हुए बड़ी सुन्दर उपमा दी गई है कि जिस प्रकार हिमालय और महोदधि कर आर्यभूमि का निर्माण करते हैं वैसे ही भगवान राम और लोकात्तर मानव भरत मिले तो उन्होने एक उत्कृष्ट भूमिका (चरित्रादर्श) कानिर्माण किया।

परितपक्तगर्भा और अश्रुबिन्दुओं से होश में आई सीता को देखकर आश्वासन की सांस लेने वाली माताओं की दशा, फसल से भरी भूमि को देख किसान की भांति होती है।

सीता के लिए प्रयुक्त प्राकृतिक उपमान कितना सटीक बैठता है। माताओं के उपमान रूप में किसान और उसको चेतना को आश्वस्त करने वाली पकी हुई तरंगति फसल का सादृश्य, माताओं को आश्वस्त करने वाली परिपक्व गर्भावस्था से युक्त सीता का चित्र रचित करने में कितना सक्षम है।

दिव्यदृष्टि कवि को दोनों पुत्र अर्पित कर सीता शब्द और अर्थ को अर्पित करने वाली मांगलित प्रतिभा–सी प्रतीत होती हैं यहां पर दोनों पुत्रों को समर्पित करने वाली सीता की उपमा शब्द और अर्थ को अर्पित करने वाली प्रतिभा से की गई है। प्रतिभा में मांगलित विशेषण देकर कवि ने सीता की चारित्रित विशेषता को सुन्दर ढंग से संकेकित किया है।

आदिकवि के आश्रम में उपमा कृषक के खलिहान से दी गई है जो सूक्ष्म रूप से आश्रम की महत्ता को प्रकट करती है। स्नातकों से युक्त उनका आश्रम

किसान के खलिहान सा लगया करता है जो धान्य से भरा होता है। किसान का धान्य (अनाज) दूसरों के लिए होता है। सीता की तटस्थता से मिश्रित राजवंश की प्रसन्नता की ग्रीष्म से संतप्त सरोवर की प्रसन्नता के साथ दी गई उपमा दर्शनीय है।

इसी प्रकार अन्य अनेक स्थलों पर भी उपमा के सुन्दर चित्र देखे जा सकते हैं।

रूपक

जहाँ उपमान और उपमेय को एक दूसरे से नितान्त अभिन्न वर्णन किया जाये वहां रूपकालंकार माना जाता है। वनवास से लौटने के पश्चात् अपने पुत्रो और पुत्रवधू से मिलने के अवसर पर माता कौशल्या द्वारा कहे गए वचन सीता के चरित्र का चित्रण सुन्दर ढंग से करते हैं–तू (सीता) ही है सूर्यवंश की कीति पताका पर संपूर्ण मनुष्यसृष्टि के लिए वंदनीय वृष (धर्म) की मुद्रा औश्र तू ही रामायण नामक मन्दिर में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण देवप्रतिमाह है।

रूपक की इस मालिका द्वारा कवि ने अत्यन्त अल्प शब्दों में सीता के चरित्र की दृढ़ता और पवित्रता के अतिशय को अलंकार के माध्यम से व्यक्त किया है।

रावण का वध एक नाट है तो हे माता, यह जिसकी प्रतिभा से स्फुरित हुआ व द्रष्टा ऋषि और प्रतिभासम्पन्न कवि आप ही हैं। उसका प्रयोग कराने वाली सूत्रधारिणी भी आप ही हैं। हम तो हैं केवल पुतले, मूक अभिनय करने वाले।

प्रस्तुत उदाहरण में उपमेय (कैकेयी) का रावण का वध रूपी नाटक के स्त्रष्टा कवि और उस नाटक के प्रयोग को कराने वाली सूत्रधारिणी के रूप में उपमानों के साथ अभेद–कथन किया है। अतः यहां रूपक के भेद मालारूपक का चित्रण किया गया है।

राजा राम के आधे सिंहासन पर विराज रही, निमिकुल की तपस्याओं का सुफल या सूर्यवंशीय महात्माओं के पुण्यों का परिपाक, जानकी नामक आर्य– लक्ष्मी

ऐसी लगत रही थी जैसे संसार के मंगल–विधान के लिए शरीर धारण करके उपस्थित हुई उषः श्री हो।

यहाँ भी सीता के सौन्दर्य का चित्रण करते हुए कवि सुन्दर रूपक का विधान किया है कि राजा राम के सिंहासन का आसीन सीता केवल जनक की ही नहीं अपितु समस्त निमिकुल की तपस्याओं के परिणाम है और सूर्यवंश के केवल एक नहीं वरन् अनेक महात्माओं के पुण्यस्वरूप है जो आर्यलक्ष्मी सम्पूर्ण संसार के कल्याण के लिए साखात् सशरीर उपस्थित होने वाली प्रातः कालीन कान्ति ही है।

एक अन्य स्थान पर कवि नवीन कल्पना करते हुए दाम्पत्य सम्बन्ध का सुन्दर चित्र खचित किया हे कि वह (प्रिया) ही होती है जीवनरूपी चन्द्र की चन्द्रिका का और वहीं होती है संस्कृतिरूपी वसन्त की कोकिला। उसके बिना जन्म की चरितार्थता वैसे ही संभव नहीं, जैसे कल्पलता के बिना नन्दवन की सार्थकता नहीं है।

प्रस्तुत पद्य में प्रिया (उपमेय) के चन्द्रिका, कोकिला उपमान दिए गए है और कल्पलता तथा नन्दनवन के साथ जीवन औश्र प्रिया का रूपक, कवि की नवीन कल्पना शक्ति को प्रकट करता है।

मनुष्य जाति के पुरूषार्थो की पूर्ति के लिए जो ''नय'' की स्थापना की जाती है उसके लिए साम, दान, भेद और दण्ड को अपनाया जाता है। सृष्टिरूपीप्रवृत्तिधर्मा सुरभि इन्ही चार पैरों पर खड़ी होती और चला करती है।

यहां सृष्टिरूपी कामधेनू और साम, दान, भैद और दण्ड रूपी चार पैरों में अभेद स्थापित किया है। इसी संदर्भ में दिए गए अन्य उदाहरण भी दर्शनीय है।

उत्प्रेक्षा

कवियों ने किसी नयी सूझ या कल्पना का चमत्कार दिखाने के लिए उत्प्रेक्षा अलंकार का सबसे अधिक आश्रय लिया है। सादृश्य के आधार पर प्रस्तुत

वस्तु में अनेको अप्रस्तुत वस्तुओं की योजना करना कल्पना–कुशल कवियों का प्रधान उद्देश्य रहा है।

प्रकृत (उपमेय) की सम (उपमान) के साथ ऐक्य की सम्भावना को उत्प्रेक्षा कहा गया है। सीताचरितम् में अनेक स्थलों पर उत्प्रेक्षा के चित्र देखे जा सकते हैं। प्रथम सर्ग उत्प्रेक्षा की दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न है। आंखों में आंसू लेकर ओर ममता और दयारूपी दो तटों के बीच बहती वात्सल्यमयी निर्णरिणी सी लग रही माता कौशल्या पर कवि सम्भावना दर्शनीय है।

वनवास से लौट कर आने के बाद जब श्रीराम और लक्ष्मण अपने भाईयों से मिलते हैं, तब उनकी जयजयकार पर कवि की मौलिक सम्भावना देखते ही बनती है– उत्तर कौसल के निवासियों की वह नगरी (अयोध्या) उनकी जयध्वनि से उसी प्रकार सचेतन हो उठी है जैसे उद्यानभूमि पुंस्कोकिल की कूक से या साध्वी प्रेयसी वीर प्रिय के प्रेम से सचेतन हो उठती हैं। यहां उत्प्रेक्षा किसी मनोरम बन पड़ी है।

एक वैचित्रयपूर्ण उत्प्रेक्षा– उस साध्वी को वहन कर रहा श्वेत पताका उज्वल घोड़े और शुभ आस्तरणों से युक्त वह रथ उस (सती सीता) की ही शुद्धि से परिवेष्टित सा लग रहा था। प्रस्तुत उत्प्रेक्षा में उक्ति वैचित्रय से सीता की निष्कलंकता की ओर ही संकेत किया गया है।

एक अन्य अनूठी कल्पना दर्शनीय है, जिसमें कवि की नयी सूझ दिखाई देती है। जिनमें हरिणों का संचार समाप्त हो गा था और जिन्हे चन्द्रमा ने अपनी सुधा से उज्जवल कर दिया था, ऐसी वीथियों में वायु वियोगी पथिक सा घूम रहा था। यहां वायु में वियोगी पथिक की कल्पना सर्वथा नवीन है।

अर्थान्तर– न्यास

जहां साधर्म्य द्वारा अथवा वैधर्म्य द्वारा सामान्य से विशेष का अथवा विशेष्ज्ञ से सामान्य का समर्थन किया जाएस वहां अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। इसका प्रयोग वस्तुतः विविध एवं सुदीर्ध अनुभवों से सम्पन्न, ज्ञान और व्यवहार को समन्वित कर, उनके तत्त्व दर्शन तक पहुंचने वाले सूक्ष्मदर्शी कवि द्वारा ही सम्भव है।

कौशल्या की विवेक स्थिर चेतना से उद्‌गत वाणी को सुन सभी पुत्रों और सीता की गहन क्लन्ति से मुक्ति को अर्थानतरन्यास से चित्रित किया गया है। यथा– सत्पुरूषों की प्रसन्नता, प्राप्त होती है श्रम से हीं, परन्तु देती है आत्मतोष।

समाजधर्म और वैयक्तिक अस्तित्व के अन्तर्द्वन्द्व में फंसे हुए राम अन्त में वृक्षतुल्य होकर लतातुल्य प्रिय (सीता) को ही छोड़ने का निर्णय करते हैं तो इस स्थिति का निरूपण अत्यन्त सुन्दर उक्ति द्वारा किया गया हैः–

''भविन्त चेतांसि माहत्मनां सदा परार्थसंपादनसौख्यमांजि सत्।''

सीता के विषय में फैले अपवाद को सुन कर सभी सभासदों की हृदय–स्थिति को इस कथन द्वारा स्पष्ट किया है– करूणचित वाले शरीरियों के चित्त सदा ही दूसरे के दुःख –सुख में दुःखी–सुखी होने वाले हैं। यहां पर विशेष सभासदों की स्थिति का सामान्य कथन से समर्थन किया है।

गुरूजन स्वंय विपत्तियों को सहन कर भी प्रियजनों को दुःखी नहीं करना चाहते इसका पता चलता है जब सीता के दुःख से दुःखी बहिनों के द्वारा वन में साथ चलने के प्रस्ताव प रसीता उनका अनुमोदन नहीं कर पाती क्योंकि गुरूजन स्वार्थपरायण नहीं होते है।

इतना ही नहीं प्रेमीजन विपत्ति में पड़ कर भी प्रेमी का अपकार नहीं चाहता। सीता द्वारा रघुकुल की सुख–संपत्ति की वृद्धि के लिए बहिनों से घर में ही रहने का अनुरोध करने से अधिक प्रेम और क्या हो सकता है।

नारी–हृदय की वात्सालय– भावना (अपनी सन्तान के प्रति) से कौन इन्कार कर सकता है। लेकिन वह केवल अपने वात्सल्य–प्रदर्शन से ही सन्तुष्ठि को प्राप्त नहींकरती अपितु अपने बच्चे को अपने पति की गोद में देख कर ही अपने मातृभाव को चरितार्थ मानती है।

राम के बिना, सीता की अपने बच्चों को देख कर मन में उमड़ती वात्सलता और अतीव व्यथा का सुन्दर चित्रण कवि ने इस सामान्य कथन द्वारा कर दिया है

किन्तु सीता का हृदय इस व्यथा को एक क्षण से अधिक नहीं टिकने देता, क्योंकि वशीजनों में विकार पानी में आग की नाई दीर्धायु नहीं हो पाता।

एक अन्य स्थल पर ऋषि वाल्मीकि की वाक्–चातुरी की प्रशंसा करते हुए कवि ने कहा है– जो आवश्यकता से अधिक बोलता है, वह सरस्वती का अपमान करता है।

यहां ऋषि की विशेष वाणी का सामान्य कथन द्वारा समर्थन करते हुए कवि ने ऋषि की मितभाष्झिता को इंगित कर दिया है। ऋषि के साथ हुए महामुनिन्द्र वसिष्ठ के वार्तालाप का भी प्रस्तुत उक्ति द्वारा उचित निदर्शन किया गया है– जो मित न हो और सारपूर्ण न हो वह तो अपनी वाणी का विग्लापन मात्र है। यहां गुरू वसिष्ठ की वाणी की सारगर्भिता और पाण्डित्य को प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार अर्थान्तरन्यास भी इस काव्य में एक सह अलंकार के रूप में सन्निविष्ट हुआ है।

अतिशयोक्ति

जहाँ उपमान के द्वारा उपमेय का निगरण अर्थात् अन्तर्भाव करके जो अध्यवसान किया जाता है वह अतिशयोक्ति अलंकार कहलाता है। प्रस्तुत काव्य में अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग भी यथासम्भव हुआ है। सीता से सम्बन्धित अपवाद को सुनकर उसे त्यागने और अपने कर्त्तव्य पालन के बीच दुविधा की स्थिति में पड़े हुए राम के मनोभाव का चित्रण इसके माध्यम से ही किया गया है– मुझे क्या करना चाहिए, मेरे समक्ष इस समय वैपरीत्य से कटु स्थिति उपस्थित है। क्या करूं? अपनी चेतना को छोडू या जनता को, आग में कुदूं या समुद्र में।

यहां पर स्पष्ट है कि चेतना (सीता) और जनता का आग और समुद्र से भेद होने पर भी अभेद का ही वर्णन किया गया है।

अतिशयोक्ति का एक भेद कहा गया है कि यदि शब्द से अथवा चेत शब्द के द्वारा कल्पना अर्थात् असम्बन्ध में सम्भावना की जाती है। सीता के वनवास के

लिए जाने पर राम की दर्शा को चित्रित करते हुए दाम्पत्य सम्बन्ध का सुन्दर निरूपण करने में भी आतिशयोक्ति की ही रूपरेखा दिखाई देती है– सत्य यह है कि दाम्पत्य कामलिनी हे तो उसमें कमल होती हे प्रिया और यदि वह अग्नि की शिखा है तो उसमें ऊष्मा का स्थान प्रिया ही लेती है। यहां पर यदि शब्द के अर्थ–सामर्थ्य से दाम्पत्य के साथ कमलिनी और अग्नि– शिखा के आरोपित सम्बन्ध की सम्भावना स्पष्ट दिखाई देती है।

वनवास के लिए जाती सीता के मलीन मुख को देख कर उसकी बहिनों द्वारा उसके प्रसन्न मन की कामना करते हुए कहा गया यह कथन दर्शनीय है– यह सुग्गा मणि की कटोरी में रखे अनार के दाने उठाने लग जाए और कलहंस का छौना ही लाल कमल की पंखुड़ी पर पड़े मूंग चुगने लगे। यहां पार्श्ववर्ती किसी शुक से नासिका का, मणिपात्र से अधर का और दाडि (अनार) से दांतों की द्युति का अध्यवसाय किया गया है। इसी प्रकार कमलदल से अधर का, विद्रुम से दन्तस्मित का अध्यवसाय करके सुन्दर अतिश्योक्ति को प्रस्तुत किया गया है। एक अन्य स्थल पर–वह उत्तम शिल्प प्रशसापत्र क्यों न जहां शिला का काम किया सूर्यकान्तमणि ने वैसे कवि शिल्पी और परीक्षक ठहरे गुरू वसिष्ठ।

यहाँ उत्तम शिल्प से लव और कुश तथा सूर्यकान्तमणि से सूर्यवंश का अध्यवसाय दिखाया गया है और ऋषि वाल्मीकि उत्त शिल्पी कहे गए हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत उदाहरण में अतिशयोक्ति का सैन्दर्य देखते ही बनता है।

अपह्नुति

जहाँ प्रकृत का निषध करके अर्थात् उपमेय को असत्य प्रतिपादित करके अन्य अर्थात् अप्रकृत–उपमान की सिद्धी की जाती है, वहाँ अपह्नुति अलंकार होता है।

रात्रि के सौंदर्य–वर्णन में कवि ने चन्द्रिका का बड़ा मनोरम वर्णन किया हैकि कविता धेनु जैसी रात ने चन्द्रमा का बछड़ा पा कर उज्जवल किरणें के बहाने अपनी दुग्धधाराओं से भुवनघट को पूर्ण कर दिया। यहां पर उपमेय उज्जवल

चन्द्रकिरणों से युक्त आकाश का निषेद करके दुग्धधाराओं से युक्त घट (घड़ा) की स्थापना की गई है।

दीपक

प्रकृत तथा अप्रकृत के क्रियादिरूप धर्मो का एक ही बार ग्रहण किया जाए अर्थात् जहां क्रिदिरूप धर्म का अनेक कारकों के साथ सम्बन्ध हो वहां दीपक अलंकार होता है। कहीं बहुत–सी क्रियाओं में एक ही कारक का ग्रहण किया जाता है।

राम के राज्य–भार संभालने के बाद स्थिति का वर्णन करते हुए कहा गया है– राम अपना अधिज्य धनुष लेकर भूमि की वैसे ही रक्षा करा रहे हैं, जैसे देवराज इन्द्र अपना वज्र लेकर द्युलोक की रक्षा करते हैं। राम इन्द्र को यज्ञा हवि प्रदान करते हैं और राम को मेघों की वृष्टि। इस प्रकार दोनों की श्रीवृद्धि होती जा रही है। यहां राम (प्रकृत) तथा इन्द्र (अप्रकृत) के रक्षा करने रूप क्रियाधर्म का एक ही बार ग्रहण किया गया है।

दृष्टान्त

उपमान, उपमेय,उनके विशेषण और साधारण धर्म का (भिन्न होते हुए भी औपम्य के प्रतिपादनार्थ उपमान– वाक्य तथा उपमेय– वाक्य में पृथगुपादानरूप) बिम्प्रति– बिम्बभाव होने पर दृष्टान्तलंकार होता है।

सीता के विषय में फैले अपवाद को सुन कर राम माताएं विलाप करती हुई अपना अत्यधिक शोक प्रकट करती हैं तथा सीता के निष्कलंकता का और जनता के प्रति राम का कर्त्तव्यभाव बताती हैं, जहां पर दृष्टान्त का सुन्दर निदर्शन दूषित ठहराएं। किन्तु भगवान् अग्निदेव यदि यजमान को ही जलाने दौड़े तो क्या किया जा सकता है। यहां पर जनता और अग्निदेव का तथा स्वामी और यजमान का बिम्बप्रतिबिम्ब भाव है।

निदर्शना

जहाँ वस्तु का असम्भव या अनुपद्यमान सम्बनघ उपमा का परिकल्पक होता है। अर्थात् उपमा में पर्यवसित होता है वह निदर्शना अलंका होता है। ऋषि वाल्मिकी के आश्रम में संध्या– समय का वर्णन करने में निदर्शना का सुन्दर प्रयोग हुआ है। यथा तेजस्वी व्यक्ति भी यदि संघहीन हो जाए तो उस पर भी शत्रु का का आक्रमण हुए बिना नहीं रहता यही कहता–कहता दीपक अपने सिर पर अन्धकार धारण कर रहा था सूर्य के डूब जाने पर। यहां पर तेजस्वी व्यक्ति और दीपक का कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता है। सूर्य के डूब जाने पर दीपक का अन्धकार धारण करना इस वाक्य का संघहीन हो जाने पर तेजस्व व्यक्ति पर आक्रमण होने, इस उपमा में पर्यवसान होता है। अतः यहाँ निदर्शना अलंकार का समुचित प्रयोग है। अन्य स्थल पर सीता के चरणकमरूपी तीर्थ में प्रणाम के लिए झुके उस चन्द्रकेतु की शोभा कन्याकुमारी में अपनी मातृभूमि के लिए प्रणत दो में ही देखी जा सकती है, एक महोदधि में और दूसरे स्वामी विवेकानन्द में यहां पर प्रणाम के लिए झुके चन्द्रकेतु की शोभा का कन्याकुमारी में मातृभूमि के लिए प्रणत महोदधि और स्वामी विवेकानन्द की शोभा, इस उपमा में पर्यवसान हो जाता है। इसी प्रकार चन्द्रकेतु के ताम्रवर्ण के कुन्तलों के बीच माता (सीता) के उज्जवल पादपद्म की शोभा शोणनद के तरूणजल से घिर कर और सुन्दर लग रहे, गंगाजल की शोभा में पर्यवसित हो जाने से निदर्शना का सुन्दर चित्रण हुआ है।

पर्यायोक्त

वाच्य– वाचक भाव के बिना व्यंजनाख्य व्यापार के द्वारा प्रकारान्तर से वाच्यार्थ का कथन किया जाता है वह पर्यायोक्त अलंकार कहलाता है।

रावण का वध करके लौटे राम का वर्णन करते हुए ग्रन्थ का आरंभ ही सुन्दर पर्यायोक्त के द्वारा हुआ है– रावण के सिरों से अष्टमूर्ति भगवान् शिव की अन्यतम मूर्ति पृथ्वी को और दोनों अनुजों (लक्ष्मण तथा भरत) के साथ अपनी नगरी अयोध्या पहुंचे। प्रस्तुत उदाहरण में पृथ्वी रावण के सिरों से सुशोभित हो रही थी और सीता राम को प्राप्त हो गई, यह व्यंग्य अर्थ कहा जा रहा है। इसलिए यहां जो

शब्द के द्वारा कहा जा रहा है, वही व्यंग्य है किन्तु अन्तर यह है कि जिस रूप में व्यंग्य है उस रूप में नहीं कहा जा रहा है क्योंकि व्यंग्य अर्थ यह है कि रावण समाप्त हो गया और सीता मुक्त हो गई परन्तु वाच्यार्थ का रूप उससे भिन्न है।

वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में सीता शान्त भाव और वात्सल्य को देख कर मुनियों और गृहस्थों की स्थिति का वर्णन भी पर्यायोक्त द्वारा ही किया गया है– माता वह निर्वेद और वह वात्सल्य देख कर मुनित्व ही अधीर हो उठा और सद्ग्रहित्व ही आवश्वासन की लम्बी सांस लेने लगा। यहां पर मुनित्व सीता निर्वेद भाव को देख कर व्याकुल हो उठा और सद्ग्रहित्व ही आश्वासन की लम्बी सांस लेने लगा। यहां पर मुनित्व सीता निर्वेद भाव को देख कर व्याकुल हो उठा और गृहित्व वात्सल्यभाव को देखकर आश्वस्त हो गया यह व्यंग्य अर्थ भ्झी वाच्यरूप से कहा जा रहा है और व्यंग्य है। अन्तर इतना है कि जिस रूप में व्यंग्य है, उस में नही कहा जा रहा है अर्थात् व्यंग्य से भिन्न है क्योंकि व्यंग्य अर्थ यह है कि मुनियों का निर्वेद भाव भी क्षीण पड़ने लगा और गृहस्थी तो अत्यधिक वत्सलता को देखकर आश्वस्त हो उठा क्योंकि वात्सल्य और शान्ति दोनों परस्पर विरोधी भाव हैं। यह व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ से भिन्न है।

प्रतिवस्तूपमा

जहाँ एक ही साधारणधर्म को दो वाक्यों में दो बार भिन्न शब्दों से कहा जाए वह प्रतिवस्तूपमा अलंकार होता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में सीता की निन्दा सुनकर श्रीराम स्वंय को ही अपराधी मानते है कि उनकी ही त्रुटि है जो उनकी जनता शिक्षित नहीं है। बच्चा यदि विष खाता है तो यह दोष पिता का ही होता है। और रो यदि बढ़ता है तो उसमें निन्द वैद्य की ही होती है। यहां पर प्रजा का दोषयक्त होना स्वामी की ही त्रुटि के कारण है'' यह साधारण धर्म भिन्न–भिन्न शब्दों से निर्दिष्ट किया है। जैसे यदि कोई बच्चा विष खा ले तो इसमें पिता का दोष ही माना जाता है और यदि रोगी का रोग बढ़ जाए तो वैद्य का दोष माना जाता है, इसी प्रकार राम की प्रजा शिक्षित नहीं है तो इसमें उनका (स्वामी का ही) दोष माना

जाता है, इसी प्रकार राम की प्रजा शिक्षित नहीं है तो इसमें उनका (स्वामी का ही) दोष माना जायेगा। इस प्रकार यहाँ साधारण धर्म उपमेय वाक्य तथा उपमान वाक्य में भिन्न शब्दों से गृही किया गया है, अतः यहाँ प्रतिवस्तूपमा है। एक अन्य स्थल पर माता कौशल्या का सीता के पवित्र आचरण के प्रति दृढ़ विश्वास हे जिसे वे इस प्रकार प्रकट करती हैं– कहां यह भूतधात्री पृथिवी की बेटी और मुझ जैसी की बहू और कहां वह उल्टी बात। एकान्त में लता विष नहीं अपनाती, न तो चन्द्रिका अन्धकार, न गंगा कालुष्य को। यहां पर दृढ़ चरित्र वाले व्यक्ति अपने चरित्र को कलंकित नही करते यह साधारण धर्म लता के एकान्त में विष न अपनाने वाक्यार्थ और सीता जैसी बहू के लिए वैसी विपरीत बात (लोकापवाद) इस उपमेय वाक्यार्थ में भिन्न–भिन्न रूप से कहा गया है जो प्रतिवस्तूपमा का सुन्दर निदर्शन है।

विषम

कहीं सम्बन्धियों के अति वैधर्म्य के कारण जो उनका सम्बन्ध न बनता प्रतीत हो वह एक प्रकार का विषमालंकार होता है। सीता की दशा देख कर उर्मिला द्वारा कही गई उक्ति दर्शनीय है– कहाँ तो मेरी ममताधारी बढ़ी दीदी कहां वनान्त और कहां यह तेरी दशा। खिले पुष्प से सुशोभित कमलिनी को आरे से टुकड़े–टुकड़े करना उचित हो तो कहो।

यहां ममताभरी बहन (सीता) और उसकी अवस्था तथा वनान्त दोनों के अत्यन्त विलक्षण होने से उनका सम्बन्ध अनुपन्न– सा प्रतीत हो रहा है, इसलिए यहां विषमालंकार हैं श्लोक में क्व–शब्द के प्रयोग से सीता की दयनीयावस्था तथा घने जंगल के सम्बन्ध की अनुपद्यमानता व्यंग्य है।

व्यतिरेक

उपमान से अन्य अर्थात् उपमेय का जो आधिक्य का वर्णन है वह ही व्यतिरेक अलंकार होता है। श्रीराम के यशगान का चित्रण व्यतिरेक के माध्यम से किया गया हैः– नृलोकपालक, हंस केवल शरत्काल में ही शोभित होते हैं, सूर्य दिन के ही समय और चन्द्र डूबने पर ही किन्तु आपको ओज से प्रदीप्त और पवित्र यश

सर्वदा शोभित होता रहता है। यहां पर हंसो का केवल शरत्काल में शाभित होना सूर्य का केवल दिन में और चन्द्रमा का केवल रात में सुशोभित होना, इन उपमानों की अपेक्षा उपमेय राम के यश का सदैव शोभायमान होना रूप अधिक्य का वर्णन है अतः यहां व्यतिरेकालंकार है।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि प्रस्तुत काव्य में अलंकारों का प्रयोग अत्यन्त सहज रूप में किया गया है। वसतु की रमणीयता ने, भाव की तीव्रता ने अथवा दर्शन की गूढ़ विचारभूमि ने जहां कहीं उपमानों को प्रस्तुत कर दिया है, कवि ने वही उनका सुचारू प्रयोग किया हे। परिश्रम साध्य और कभी–कभी अटपटे लगने वाले तथा काव्य विषय को स्पष्ट बनाने के स्थान पर और जटिल, दुरूह बना देने वाले अलंकारों का प्रयोग कवि ने नहीं कियाहै

छन्द विवेचन

गतरहित जीवन असम्भव है। सांसरिक प्राणी को गतिशील बनाने के महत्तवपूर्ण और मूर्त्त साधन है उसके चरणद्वय। इसी प्रकार काव्य पुरूष की गति अवरूद्ध न हो उसमें प्रवाह हो– इसके लिए कवि द्वारा छन्द का अवलम्बन लिया जाता है। छन्दों की महत्ता के कारण महर्षि पाणिनि ने छन्दों को वेदों का चरण कहा है।

छन्द शब्द ''छन्द'' धातु से असुन प्रत्यय द्वारा निष्पन्न हुआ है, जिसका तात्पर्य ऐसे श्लोक से है जो श्रोता को प्रसन्न कर सके। श्लोकों को चरणों, वर्णों ओर मात्राओं के आकर्षण बन्धन में निबद्ध किया जाता हे तो उनमें प्रवाह, सौन्दर्य और गेयता आ जाती है। फलस्वरूप पाठक या श्रोता ऐसे श्लोकों को पढ़ या सुनकर मधुर संगीत सुनने जैसा आनन्द का अनुभव करता है।

काव्य की पद्यात्मक विद्या की रचना तो पूर्णतया छन्दोबद्ध श्लोकों में की जाती है। अतः इस विद्या में छन्दो का महत्व अधिक है। गद्यात्मक विद्या में छन्दों का इतना अधिक महत्त्व तो नहीं होता किन्तु गद्य कवि भी अपने काव्यों में यत्र–तत्र छन्दोबद्ध श्लोकों का प्रयोग करके छन्दों का महत्त्व प्रकट करते ही हैं।

नाटकों में भी जब कोई पात्र अपने कथन की पुष्टि करना चाहता है, या किसी भावविशेष का अभिनय करता है, तब शीघ्र ही छन्दोबद्ध श्लोक का प्रयोग करता है। चम्पू काव्यों में तो जितना महत्त्व गद्य का है उतना ही पद्य का। अतः उनमें भी छन्दों की महिला अक्षुण्ण है। काव्य में दो प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया जाता है। मात्रिक और वर्णिक मात्रिक छन्दों में मात्राओं की और वर्णिक छन्दों में वर्णों की व्यवस्था से श्लोक निबद्ध किया जाता है। सुकवि यह भी ध्यान में रखते हैं कि कौन से छन्द किस रस के वर्णन में, कौन से प्रकृति–वर्णन में और कौन से भक्तिभाव प्रकट करने में सहायक हो सकते हे। स्पष्ट है कि काव्य को अह्लादक एवं प्रणवान् बनाने में छन्दों को प्रयोग एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अभिनीत करता है। अतः कोर्ठ भी काव्यशास्त्री और काव्यप्रणेता कलापक्ष्ज्ञ के इस अंग की उपेक्षा नहीं कर सकता है।

सीताचरितम् महाकाव्य में अन्य गुणों की भांति छन्दों का भी साभिप्रायः प्रयोग हुआ है। जिस प्रकार छिद्रादि दोषों से रहित सूत्र गुम्फित एवं वर्तुल मुक्ताहार का निवेश उचित स्थान पर ही शोभित होता है, उसी प्रकार दोषरहित गुणयुक्त एवं सुन्दर छन्दो का भी प्रयोग विषयानुरूप ही सुशोभित होता है। द्विवेदी जी ने प्रस्तुत काव्य में निम्नलिखित छन्दों का सुन्दर प्रयोग किया है–

वंशस्थ

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः एक जगण, एक तगण पुनः एक जगण तथा रगण कुल बारह अक्षर होते हैं, ऐसे छन्द को वंशस्थ के नाम से जाना जाता है।

उपर्युक्त सामान्य प्रयोग के साथ यदि कवि निम्नलिखित योजनाभी कर देता है तो छन्द अपूर्व मनोहारी बन जाता है। यथा दो–दो पद आपस में समास के द्वारा नहीं, अपितु सन्धि के द्वारा मिले हों और सन्धि भी विसर्ग स्थानीय ही रहे तो अत्युत्तम है, यदि सन्धि की सम्भावना न हो तो विसर्ग स्पष्ट ज्ञात होता रहे।

प्रस्तुत काव्य का आरम्भ ही वंशस्थ छन्द से हुआ है जिसमें मंगलाचरण किया गया है–

विभूष्य पौलस्त्यशिरोभिरैश्वं वपूर्भुव, तत्सुतया तथा निजम्।

वनव्रतान्ते भगवान् रघूद्वहः सहानुजाभ्यां नगरं स्वमीयिवान्।।

यहाँ पर दो–दो पद सन्धि के द्वारा मिले हुए हैं और विशेषः सन्धि विसर्ग स्थानीय ही है जिससे वंशस्थ की शोभा द्विगुणित हो उठी है।

द्रुतविलम्बित

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः एक नगण, दो मगण एक रगण कुल बारह अक्षर हों वह छन्द द्रुतविलम्बित के नाम से पुकारा जाता हैं।

पादों के प्रारम्भ में द्रुत एवं अन्त में विलम्बित गति के प्रयोग से तथा सभी पदों के रूचिर सन्निवेश से यह छन्द अधिक निखार पाता है।

अपनी पुत्री के प्रति समस्त जनता को प्रणाम–युक्त देख कर जनता पर क्रोध न करने वाले जनक की दशा का वर्णन द्रुतविलम्बित छन्द के द्वारा ही किया गया है–

स जनको जनकोपपराड मुख दुहितरं हितरंजित भूतलाम्।

जन–मनो नमनोदितपुण्यतामृतमथैक्ष्य बभूव कृतक्रियः।।

सीता के समभाव का चित्रण भी इसी छन्द के माध्यम से किया गया है।

कुश–लव– प्रसवा तु निशम्य ता जनगिरो निजकीर्तिपरा अपि।

समतया मतया विदुषां दधेश्रुतिमतीति मतीन्दुकलां शुभाम।

प्रस्तुत उदाहरणों में पादों के आरम्भ में द्रुत एवं अन्त में विलम्बित गति का प्रयोग किया गया है।

रथोद्धता

जिसके प्रत्येक चरण में क्रमशः एक रगण,एग नगण, एक रगण तथा अंत में एक लघु और एक गुरू, इस तरह कुल ग्यारह वर्ण होते है। उसे रथाद्धता छन्द कहते हैं।

भाषणपटु सीता अपने पटु भाषण से सबका हृदय आकृष्ट कर लेती है। उनके विचारों को कवि ने रथोद्धता छन्द के द्वारा ही प्रस्तुत किया है–

सा ब्रवीत्– प्रतिहतेन चक्षुषा सर्वथा स्वतमसाडत्र मानुषः।

सीक्षते परपरिस्थितिं परं, वीक्षने न पर–धर्म दर्शने।

प्रहर्षिणी

जिसके एक चरण में क्रम से मगण, नगण, जगण, रगण और एक गुरू वर्ण होते है, उसे प्रहर्षिणी छन्द कहते हैं। इसमें तीसरे और दसवें वर्ण पर यति करनी चाहिए।

लक्ष्मण द्वारा सीता कोवन में छोड़ कर लौटने के पश्चात् राम की दशा का वर्णन प्रहर्षिणी छन्द के माध्यम से ही किया गया है–

सौमित्री रघुकुलकेतुपटिां तामुत्सृज्य स्थितमिव दण्डमात्रमेकम्।

रामाख्यं शुभभवदातमार्यधर्ममर्यादापरिघमियाय काननान्तात्।।

वन पहुँचने के पश्चात् सीता कैसी दिखाई देती है, इसका चित्रण भी इसी छन्द के द्वारा किया गया है।

वसन्ततिलका

जिसके प्रत्येक चरण में क्रमशः एक तगण, एक भगण, दो जगण तथा अन्त में दो गुरू वर्ण हों, चौदह अक्षर वाले ऐसे छन्द को वसन्ततिलका कहा जाता है।

प्रथम द्वितीय पाद के अन्तिम वर्णों से पूर्ण वर्ण यदि आकार स्वर से युक्त हो और ओज गुण व्यंजक वर्णों का विन्यास किया गया हो तो वसन्ततिलका छन्द की शोभा अधिक बढ़ जाती है।

विद्वान व्यक्तियों की समदर्शिता का सुन्दर चित्रण वसन्ततिलका के माध्यम से किया गया है–

व्युत्थाय सा च तनया जनकस्य शिष्टा

चारं व्यपेक्ष्य निखिलानपि तान् ननाम।

मित्रे रिपौ जरति बालजने च लब्ध

लाभा भवन्ति विबुधा समदर्शिनों यत्।।

राम और सीता को देख कर प्रसन्न हुई कौशल्या के हृदय में पति (दशरथ) का स्मरण हो उठता है जिसका हृदयग्राही चित्रण भी इस छन्द के द्वारा हुआ है–

तुष्टापि पुत्रमभिवीक्ष्य मुखं च वध्वाः

संबन्धिसत्रधिमवेक्ष्य परन्तु माता।

भत्रें तदाश्रुकलुषाडडस, कुटुम्बिनीनां

योडयं कुटुम्बरस एष हि नाकलाभ।।

यहाँ प्रथम उदाहरण में द्वितीय चरण के अन्तिम वर्ण से पूर्व वर्ण आकर से युक्त है। मालिनी

जिस छन्द में क्रमशः दो नगण,एक मगण पुनः दो यगण हों तो वह मालिनी छन्द कहलाता है। राम के राजयाभिषेक का चित्रण मालिनी छन्द के द्वारा किया गया है–

रघुपतिरिति कृत्यरात्मनस्त्यागशुद्धै

र्जनमनसि यथार्थ लब्धवानास्पदं यत्।

अजनि स खलु सयस्तस्य राज्याभिषेको

य इह विधिभिराषैंलौंकिकं मड्गलं तत्।।

शिखरिणी

जिसके प्रत्येक चरण में क्रमशः एक यगण, एक मगण, एक नगण, एक सगण हो तथा एक भगण और अन्त में एक लघु और एक गुरू वर्ण हो तो छठे और ग्यारवें अक्षर पर विराम होन से सत्रह अक्षर वाले छन्द को शिखरिणी नाम से जाना जाता है। किसी विषय का सीमा निर्धारण करते समय शिखरिणी छन्द का प्रयोग करना चाहिए।

वाल्मीकि आश्रम में सीता के समाधि में स्थिर हो जाने का वर्णन शिखरिणी छन्द में ही हुआ है–

स्थितावस्यामेषा स्थितिमलभतोत्थानरहितां
यतो युक्तों योगी व्युपरतसमाधिच्युततिरभूत्।
अगात् साधारण्यं तदनु तिसृषु व्यक्तिषु परं,
नरो नानी क्लीबं क्व नु दधाति भेदं रसलये।।

सीता के स्थूल शरीर से मृत्युजयं भूमिका की स्थिति में पहुंचा जाने पर उनमें ही रवि और निमि वंशों के यश की, युग–युग के लिए भारतभूमि की और महामुनियों के श्रुति– महान् मार्ग की प्रतिष्ठा का निर्धारण शिखरिणी छन्द के द्वारा किया गया है–

प्रतिष्ठेयं जाता निमि–रवि–महावंशयशसां
प्रतिष्ठेय जाता युगयुगकृते भारत– भुवः।
प्रतिष्ठेयं जाता श्रुतिमहति मार्गे कृताधियां
यदेषा देहेन सिथतिमधित मृत्युंजय भुवः।।

मन्दाक्रान्ता

जिसके प्रत्येक चरण में क्रमशः एक मगण, एक भगण, एक नगन, दो तगण और अन्त में दो गुरू वर्ण हों तथा हर चौथे, छठे और सातवें अक्षर पर विराम हो तो सत्रह अक्षर वाले ऐसे छन्द को मन्दाक्रान्ता के नाम से जाना जाता है। प्रत्येक

पाद के आदिम चार वर्णों की गति मन्द रहे तथा उसके बाद के छः वर्ग अत्यन्त तरल रहें तो मन्दाक्रान्ता की शोभा द्विगुणित हो उठती है।

प्रस्तुत महाकाव्य में मन्दाक्रान्ता का प्रयोग दशम सर्ग के अंत में हुआ है, जब सीता के समाधि लेने पर उनके पुत्रों को सांत्वना देकर मुनि माता की कुटिया पर पहुंचते हैं–

सीता तस्मिन् स्वपिति पुनरप्यस्य विश्वास्थ धर्म–

ग्लानि–ग्लान्यै श्रयितुमसकृद् देहबन्धं समेव।

इत्येवं सा मुनिजनसमित् पुत्रकान् सान्त्वयन्ती

त्यक्त्वा सास्त्रं पुनरपि सुमं प्राप्त तस्याः कुटीरम्।।

ऋषि वाल्मीकि की आज्ञा शिरोधार्य करके सीता का उनके साथ जाने का वर्ण कवि ने अत्यन्त सुन्दर ढंग से मन्दाक्रान्ता छन्द के द्वारा ही किया है–

आज्ञामेतां जनकतनयाप्यादधानाशु मूर्ध्नि

वन्यद्वन्द्वैर्विधृततनया जाह्नवीं तां प्रणम्य।

सिक्ते सूरेस्तरूणकरूणैः पावनैर्दृष्टिपातै–

र्मार्गे स्वीयं चरणकमलं दातुमेषा प्रवृत्ता।

यहाँ पर प्रत्येक चरण के आदिम चार वर्णों की मन्दता और बाद के छः वर्णो की तरलता से मन्दाक्रान्ता अत्यन्त कमनीय हो गया है।

पृथ्वी

जिसके प्रत्येक चरण में क्रम से एक जगण, एक सगण, बाद में फिर जगण और एक सगण तथा अंत में एक यगण के बाद एक लधु हो आठवें और वें अक्षर पर विराह हो तो सत्रह अक्षर वाले ऐस छन्द को वृत्तमर्मज्ञ लोग पृथ्वी के नाम से जानते है। असमस्त और अलग अलग पदों के प्रयोग से पृथ्वीं छन्द विस्तृत एवं

विशाल प्रतीत होता है। अतः इस प्रकार का प्रयोग उसके सौन्दर्य को और भी अधिक निखार देता है।

सीता को निष्कलंक होते हुए भी त्याग दिए जाने का वर्णकरने में पृथ्वी छन्द का प्रयोग हुआ है–

अथ श्रियमिवोल्वणा विपदपामिव स्वच्छता–

मकालपवनः, कुहूर्विधुकलामिवानाविलाम्।

विदेहतनयां महामुनि तपः प्रसूतां शुभां

विशुद्धमिव मानसीं तिरयदाः कठोरं जगत्।।

पुष्पिताग्रा

जिस छन्द के प्रथम तथा तृतीय चरण में दो नगण तथा एक रगण के अनन्तर यगण हो तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण मे ंनगण, जगण, रगण तथा एक गुरू हो तो पुष्पिताग्रा नाम छन्द कहलाता है।

सीता का परित्याग करके अपने राजधर्म का पालन निश्चलता से करने वाले राम का चित्रण इसी छन्द के द्वार हुआ है–

निज–नरपति– धर्म– रक्षणायां हिमगिरि– निश्चलतां वहन् निराशः।

धृतवपुरिव कर्मयोग एष क्षपित– ममत्वतया तदान्वभावि।

वन में अपनी स्थिति पर विचार करके सीता के हृदय में उठने वाले भावों का चित्रण भी पुष्पिताग्रा छन्द में ही हुआ है।

सुन्दरी

जिसके प्रथम तथा तृतीय पाद में दो सगण, एक जगण, और एक गुरू हो तथा द्वितीय और चतुर्थ पाद में सगण, भगण, रगण तथा लघु और एक गुरू हो तो वह सुन्दरी नामक छन्द होता है।

सीता को वन में पहुंचने के लिए राम के आदेश से विचलित होते हुए लक्ष्मण के हृदय की दशा का चित्रण सुन्दरी छन्द के द्वारा बड़े ही सहज ढंग से किया गया है–

तनयां जनकस्य लक्ष्मणों भुवमिक्ष्वाकुकुलस्य सन्ततेः।

वदधीत वनेचरीं कथं कथमार्यस्य वचश्व लड्घयेत्।।

सीता के परित्याग से दुःखी चित्त वाली उनकी बहिनों की व्यथा भी इसी छन्द में चित्रित की गई है–

समजेषु निरर्गलेष्वापि श्रयते निर्धृणता न तां प्रथाम।

श्रयते मनुजेषु यां, खगाः, किमु नो नीडकृतः प्रजाकृते।।

उपजाति

उपजाति कोई स्वतन्त्र छन्द नहीं है यह इन्द्रवज्रा ओर उपेन्द्रवज्रा का संकर मा? है जिसमें इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा दोनों के चरण प्रयुक्त हो उसें उपजाति छन्द कहते है।

भरत लक्ष्मण सहित गुरू वसिष्ठ और राम की सभी माताएं ऋषि के आश्रम में पहुंचती है तो बीच राम कैसे दिखाई देते हैं इसका वण्रन उपजाति छन्द में ही हुआ है–

त्रिभिर्मुनीन्द्रैस्तिसृभिश्च सूभिर्वृतो बभात्रे पुरूषोत्तमोडत्र।

यथा त्रिवेण्या सहितः प्रयागस्त्रिभिः समुद्रैश्च यथेष देशः।।

आश्रम में उपस्थित सभाजनों के समक्ष किया गया प्रश्न उपजाति के माध्यम से कितना हृदयग्राही बन पड़ा है–

श्यामायते यन्न कृतेडपि दाहे तदेव हेमात्र निगद्यते चेत्।

रक्षः कपीन्द्रत्रिदिवौकसां किं साध्यक्षमासीदनले न शुद्धा।।

महाकाव्य के लक्षण में छन्द के विषय में कहा गया है कि प्रत्येक सर्ग किसी एक छन्द में बद्ध होना चाहिए। किसी–किसी महाकाव्य में नानावृत्तउें से बद्ध पद्यां से भी सर्ग–रचना की जा सकती है। उपर्युक्त छन्द विवेचन से स्पष्ट होता है कि सीताचरितम महाकाव्य में प्रत्येक सर्ग की रचना एक छन्द में बद्ध न होकर नाना छन्दों से युक्त पद्यों से की गई है।

गुण

गुण शब्द का तात्पर्य है बढ़ाने वाला। लौकिक जागत् में गुणवान व्यक्ति के शौर्य, अदार्य, सरलता और धैर्य आदि गुणों के समान साहित्य–जगत् में माधुर्य, ओज और प्रसाद ये तीन गुण सगुण काव्य में पाए जाते हैं। प्रायः देखा जाता है कि समाज में जिस व्यक्ति के पास जितने अधिक गुण होते हैं, उसें उतनी ही अधिक मानवता होती है। ऐसे व्यक्ति की प्रतिष्ठा भी बहुत होती है। इसी प्रकार साहित्य जगत् में जिस काव्य में माधुर्यादि गुण अधिक मात्रा में प्रयुक्त होते हैं, उस काव्य में रसाभिव्यंजना भी उसी मात्र में अधिक होती है। और वहीं काव्य साहित्य जगत् में प्रतिष्ठा भी अधिक प्राप्त करता है। अतः यदि औदार्य, शौर्यादि गुण मानवता के द्योतक है तो माधुर्यादि गुण रसाभिव्यंजना होगी। स्पष्ट है कि व्यक्ति की प्रतिष्ठा को बढ़ाने वाली शूरता, उदारता आदि के समान ही काव्य की आत्मा रस की प्रतिष्ठा में वृद्धि करने वाली मधुरता आदि विशेषताओं को ही गुण कहा जाता है।

महाकाव्य के लक्षण देते हुए आचार्यों ने गुणों का पृथक से उल्लेख नहीं किया है तथापि अंकी के साथ अंगो की सत्ता स्वतः ग्राहा हो जाती है अतः उसकी विशेष आवश्यकता भी नहीं है। गुणों के लक्षण देते हुए आचार्य मम्मट ने कहा है–जो आत्मा के गुण शौर्य आदि की भांति काव्य के अंगी रूप रस के उत्कर्श के हेतु हैं वे नित्य स्थिति वाले गुण हैजिस प्रकार शैर्य आदि सत्त्व अर्थात् अन्तः करण के ही धर्म हैं स्थूल शरीर के नहीं, उसी प्रकार माधुर्यादि भ्झी रस के ही धर्म हैं, वर्णो के नहीं किन्तु समुचित वर्णों के द्वारा ही वे व्यंजित होते हैं। रस के उत्कर्षाधायक इस तत्त्व के भेदों के विषय में विभिन्न मान्यताएं प्रचलित हैं किन्तु

मान्यता केवल तीन गुणों को ही प्राप्त हुई है और वे तीन गुण है माधुर्य, ओज और प्रसाद इनमें ही वामनोक्त दस गुणों का समाहार करने से ये ही तीन गुण स्वीकरणीय हैं।

जिस प्रकार पूज्य ऋषिजन पुरूष को गुणों को ग्रहण करने और दोषों से बचने का उपदेश देते हैं, उसी प्रकार साहित्यशास्त्री भी अच्छे कवि को यह उपदेश देतें हैं कि यथा सम्भव अपने काव्य में माधुर्यादि गुणों का आधान करें और दुष्क्रमत्वादि दोषों से बचें।

माधुर्य

श्रृंगार में द्रुति की कारणभूत आह्लादकता ही माधुर्य है। सम्भोग श्रृंगार में द्वेषादि जन्य कठिनता, क्रोधादिजन्य दीप्तत्व, विस्मय हासादि जन्य–विक्षेपों से अस्पृष्ट चित्त का अनुभव करते हुए जो द्रुति नाम की लक्षणावस्था है,उसके कारणभूत सम्भोग श्रृंगार,करूण, विप्रलमा श्रृंगार, शान्त से अनुगत जो विशिष्ट आह्लादकत्व है, वह माधुर्य है।

उत्तरोत्तर माधुर्य गुण की स्थिति की करूण विप्रलम्भ और शान्त में अधिक द्रुति होने के कारण अधिक हो जाती है।

सीताचरितम् महाकाव्य में करूण और शान्तरस की प्रधानता होने के कारण अधिकांशतः काव्य माधुर्य गुण से ओत–प्रोत है।सीता के वन की ओर प्रस्थान करने से पूर्ण श्रीराम के चरणों में अन्तिम प्रणाम करने में सीता के हृदय जो आर्द्रता है उसमें माधुर्य की झलक दिखाई देती है–

पश्चिम प्रणतिरंड्घ्रितीर्थयोर्नाथ तेडद्य मयका विधीयते।

मातरश्चरणरेणुरद्य वः स्वाचलेडत्र मयका नीधियते।।

रघुवंशियों की चेतना सी सीता के वन को चले जाने पर राम के हृदय की द्रुति में भी माधुर्य का सुन्दर चित्रण किया है–

सैव जीवनसुधांशुचन्द्रिका सैव संस्कृतिवसन्तकोकिला।

तां विनान चरितार्थता सृतेः कल्पवल्लिमिव नन्दनावनेः।।

सीता के समाधि लगा लेने पर शान्तरस की स्थिति में भी माधुर्य की मधुरिमा स्पष्ट दिखाई देती है–

शब्दादिभ्यस्तदनु करणग्राम आसाद्य मोक्षं

तस्या आत्मन्मृतजलाधौ बिन्दुभावेन मग्नः।।

प्राणायामः स्वयमथ तदा प्राणरोधस्वरूपः।

प्रादुर्भूतः सहजसुभगो ध्यानदाढर्य दुहानः।।

इस प्रकार यहां माधुर्य गुण के अनुकूल शब्दावली का सुन्दर प्रयोग हुआ है। अंघ्रि, अंचल, सुधांशु, चंद्रिका आदि मधुर वर्णों की माधुर्य– व्यंजकता स्पष्ट है।

ओज

चित्त– विस्तार की हेतु दीप्ति रूप ओज गुण की वीर रस में स्थित होती है। क्रमशः वीर, वीभत्स, और रौद्र रस में यह अधिकाधिक हो जाती है।

वर्ग के प्रथम तथा तृतीय वर्ण के साथ उनके बाद के अर्थात् द्वितीय तथा चतुर्थ वर्णों का ऊपर, नीचे अथवा दोनों जगह रेफ के साथ जिस किसी वर्ण का दो तुल्य वर्णों का योग को छोड़कर ट, ठ–ड–ढ का प्रयोग, शकार तथा षकार का प्रयोग, दीर्घसमास और विकट रचना चित्रण ओज गुण के अभिव्यंजक वर्णों के माध्यम से किया गया हैः–

अनुभावातिभूभूताविभावाश्रमिणां पदम्।

ररक्षतुस्ततस्तेजोव्ययं चापि महामुन।।

यहां पर भू, त और र दो –दो तुल्य वर्णों के योग से ओज अधिक प्रभावशली बन पड़ा है।

इसी प्रकार चन्द्रकेतु की सेना के साथ लव–कुश के युद्ध के चित्रण में भी ओज गुण दिखाई देता हैः–

चन्द्रकेतुभटानां तत् प्रघनं निधनं व्यधात्।

ब्रहम्बालास्त्रसंपाताद् देहे पश्चात्द्व पुरा मतौ।

यहाँ भी ओज के अनुकूल वर्णें का ही प्रयोग हुआ है।

प्रसाद

शुष्क ईंधन में अग्नि के समान, स्वच्छ वस्त्र में जल के समान जो सहसा ही चित को व्याप्त करता है, ऐसे प्रसाद गुण की स्थिति सर्वत्र मानी जाती है। यहां प्रयुक्त सर्वत्र से तात्पर्य है, सब रसें और सब रचनाओं में प्रसाद गुण की स्थिति होती है।

प्रसाद गुण के लिए किन्ही विशिष्ट वर्णों, वृत्ति अथवा रचना का विधा नहीं है। उसका व्यावर्त गुण है, जहाँ श्रवण मात्र से अर्थ स्पष्ट हो जाए वहीं प्रसाद गुण की स्थिति होती है। चाहे चितद्रुति के प्रसंग हों और चाहे चित्त– दीप्ति के, अर्थ प्रत्यय ही सर्वत्र अपेक्षित है, वहीं सबकी आधारभूमि है। अतः सत्काव्य में प्रसाद गुण की स्थिति सर्वदा अभिलषणीय है।

प्रस्तुत महाकाव्य में प्रसाद की झलक सर्वत्र देखी जा सकी है।

यामि मतार इतः स्वतस्ततों यामि, यामि विपिनं न में व्यथा।

कीर्तिकायमवितुं सुमानुषा मृत्युतोपि न हि जातु बिभयाति।।

यहाँ शब्दों के स्वच्छ प्रयोग से अर्थ स्पष्ट होते हुए करूण के भाव शोक को उद्दीप्त करने में पुर्णतः सहायक हुआ है।

नदी के शान्त जल को देखकर ऋषि वाल्मीकि के हृदय की स्थिरता के चित्रण में भी प्रसादिकता देखी जा सकती है–

प्रस्न्नततोयां सरितं विलोक्य तां स शान्तचेताः स्थिरतामुपागतः।

भवन्ति तीर्थानि शुभाशुभं प्रति प्रसादसौम्या मुकुरा महात्मनाम्।।

ऋषि वाल्मीकि द्वारा लव–कुश को उनके माता–पिता के विषय में बताने का वर्णन भी प्रसाद गुण के माध्यम से किया गया है–

पुत्रौ श्रुतं यन्मम रामकाव्यं यस्तत्र रामः स हि राम एषः।

या तत्र सीता ननु सैव सीता भवत्सवित्री, न तु काचिदन्या।।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि प्रायः सभी प्रसंगो में सर्वत्र प्रसाद गुण व्याप्त है तथा उसकी के अनुकूल असमस्त पदावली का भी प्रयोग हुआ है।

रीति योजनाः– सुन्दर अभिव्यक्ति के विधान या आकर्षक प्रतिपादन शैली को ही रीति कहते हैं।

''विशिटा पदं संघटनां रीतिः। विशेषो गुणात्मा।'' (वामनः काव्यालंकारसूत्र 1/1/2)

रीतिगत पदो की विशिष्टता अथवा गुणयुक्तता काव्य का शोभावर्धक नित्य धर्म है, जिसके बिना काव्य में शब्द और अर्थ नीरस होगा। क्योंकि रस को उत्पलावित करने का कार्य गुण करते है। जो कि रीति में निहित है।

''रीतिरात्मा काव्यस्य'' कहकर आंलकारित आचार्य वामन ने सर्वप्रथम काव्य में रीति को प्रमुख स्थान दिया और उसकी काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिपादित किया। यद्यपि काव्यशास्त्रीय इतिहास में वामन से पहले भामह ने काव्यालंकार में और दण्डी नें ''काव्यादर्श'' में भी रीतियों की चर्चा की थी किन्तु उन्होने रीति के स्थान पर मार्ग पद का प्रयोग किया। भामह ने अभिव्यक्ति के जिन दो मार्गो (रीतिया) का प्रतिपादन किया वे हैं वैदर्भ– मार्ग और गौडीय–मार्ग किन्तु काव्य के लिए इन दो मार्गों को आवश्यक तो उन्होने बताया है अनिवार्य नहीं। आचार्य रूप्रट ने अग्निपुराण की स्थापनाओं के अनुसार वैदर्भी, गौड़ी पांचाली के अतिरक्ति चौथी रीति लाटी की भी स्थापना की। आनन्दवर्धन और अभिनव गुप्त की दृष्टि काव्य के भावत्मक रूप की ओर थी, इसलिए इन्होने गुण और अलंकार से रीति का पृथक अस्तित्व स्वीकार नहीं किया। कुन्तक ने रीति–विभाजन के देशगत आधार को ही अवैज्ञानिक

ठहराया। उन्होनें कवि–कर्म के ढंग के रूप में केवल एक ही रीति का आवश्यकता को यथेष्ट बताया। भोज ने मागधी औश्र आर्वती नामक दो रीतियों की उद्‌भावना कर उनकी संख्या 6 तक बढ़ा दी, किन्तु उन्होने रीतियों की जो रूपरेखा तैयार की वह आधारित नहीं थी। वामन पहले ऐसे आचार्य है जिन्होने रीति की स्पष्ट व्याख्या की ओर उसे काव्य की आत्मा माना।

रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वामन कहलाये जिनके द्वारा प्रणीत ग्रन्थ काव्यालंकार सूत्र है। सूत्ररूप में निबद्ध अपने इस ग्रन्थ में उन्होने रीति का सांगोपांग विवेचन किया है। वर्तमान समय में वामन के काव्यालंकार सूत्र के अतिरिक्त कोई ऐसा काव्यशास्त्रीय नहीं होता जिसमें काव्यगत रीति की स्पश्ट व्याख्या की गई हो वामन ने रीति के 3 भेद बताये –

1 वैदभी रीति

2 गौड़ी रीति

3 पांचाली रीति

वैदर्भी

माधुर्य व्यंजक वर्णो के द्वारा की हुई समाज सहित अथवा छोटे –छोटे समासों से युक्त मनोहर रचाना को वैदर्भी रीति कहते है। यह श्रृंगार आदि कोमल रसों का उपकार करती है। आचार्य मम्मट ने इसे उपनागरिका वृत्ति भी कहा है। रूद्रट ने समासरहित अथवा छोटे–छोटे समासों से युक्त श्लेषादि दस गुणों से युक्त एवं अल्पप्राण अक्षरों से व्याप्त सुन्दर वृत्ति को वैदर्भी कहा है। इसके स्वरूपविषय में काव्यशास्त्रियों में चाहे विवाद रहा हेा किन्तु इस सत्य की अनुभूति में सभी एकमत हैं कि वैदर्भी रीति समस्त रीतियों में सर्वोत्कृष्ट है।

प्रस्तुत काव्य सीताचरितम् में अधिकांशतः करूण और शान्तरस की मधुरिमा व्याप्त है। सीता के वनवास–गमन से लेकर ऋष्शि वाल्मीकि के आश्रम में जाने तक करूण रस की धारा अनवरत रूप में प्रवहमान है। तत्पश्चात् सीता के शम और

वैराग्य भाव का चित्रण अन्त तक किया गया है जब तक वे समाधि नहीं लगा लेतीं। इस प्रकार करूण और शान्त दोनों ही कोमल रसों का चित्रण करने के लिए वैदभी रीति ही नुकूल पड़ती है। अतः यदि कहा जाए कि प्रस्तुत काव्य की प्रमुख रीति वैदभी र्ं है तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

माधुर्य व्यंजक वर्णों से युक्त, अल्प समासयुक्ता वैदर्भी का उदाहरण द्रष्टव्य है–

पुत्रिकेव भवतीभिरूक्षिता याचलेन सततं पयोमुचा।

राजधर्मपरिपालनव्रतं वीक्ष्य सापि परिहीयतान्तमाम्।।

सीता के हृदय में उठने वाले मनोद्गारों का वर्णन भी असमस्त पदावली के माध्यम से हुआ है–

अकृत मनसि–हन्त हन्त हपारी जगति समर्पितचेतना परार्थे।

न खलु न खुल विद्यतेडत्र तस्या अणुपरिमाणमपि स्व– संज्ञितत्वम्।।

शान्त के सन्दभ्र में भी वैदर्भी का ही प्रयोग हुआ है–

सा सर्वेभ्यों विनयमधुरं चांजलि मूर्ध्नि धृतवा

न्यस्याशीर्भिः करकिसलयं चन्द्रकेतोश्च शीर्षे।

स्मेरं धृत्वा मुखसरसिंजं शान्तभावा पुनश्च

भेजेअभ्यासात् स्थिरमुखसमां पद्ममुद्रां सुभद्राम्।।

इस प्रकार माधुर्य के व्यंजक वर्णों से युक्त वैदर्भी का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

पांचाली

शब्द और अर्थ का पारस्परितक सौंदर्ययुक्त सन्तुलित गुम्फन पांचाली रीति कहा जाता है। इसरीति में प्रायः उन वर्णों का प्रयोग किया जाता है जो माधुर्य और

ओज गुणों के अभिव्यंजक विशिष्ट वर्णों से भिन्न होते हैं। इसमें पाँच छः पदों तक ही समास रचना की जाती है। आचार्य मम्मट ने इसे कोमला वृत्ति नाम दिया है।

प्रस्तुत काव्य के पंचम सर्ग में वन के वृक्ष, लताओं, पशु–पक्षियों, जलाशयों आदि का चित्रण करने में तो कवि ने सर्वत्र पांचाली का ही प्रयोग किया है–

स हंसकारण्डवकेलिनिर्भरां प्रसन्नतोयां सितशर्करां च ताम्।

उपान्तवानीरनिकुंजनिर्गतैरुपास्यमानां पतगैरवैक्षत।।

अन्यत्र वनस्थली की वन देवियों की रीतिबद्ध गलियों और ऊँचे–ऊँचे वृक्षों से गिरी पुष्पराशियों से परिपूर्ण दिशाओं और भूतल का चित्रण भी पांचाली के माध्यम से ही किया गया है–

वनस्थली दैवगीतिरीतिभिस्तथोच्चवृक्षच्युतपुष्पराशिमिः।

दिशां चयं भूमितलं च सर्वतः कविः साक्षादकरोत् प्रपूरितम्।।

स्पष्ट है कि यहां पांच– छः पदों से युक्त रचना की गई है।

गौड़ी–

ओज गुण को प्रकाशि करने वाली कठिन वर्णों से बनाए हुए अधिक समासों से युक्त उद्‌भट बन्ध को गौड़ी कहते हैं। यह रौद्र, वीर, भयानक आदि कठोर रसों का उपकार करने वाली होती है। आचार्य मम्मट ने इसे पुरूषा वृत्ति कहा है।

इस काव्य में बालकों का युद्ध–वर्णन किया गया है जिसमें गौड़ी रीति का समावेश दिखाई देता हैः–

पूर्वापरसमुद्रोर्मि–विडम्बि–शरवर्ष्णोः।

विग्रहो विग्रहायैव स तयोः समपद्यत।।

बालकों की अस्त्र–प्रयो में निपुणता और धनुषों की टंकार का चित्रण ओज व्यंजक वर्णों के द्वारा किया गया हैः–

लाघवाविशयं प्रेक्ष्य प्रयोगेडस्त्रस्य तत्खणे।

अस्त्रवेदोडपि कार्तार्थ्य बालाभ्यां प्रत्यपद्यत।।

तदार्नी चापनिर्घोषैरस्त्रनिष्पेषणैस्तथा।

आपूर्यत दिशां कुक्षिः सिंहीना तु व्यरिच्यत।।

यहां पर ऊपर व नीचे दोनों जगह विद्यमान रेफ, शकर, षकार, तथा ड आदि ओज के अनुकूल वर्णों से युक्त समास प्रयोग के द्वार गौड़ी रीति का सुंदर प्रयोग दर्शनीय है।

इस प्रकार कवि ने तीनों रीतियों का रसानुगुण प्रसंग के अनुसार काव्य में उनका सुन्दर प्रयोग किया है।

संकेत सूची

1. अर्थे सत्यर्थभिन्नां पर्णानां सा पुनः श्रुति यमकम्। काव्यप्रकाश, 9/110

2. स जनको जनकोपपराड्मुखो दुहितरं हितरंजित–भूतलाम्।

   जन–मनो नमनोदितपुण्यामृतमथैक्ष्य बभूव कृतक्रियः।। सी.च., 10/61

3. पादतद्भागवृत्ति तद्यात्यनेकताम्।। का.प्र. 100/34

1. स रविवंशगुरूश्च सनातन स्थविरतां विरतामिव तत्क्षणम्।

   न मनुते स्म न, किं च सतीव्रतं तपसि काञ्चन काञ्चनतां गतम्।। सी.च. 10/62

3. तत्रैव, 10/63

4. वक्रामिधेय शब्दोक्तिरिष्टा वाचामलंक्रिया। का.ल. 1/36

5. सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनायार्थो विभाव्यते। तत्रैव 2/85

6. श्लेषः सर्वासु पुष्णाति प्रायो वक्रोक्तिषु श्रियम्। का.द. 2/363

7. भिन्नं द्विधा स्वभावोक्तिर्वक्रोक्तिश्चेति वाड्मयम। तत्रैव 2/363

8. अर्थस्यालंकारा वास्तवमौपम्यमतिशयः श्लेष।

   एवमेव विशेषा अन्ये तु भवन्ति निःशेषा।। का.ल. 7/9

9. वास्तवमिति तज्ज्ञेयं क्रियते वस्तुस्वरूपकथनं यत्।

पुष्टार्थमविपरीतं निरूपमनतिशयमश्लेषम्। तत्रैव, 7/10

10. सम्यक्प्रतिपादयितुं स्वरूपतो वस्तु तत्समानमिति।

वस्त्वन्तरमाभिदध्यादवक्ता यस्मिस्तदौपम्यम्।। तत्रैव, 8/1

11. यत्रार्थधर्मनियमः प्रसिद्धिबाधाद्विपर्ययं याति।

कश्चित्क्वचिदतिलोकं स स्यादित्यतिशयस्तस्य।। तत्रैव, 9/1

12. यत्रैकमनेकार्थैर्वाक्यं रचितं पदैरनेकस्मिन्।

अर्थे कुरूते निश्चयमर्थश्लेषः स विज्ञेयः।। तत्रैव, 10/1

13. उपमैका शैलूषी संप्राप्ता चित्रभूमिकाभेदान्।

रंजयति काव्यरंगे नृत्यन्ती तद्विद्वां चेतः ।। चि.मी. पृ. 41

14. यथा कथंचित्सादृश्यं यत्रोद्भूतं प्रतीयते। उपमा नाम सा। का.दं. 2/14

15. साधर्म्युमुपमाभेदे। का.प्र. 10/125

16. स सीतया भ्रातृयुगेन तेन चान्वितः स्वयुर्या शुशुभेगभीह्रत।

कुमारिकायामिव भारतोदधिः ससिंहल श्रीरूदधिक्ष्यांकचतः।। सी.च. 1/3

17. विपक्वगर्भ च वधू दृगम्बुभिर्निजेः ससंज्ञां च निरीक्ष्य मातरः।

निशश्वसुर्मुष्टिमतीं यथ महीं तरंगितां वीक्ष्य कृषाणचेतनाः।। तत्रैव 2/44

18. प्रतिपादितपुत्रा सा कवये दिव्यचक्षुषे।

बभावर्पितशब्दार्था प्रतिभेत सुमुंगला।। तत्रैव 8/1

19. स आश्रमश्चापि तदास्य सूरेस्तैः स्नातकैर्हन्त तथा चकासे।

यथा खलो निस्तुष–मुष्टि–राशि–सघैः कृषाणस्य गृहे चकास्ति।। तत्रैव, 10/8

20. सीतातटस्थत्वविषददिग्ध प्रसन्नता राजकुलस्य तस्य।

निदाघतप्तस्य सरोवरस्य प्रसन्नताया भगिनी बभूव।। तत्रैव 10/27

21. तदुत्पल–श्याम–शुभः शुचेरिवान्ते वपुरक्षिमिः पिबन्।

पयस्विमेघप्रभ्ज्ञमाप चातकव्रतानि साकेतनिवासिनां व्रजः।। सी.च. 1/4

22. तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः। काप्र. 10/939

23. त्वमेव भास्वत्कुल–कीर्ति–केतने वृषाड्कमुद्रासि नृलोकवन्दिता।

त्वमेव रामायणनाम्नि मन्दिरे विभासि सर्वप्रमुखेव देवता।। सी.च. 1/19

24. तत्रैव, 9/35

25. तत्रैव, 9/68

26. सैव जीवनसुधांशुचन्द्रिका सैव संस्कृतिवसन्त कोकिला।

तां विना न चरिताथ्र्ज्ञता सृतेः कल्पवल्लिमिव नन्दनावनेः।। 3/63

27. नयस्तदर्थ किल दान–सामनी सभेददण्डे समुपास्य योज्यते।

पदेषु तेष्वेव हि सृष्टिरूपिणी प्रवृत्तिशीला सुरभिः प्रवर्त्तते। तत्रैव, 1/51

28. नयः स दीपस्तमसि स्थिताञ्जिनान् प्रकाशमार्गे परिचालयेत यः।

तृतीयसमुद्भासिततथ्यमान्तरं स एव नेत्रं सततं प्रबोधभाक्।। तत्रैव, 1/53

29. सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्। काप्र. 10/137

30. स्नुषां स्वकीयामथ तां तनीयसीं व्रतेन पत्युर्नयनाम्बुभिर्द्रुता।

उवाच माता ममता–दया–तट द्वये वहन्तीव सुवत्सला स्त्रुति।। सी.च. 1/15

31. वनीव पुंस्कोकिलकूजितेन सत्प्रियेव वीरप्रियसौभगेन वा।

सवेतनेवोत्तरकोसलौकसां जयस्वनेनाजनि सा तदा पुरी।। सी.च. 1/40

32. शुभ्रकेतुरवदात वाहनः ऊवेतरमिश्मरतिशुद्धसंस्तरः।

द्योतते स्म रथ एष तां वहन् तद्विशुद्धिपरिवेष्टितो यथा।। तत्रैव, 3/55

33. तत्रैव, 7/54

34. सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।

यत्तु सो·र्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा।। का.प्र. 10/109

35. निशम्य तां क्षत्रियशोणितोदितां गिरं विवेकस्थिरसंविदुद्रतांम्।

जहुर्महान्तं क्लममात्मनः सुता स्रतां प्रसादः श्रमजो·पि तोषदः।। सी.च. 1/24

36. भवन्ति कारूण्यवतां वपुर्भृतां मनांसि संवादशुभानि सर्वदा। सी.च 2/47

37. प्रियशतमवदन् यदप्यमुष्या व्यसनकृशा, न हि जानकी तथापि।

अनुसृतिमनुमोदितं स्वसृणामलमभवद् गुरवो निजार्थबाह्याः।। तत्रैव, 4/69

38. अपकृतिमभिलष्यति प्रियस्य प्रणयिजनो न हि, कृच्छ्रगोपि यस्मात्। तत्रैव, 4/70

39. पतिह्रदि निजवत्समाप्य नारी भवति हि तृत्पमा स्वमातृभावे।। तत्रैव, 6/59

40. वशिषु न हि विकारजातमम्भः स्वनल इव श्रयते प्रकाममायुः।। तत्रैव 6/60

41. आवश्यकाद् यो·म्यधिकं ब्रवीति स शारदायाः कुरूते·वमानम्। तत्रैव 9/30

42. मितं न यद् यच्च न हन्त सारं विग्लापनमात्रमिदं स्ववाचः। तत्रैव 9/36

43. निगीर्याध्यवसानन्तु प्रकृतस्य परेण यत्

प्रस्तुतस्ययदन्यत्वं यद्यर्थोक्तौ च कल्पनम। का.प्र. 10/100

44. किमत्र कार्य विपरीततताकटुः स्थितिः समक्षं म संप्रति स्थिता।

परित्यपानि स्वचिचि, जनानुत, व्रजानि वहनौ यदि वाद्य वारिधौ।। सी.च. 2/34

45. वस्तुतो यदि सुमानुषी सृतिः पद्मिनी, श्रयति पद्मतां प्रिया।

सा·स्ति चेद् यदि शिखा विभागवसोरूष्मतां सपृशति तत्र च प्रिया।। तत्रैव 3/62

46. शुक एष यथात्र दाडिमं मणिमात्रे विधृतं जिधृक्षतु।

पृथुकः कलहंससंभवो·प्ययि कह्लारदलाम्बुविद्रुमम्।। तत्रैव 4/17

47. कथं न शिल्पोत्त्ममेतदत्र प्रशस्तिपात्रत्वमुपाददातु।

यत्रोपलः सूर्यमणिः कविः स शिल्पी, वसिष्ठ॔च परीक्षको·स्ति।। सी.च. 10/25

48. प्रकृतं यन्निषिध्यान्यत्साध्यते सा त्वपन्ह्नुतिः।। का.प्र. 10/146

49. तदनु कपिलधेनुतां दधाना विशदरूचामपदेशतः स्वदुग्धैः।

अधिगत–शशि–वत्सका निशा सा भुवनघटं परिपूरयांबभूव।। सी.च. 7/52

50. सकृदवृत्तिस्तु धर्मस्य प्रकृताप्रकृतात्मनाम्।

सैव क्रियासु बहीषु कारकस्येति दीपकम्।। का.प्र. 10/103

51. स. राघवो भूमिमधिज्यकार्मुको वृषा स वज्री च दिवं ररक्षतुः।

परस्परं यज्ञहविर्भिरम्बुद–प्रवर्षणैश्चापि समेधिताश्रियौ।। सी.च. 2/3

52. दृष्टान्तः पुनरेतेषा सर्वेषां प्रतिबिम्बनम्। का.प्र. 10/102

53. क एष मार्गो निजरक्षणे जनो धृतव्रतं दूष्यते निजाधिपम्।

किमत्र कार्य भगवानुषर्बुधो भवेद दिधक्षुर्यजमानमेव चेत्।। सी.च. 2/57

54. निदर्शना अभवन् वस्तु सम्बनध उपमापरिकल्पकः। का.प्र. 10/17

55. भवति विरलसंहतेः सदैव द्युतिमहतोपि जनस्य शत्रुशातः।

इति वददिव दीपकं तमांसि शिरसि बभार रवौ गते·स्तगर्भे।। तत्रैव, 7/50

56. सीताङ्घ्रितीर्थे प्रणतस्य तस्य द्वावेव शोभां ननु धातुमीशौ।

कुमारिकायां निजराष्ट्रभूम्यै नतो विवेको यदि वा महाब्धिः।। तत्रैव, 10/31

57. तन्मूर्धजानामरूणे समूहे मातुर्वदातद्युति पादपद्मम्।

शोणारूणाम्भः परिवेषरम्यामुवाह लक्ष्मीं द्युसरिज्ज्लानाम्।। सी.च. 10/32

58. पर्यायोक्तं विना वाच्यवाच्यकत्वेन यद्वचः। का.प्र. 10/175

59. विभूष्य पौलस्त्यशिरोभिरैश्वरं वपुर्भुवं, तत्सुतया तथा निजम्।

वनव्रतान्ते भ्ज्ञगवान रघुद्वहः सहानुजाभ्यां नगरं स्वमीयिवान्।। तत्रैव, 1/1

60. तत्रैव, 10/38

61. प्रतिवस्तूपमा तु सा। सामान्यस्य द्विरेकस्य यत्र वाक्यद्वये स्थितिः। का.प्र. 10/101

62. सी.च. 2/26

63. क्व भूतधxया दुहिता स्नुषा च मे प्रतीपभावा क्व च तादृशी कथा।

उपांशु मल्ली न विषं, न चन्द्रिका न तमो, न गंगा कलुषायितं भजेत्।। तत्रैव, 2/51

64. कवचिद्यदतिवैधर्म्यान्न श्लेषो घटनाभियात्।। का.प्र. 10/126

65. क्व ममत्वमयी गुरूः स्वसा क्व वनान्ताः क्व दशा तवेदृशी।

क्रकचान्नलिनीं सुपुष्पिणीं वद चेद् दारयितुं क्रमः क्षमा।। सी.च. 4/45

66. उपमानाद् यदन्यस्य व्यतिरेकः सः एव सः। का.प्र. 10/158

67. शरत्सु हंसा दिवसेषु भास्करः सुधांशुरह्नो विगमेषु दीव्यति।

नृनाथ कालेश्वरिवलेषु पावनं यशस्तु ते दीव्यति दीप्रमोजसा। सी.च. 2/12

68. छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पो·थ पठ्यते।

ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।।

69. प्रबन्धः सुतरां भाति यथास्थानं विवेचकः।

निर्दोषगुणसंयुक्तैः सुवृत्तैमौक्तिकैरिव।। सु.ति. 3/1

70. संलक्षितं जतजरै–र्द्वादशाक्षरमक्षरैः।

छन्दो विचक्षणा वृत्तं वंशस्थाख्यं प्रचक्षते। तत्रैव, 1/26

71. असमस्तपदैः पादसन्निविच्छेदसुन्दरम्।

सर्वपादैर्विसर्गान्तैवंशस्थो यात्यनर्धताम्।। तत्रैव 2/17

72. सी.च. 1/1

73. अभिव्यक्तं नममरैरक्षरैर्द्वादशाक्षरम्।

वदन्ति वृत्तजातिज्ञा वृत्तं द्रुतविलम्बितम्। सु.ति. 2/18

74. प्रारम्भे द्रुतविन्यासं पर्यन्तेषु विलमम्बितम्।

विच्दित्या सर्वपादनां भाति द्रुतविलम्बितम्।। तत्रैव, 2/21

75. सी.च. 10/61

76. तत्रैव, 10/54

77. रनरैरन्वितं युक्तं लघुना गुरूणा तथा। ख्यातं रथोद्वता नाम वृत्तमेकादशाक्षरम।। सू.ति. 1/23

78. सी.च. 3/4

79. ऽयाशाभिर्मन जरगाः प्रहर्षिणीयम्। छन्दोमंजरी, 2/13/1

80. सी.च. 5/3

81. अभिज्ञातं तभजजैरन्तासक्तगुरूद्वयम्।

चतुर्दशाक्षरं वृत्तं वसन्ततिलकं विदुः।। सु.ति. 1/29

82. वसन्ततिलकस्प्रे साकारे प्रथमाक्षरे।

ओजसा जायते कान्तिः सविकासविलासिनी।। तत्रैव 2/20

83. सी.च. 1/63

84. सी.च. 1/65

85. ननमययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।

86. सी.च. 1/67

87. यमनसभलैर्गेन युक्ता सप्तदशाक्षरा।

षडेकादशविच्छेदवती शिखरिणी मता।। सु.ति. 1/34

88. उपपéपरिच्छेदकाले शिखरिणी मता।। तत्रैव, 3/20

89. सी.च. 10/71

90. सी.च. 10/74

91. चतुः षट्! सप्तविरति वृत्तं सप्तदशाक्षरम्।

मन्दाक्रान्ता भनतैस्तगमैश्चाभ्धीयते।। सु.ति. 1/35

92. मन्थराक्रान्तं विश्रब्धैश्चतुर्भिः प्रथमाक्षरैः।

मध्यषट्के त्रिचतुरे मन्दाक्रान्ता विराजते।। तत्रैव, 2/34

93. सी.च. 10/78

94. तत्रैव 5/71

95. जसजैः सयलैर्गेन युताष्टनवसंहतिः।

दश सप्ताक्षरा पृथ्वी कथिता वृत्तकोविदैः।। सु.ति. 1/82

96. असमासैः पदैर्भाति पृथ्वी पृथक स्थितैः।

97. सी.च. 4/72

98. अयुजि नयुगरेफतोयकारो, युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।। छ.म. 3/5

99. सी.च. 3/69

100. तत्रैव, 6/4–5

101. अयुजोर्यादि सौ जगौयुजोः सभराल्गौ यदि सुन्दरी तदा।। छ.म. 3/6

102. सी.च. 4/1

103. तत्रैव, 4/38

104. अनन्तरोदीरितलक्ष्ममभजौ पदो यदीवातुपजातयस्ताः।

इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम।। छ.म. 2/3

105. सी.च. 9/2

106. तत्रैव, 9/25

107. सी.च. 6/33, 55

108. किसलयशिशुसोदरेण सीता कलमभुवः स्वकरेण मृदनती सा।

कठिन कर कृतां स्वभूमिसेवा कृषकजनस्य सुदूरमत्यशेत।। तत्रैव 6/36

109. ये रसस्यांगिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।

उत्कर्षहेतवरस्ते स्यूरचलस्थितयो गुणः।। का.प्र. 8/86

110. माधुर्यौजः प्रसादाख्यास्त्रयस्ते न पुनर्दश। का.प्र. 8/88

111. आह्लादकत्वं माद्युर्य ृंगारे द्रुतिकारणम्। तत्रैव 8/89

112. करूणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम्। तत्रैव 8/90

113. सी.च. 3/24

114. तत्रैव 3/63

115. सी.च. 10/68

116. दील्त्यात्मविस्तृतेर्हेरोजो वीररसस्थिति।

वीभत्सरौद्ररसयोस्तस्थाधिक्यं क्रमेण च।। का.प्र. 8/9/42

117. योग आद्य तृतीयाभ्यामन्त्ययोरेण तुल्ययोः।

टादि शषौ वृत्तिदैर्ध्य गुम्फ उद्धत ओजसि। तत्रैव 8/75

118. सी.च. 8/8

119. तत्रैव 8/31

120. शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव यः।

व्याप्नोत्यन्यत्प्रसादो सौ सर्वत्र विहित स्थितिः।। का.प्र. 8/94

121. श्रुतिमात्रेण शब्दात्तु येनार्थप्रत्ययो भवेत्।

साधारण समग्राणां स प्रसादो गुणो मतः।। तत्रैव 8/101

122. सी.च. 3/31

123 तत्रैव 5/40

124. तत्रैव 10/16

125. रीतिरात्मा काव्यस्य विशिष्टा पदरचना रीतिः।

126. वृत्तिनियतवर्णगतो रसविषयो व्यापारः।

127. पदसंघटन, रीतिरङ्गसंस्थाविशेषवत्।

उपकर्त्री रसादीनां सा पुनः स्याच्च्तुर्विधा।। सा.द. 9/1

129. वैदर्भी चाथ गौडी च पा चाली लटिका तथा।

130. माधुर्यव्य जकैवर्णैः रचना ललितात्मिका।। तत्रैव 9/2

131. सी.च. 3/27

132. तत्रैव 6/4

133. तत्रैव 10/66

134. शब्दार्थयोः समोगुम्फः पा चालीरीतिरिष्यते।

135. वर्णैः शेषैः पुनर्द्वयोः।

समस्तप चषपदो बन्धः पा चालिका मता।। सा.द. 9/4

136. सी.च. 5/38

137. सी.च. 5/42

138. ओजः प्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बर पुनः।।

समासबहुला गौडी। सा.द. 9/3–4

139. सी.च. 8/43

140. तत्रैव 8/38

141. तत्रैव 8/40

षष्ठ अध्याय

षष्ठ अध्याय

भाषा शैली

अपने वक्तव्य को सुन्दर तथा प्रभावशाली बनाने के लिए रचना में जिस कौशल का विनियोग किया जाता है– उसे शैली कहते हैं। यह अभिव्यक्ति की वैयक्तिक विधा है, इसका आन्तरिक सम्बन्ध कलाकार के व्यक्तिगत शील एवं स्वभाव से रहता है। वस्तुतः व्यक्ति का शील–स्वभाव ही अभिव्यक्त होकर शैली में परिणत हो जाता है। कुछ हद तक रचना का बाहा प्रकार तथा प्रतिपाद्य विषय भी रचनाकार की शैली को प्रभावित और अनुशासित करता है। शैली की नियामक तत्त्वों में रस के अतिरिक्त वक्ता, तथा विषय के औचित्य को भी स्वीकार किया गया है किन्तु वहाँ भी मूलतः कवि का अपना शी–स्वभाव ही प्रधान रहता है।

जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने किसी गुण–विशेष के कारण लोक समाज में जाना जाता है, उसी प्रकार कोई कवि अपनी शैली विशेष के कारण अपनी रचनाओं में जाना–पहचाना जाता है। कवियों की कृतियों के विशिष्ट अध्ययन से उनके स्वभाव तथा रूचि– वैचित्र्य का अवबोध आसानी से हो सकता है। कोई दो कवि या नाटककार भी अपनी अनूभूति तथा अभिव्यक्ति में परस्पर भिन्न–भिन्न होते है। अतः दण्डी ने रचना पद्धति को प्रतिकविस्थित मानकर उनके भेदों की अनन्तता एवं विचित्रता की ओर इंगित किया है– तद्भेदास्तु न शक्यन्ते वक्तुं प्रति कवि स्थिताः।

वस्तुतः शैली कवि या लेखक शीलगत धर्म हे जो उसकी अभिव्यक्ति की प्रत्येक विधा में संस्कार रूप से विद्यमान रहती है। कोमल, कठोर, भावुक या चिन्तनशील कवि अपनीर रचनाओं में भली भाँति अवतरित हो जाता है। व्यक्ति अपनी प्रकृति के अनुसार ही किसी बात को सोचता है और समझता है और वह जिस रूप में सोचता है– अन्ततः उसी रूप में ढलता भी है। इसलिए कोमल पुरूष प्रकृति के अनुरूप ही उसकी अभिव्यकित शैली भी कोमल– पुरूष हुआ करती है।

सीताचरितम महाकाव्य में संस्कृत भाषा अपने समस्त सौन्दर्य से अलंकृत होकर अवतीर्ण हुई है। एक संस्कृत भाषा में अन्य भाषाओं की अपेक्षा सहज माधुर्य

है ही, पुनः द्विवेदी जी की रसनिर्झरी लेखनी से उसमें औश्र भी अधिक आकर्षण आ गया है।

यहाँ भाषा सर्वत्र भावानुगामिनी है। सीता के द्वारा सुतयुगल को जन्म दिए जाने के पश्चात् वन की दशाही परिवर्तित हो जाती है और सर्वत्र प्रसन्नता का वातावरण छा जाता है। वन के वृक्ष लताऐं भी प्रसन्न दिखाई देते हैं–

इयं च मे दन्तुरिता स्वकुड्मलैः प्रतिप्रतानं वनमल्लिका सितैः

नवा वधूटीव नताङ्गगौरवा करोति दृष्टिं वशवर्तिनी कथम्।।

इसी प्रकार सीताचरितम् के द्वितीय सर्ग में सीता प्रति फैले अपवाद से व्यथित राम इसके लिए स्वयं को ही अपराधी मानते हुए आत्म–ग्लानि से भर उठते है जिसका चित्रण राम की दशा को साक्षात् प्रकट कर देता है–

अयि प्रिये, वैशसदारूणे मयि प्रतीतीभावात्ऋजुतापरिस्नुते।

क्व ते विगानग्लपितं सतीव्रतैर्विशुद्धमेतद् वपुरत्र शोत्स्यते।।

इसी प्रकार मानव मन की दुर्बलता को कितने सरल शब्दों में प्रकट कर दिया है।

यदीश्वरों मानमभ्रविस्तृतां मनश्चापि च सिन्धुनिर्भरम्।

विर्तीय, कुर्यादविनश्वरं तनौ दुरत्ययेच्छा न तथापि स त्यजेत्।।

इस सहज सरल शौली के साथ ही जहाँ वर्णनों का प्रसंग उपस्थित हुआ है वहां तदनुरूप समासयुक्त गुम्फित पदावली और अलंकारों के सौन्दर्य से समन्वित शैली के दर्शन किए जा सकते है। सीताचरितम् के नवम सर्ग में सीता के सभा में प्रकट होने के प्रसंग में यह शैली दर्शनीय है।

कवि की भाषा में नाद सौन्दर्य भी दृष्टिगोचर होता है। वनान्त प्रदेश की वायु के द्वारा सच्छिद्र बांसों को पटु मर्म स्वरों से भर–भर कर तथा तालवृक्षों की ताल बजा बजाकर मुनि वाल्मीकि के आस–पास का वायुमण्डल गीतमय देता है–

वनान्तवायुः पटुमर्मरैः स्वरैः प्रपूर्य वेणूनू सुषिरेष्ञु तत्क्षणम्।

प्रवाद्य तलाँश्च चकार गीतिमन्मुनिं समन्तादथ वायुमण्डलम्।।

कवि ने त्वा और णमुल आदि प्रत्ययों के द्वित्व प्रयोग द्वारा चित्रात्मकता की दृष्टि से सराहनीय है–

स्थले स्थले यामुनगा गसंगमप्रभ ि गमा किं नु निशाक्यते बने।

स्थल स्थले शोकपलाशमल्लिकाप्रसूनपु जैः सितरक्तपीतकैः।

लिट् के प्रयोग जहां एक ओ कवि के व्याकरण सम्बन्धी पाण्डित्य के साक्षी हैं वहां दूसरी ओर वर्णनों के प्रस्तुती करण में भी सर्वधिक सहायक हुए है–

वल्लयों मरूति चले मिलद्भिरस्यै पत्राधैः करपुटमंजलि बबन्धु।[5]

कवि की भाषा में शब्द चित्रों को खचित करने की अद्भुत क्षमता है। वस्तु वर्णन के अन्तर्गत ऋष्ञि वाल्मीकि के आश्रम, नदी, उद्यान, वापिका आदि के सुन्दर दृश्यों का साक्षात् अनुभव करा दिया गया है।

सीताचरितम् के ही पंचम सर्ग में प्रकृति सौन्दर्य के चित्र भी कम सुन्दर नहीं है। इस प्रकार कवि में एक ओर यदि मानव अन्तः स्थल के सूक्ष्म भावों को उद्घाटित करने की अपूर्व क्षमता है तो दूसरी ओर शब्द रूपी तूलिका से दृश्यों के चित्र उतारने का कौषल भी अनोखा है।

प्रस्तुत काव्य में अभिधा शक्ति का प्रयोग तो सर्वत्र है, ही किन्तु व्यंजना का भी विस्तृत साम्राज्य विद्यमान है। काव्य में रस की प्रधानता होने के कारण और रस मे व्यंग्य तत्त्व होने के कारण श्रृंगार शान्त आदि के प्रसंगो में व्यंजना का ही आश्रय लिया गया है।

संक्षेप में यदि कुन्तक के शब्दों का प्रयोग करते हुए कहें तो कहा जा सकता है कि महाकाव्य में शब्दार्थ की अन्यूनातिरिक्त सुन्दर स्थिति है।

संकेत सूची

1. काव्यादर्श 101
2. सी.च. 2/33
3. तत्रैव 2/14
4. तत्रैव 9/51–53
5. तत्रैव 5/46
6. तत्रैव 5/48
6. तत्रैव 5/20

उपसंहार

उपसंहार

प्रस्तुत शोध ''उत्तरसीताचरितम् महाकाव्य का काव्यशास्त्रीय अध्ययन'' के अन्त में शोध की उपलब्धि के रूप में हमारे अध्ययन का जो निष्कर्ष निकलता है उसे निम्न प्रकार प्रतिपादित किया जा सकता है –

प्रथम अध्याय का प्रतिपाद्य विषय है कि सीता का चरित्र सहस्त्राब्दियों से महाकवियों के द्वारा निष्पादित किया जा रहा है, किन्तु सीता के निर्वासन के प्रसंग में सभी वाल्मीकि के ही अनुगामी है, किन्तु आधुनिक युग में महाकवि रेवाप्रसाद द्विवेदी ने सीता निर्वासन के प्रसंग को सर्वथा नवीन रूप से प्रस्तुत किया है वे वाल्मीकि पथगामी नहीं है जबकि भवभूति ने वाल्मीकि का ही अनुसरण किया है।

द्वितीय अध्याय के प्रथम एवं द्वितीय उपविभाग के अन्तर्गत महाकाव्य के उद्‌गम पर अति सूक्ष्म रूप से प्रकाश डाला गया है। प्राचीन महाकाव्य परम्परा व आधुनिक महाकाव्य परम्परा दोनों का उल्लेख किया गया है। प्राचीन महाकाव्य परम्परा के अन्तर्गत सर्वप्रथम अग्निपुराण में उपलब्ध महाकाव्य का लक्षण प्रस्तुत करते हुए अलŠारशास्त्रियों–भामह, दण्डी, रुद्रट, हेमचन्द्र, विद्यानाथ और आचार्य विý नाथ द्वारा प्रतिपादित महाकाव्य के लक्षणों को प्रतिपादित किया गया है। आधुनिक महाकाव्य परम्परा के अन्तर्गत आधुनिक काव्यशास्त्रियों राजेन्द्र मिश्र, राधावल्लभ त्रिपाठी एवं रहस बिहारी द्विवेदी के महाकाव्य के लक्षणों को प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक और प्राचीन काव्यशास्त्रियों द्वारा प्रदत्त लक्षणों में हमें कोई विशेष अन्तर दृष्टिगत नहीं होता है किन्तु सर्गों की संख्या के विषय में राजेन्द्र मिश्र जी ने आठ के स्थान पर उसकी तिगुनी (24) कहकर उसकी व्यापकता का विस्तार किया है। इसके साथ ही अर्वाचीन काव्यशास्त्रियों ने महाकाव्य के वर्ण्य विषय में भी परिवर्तन किया है। आधुनिक काव्यशास्त्रियों ने जीवन की वास्तविक दशाओं, देश–काल की स्थिति के अनुसार कथानक को अ›ीकृत करके उसे महाकाव्य का वर्ण्य विषय बनाने एवं महिला पात्रों को आधृत कर महाकाव्यों की रचना करने तथा लोकवन्द्यजनाश्रय जैसे विषयों को गृहीत कर महाकाव्य प्रणीत करने का उल्लेख किया है। हमनें प्राचीन तथा आधुनिक महाकाव्यों के वर्ण्य विषय से सम्बद्ध सूची को भी प्रस्तुत किया है। प्राचीन महाकाव्य परम्परा के कवियों व उनकी कृतियों (कालिदास से लेकर श्रीहर्ष) तक का वर्णन किया है।

हमनें सुविधा की दृष्टि से आधुनिक महाकाव्य परम्परा का प्रारम्भ 1884 से निÕत किया है तथा 21वीं शताब्दी तक के कवियों व उनके महाकाव्यों को भी वर्ण्य विषय की दृष्टि से उल्लेखित किया है तथा इनकी कृतियों को कालक्रम की दृष्टि से सूचीबद्ध किया है। यद्यपि सभी महाकाव्यों को ना हमनें पढ़ा है और ना देखा है लेकिन कुछ महाकाव्य जो उपलबध हो पाए हैं उनको पढ़ने से ऐसा कहा जा सकता है कि प्राचीन व आधुनिक महाकाव्य परम्परा के बीच कोई विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती है क्योंकि जो आज आधुनिक है वही कई शताब्दियों के बाद प्राचीन हो जाएगा।

तृतीय उपविभाग के अन्तर्गत हमनें सीता के चरित पर आधृत उपलब्ध समस्त ग्रन्थों का उल्लेख किया है। चूँकि प्राचीन महाकाव्यकारों द्वारा सीता को नायिका के रूप में प्रतिपादित नहीं किया गया है किन्तु आधुनिक महाकाव्यकारों ने सीता को नायिका बनाकर महाकाव्यों की रचना की है। हमें जो महाकाव्य उपलब्ध हुए हैं उनमें सीता का चरित प्रधानतया निरूपित है जिनका विवरण इस प्रकार से है – राजेन्द्र मिश्र कृत जानकीजीवन, डॉ. शंकरदेव अवतरे प्रणीत सीतारामीय, श्रीचामराजनगर रामशास्त्री एवं सीताराम शास्त्री रचित सीतारावणसंवादझरी, श्री सत्यनारायण शास्त्री कृत रामप्रिया, श्रीरामस्नेहीदास कृत जानकीचरितामृत, चक्रकवि प्रणीत जानकीपरिणय एवं हरिकृष्ण भट्ट प्रणीत सीतास्वयंवर काव्य। इसके साथ ही सीता पर आधृत अन्य ग्रन्थों का केवल नामोल्लेख भी किया है।

इसी अध्यायान्तर्गत चतुर्थ उपविभाग में हमनें महाकाव्य की कथा का मूलाधार तथा कथानक के परिणतस्वरूप का उल्लेख किया है। महाकाव्य के कथानक का मूलाधार तो वाल्मीकि रामायण का उत्तरकाण्ड है किन्तु कवि ने अपने अप्रतिम प्रतिभा से कथानक में कई मौलिक परिवर्तन किये हैं। हमनें अध्याय के आरम्भ में वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा का निरूपण करते हुए कवि के कथानक में मौलिक परिवर्तन का प्रतिपादन किया है। कवि कृत परिवर्तन महाकाव्य में निम्न स्थलों पर दिखायी पड़ता है :–

1. तृतीय सर्ग में जब सीता को स्वयं के बारे में फैले (निःसृत) लोकापवाद के बारे में पता चलता है तो उस स्थल पर कवि ने सीता को स्वयं वनगमन हेतु निर्णय लेते हुए चित्रित किया है।

2. पञ्चम सर्ग में सीता गङ्गा किनारे प्रकृति की गोद में अकेले ही दोनों पुत्रों को जन्म देती हुई कवि द्वारा वर्णित की गई है।

3. दशम सर्ग में सीता का वाल्मीकि आश्रम में रामादि के समक्ष समाधिस्थ होने का प्रसङ्ग कवि ने दर्शाया है।

पाँचवें उपविभाग के अन्तर्गत महाकाव्य का अŠक्रम से कथासार प्रस्तुत किया गया है। महाकवि ने 10 सर्गों का उचित नामकरण किया है जिसमें प्रथम सर्ग राष्ट्रपति –निर्वाचन में राम का लŠा विजय के पश्चात् सीतादि के साथ अयोध्यागमन तथा उनके स्वागतादि का वर्णन है। साथ ही राम के राज्याभिषेक का भी वर्णन है। द्वितीय सर्ग जानकीकौलीन में राजा राम द्वारा स्थापित सुशासन का वर्णन है तथा सीता के बारे में फैले लोकापवाद का वर्णनादि है। तृतीय सर्ग जानकीपरित्याग में सीता का स्वयं वनगमन का निर्णय व उसके समर्थन में दिये गये तर्क वर्णित हैं। चतुर्थ सर्ग साकेतपरित्याग में सीता का अपनी बहिनों से मिलाप के पश्चात् लक्ष्मण के साथ अयोध्या छोड़ने का वर्णन है। पञ्चम सर्ग कुमारप्रसव में गङ्गा किनारे अकेली गर्भिणी सीता का प्रकृति द्वारा स्वागत तथा लव–कुश का जन्म चित्रित है। षष्ठ सर्ग जानकीमुनिवृत्ति में जानकी का वाल्मीकि आश्रम में प्रवेश तथा आश्रम के वैभवादि का वर्णन साथ ही सीता की स्वावलम्बन की प्रवृत्ति चित्रित है। सप्तम सर्ग विद्यादिगम में सीता द्वारा लव–कुश के लिए वाल्मीकि मुनि को गुरु चुनना तथा उनका विद्यादि प्राप्ति का वर्णन है। अष्टम सर्ग कुमारायोधन में लव–कुश के साथ चन्द्रकेतु के युद्ध का वर्णन (अý के लिए) तथा राजा राम का वाल्मीकि आश्रम में प्रवेश का चित्रण है। नवम सर्ग मातृप्रत्यभिज्ञान में भूर्जपत्रों का आवरण हटने से सीता के दर्शन तथा उसकी तटस्थता का वर्णन है। अन्तिम दशम सर्ग समाधिमाङ्ल्य में सीता का सभी के समक्ष युक्त योगी बनकर समाधि में लीन होने का चित्रण किया गया है।

छठें उपविभाग 'उत्तरसीताचरित का महाकाव्यत्व' के अन्तर्गत महाकाव्य के महाकाव्यत्व को प्रतिपादित किया गया है। महाकाव्य के प्रारम्भ में महाकवि ने मङ्लाचरण के अन्तर्गत अष्टमूर्ति भगवान् शिव की स्तुति की है तथा छन्द, रस व अलŠारादि का उचित प्रयोग किया है। महाकाव्य में शान्त रस प्रधान है। कवि ने परिनिष्ठित, परिष्कृत, सारगर्भित, संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया है। महाकाव्य के कथानक का उपजीव्य आर्ष महाकाव्य है। नायक राम उदात्त गुणोपेत है। इस महाकाव्य के नायक का नायकत्व गौण

है। आधुनिक युग की परम्परा का अनुकरण करते हुए कवि ने नायिका सीता को बनाया है तथा इसी के आधार पर महाकाव्य का नामकरण 'उत्तरसीताचरित' किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पूरा महाकाव्य महाकाव्यों के लक्षणों से आवेष्टित (पूर्ण) है।

तृतीय अध्याय के अन्तर्गत हमने शोध के विषय का व्यापक रूप से अर्न्तषण किया है। हमारे शोध का विषय ''उत्तरसीताचरितम् महाकाव्य का काव्यशास्त्रीय अध्ययन'' है। अतः हमने काव्यशास्त्रीय अवधारणाओं पर अवलम्बित समग्र आयामों को उन्मीलित किया है। इसमें प्रथम हमनें महाकाव्य के अन्तर्गत आए पात्रों का व्यापक चित्रण किया है। जैसे पुरूष पात्रों के अन्तर्गत राम, लक्ष्मण, जनक, चन्द्रकेतु आदि स्त्री पात्रों में सीता, उर्मिला तथा कौशल्या का वर्णन है। इसके बाद हमनें विषय के अनुसार नायिका के काव्यशास्त्री रूप स्वरूप का वर्णन किया जिसमें नायिक के भेदों उपभेदों का वर्णन किया अन्य काव्यशास्त्रियों के द्वारा वर्णित नायिकाओं के भेदोपभेदो का भी उल्लेख किया है। तदोपरान्त सीताचरितम् की नायिका सीता पर प्रकाश डाला है उसके नायकिय गुणों का उल्लेख किया है। रेवाप्रसाद द्विवेदी ने जैसे नायक के गुणों का वर्णन होना चाहिए। वैसे ही नायिका के गुणों का भी वर्णन किया है उन्होंने उसे नायक के गुणों से ही अभिसिंचित किया है। इसके बाद उसका मनोवैज्ञानिक वर्णन भी किया है। और अन्य स्त्री पात्रों का भी उल्लेख किया है। इसी अनुरूप नायक का भी काव्यशास्त्रीय वर्णन कर अन्य पात्रों का भी सद्कि चत वर्णन किया है।

चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत सीताचरितम् में वर्णित रस एवं ध्वनि का वर्णन किया है 'सीताचरितम्' काव्य में यद्यपि अनेक रसों का समावेश नहीं है तथापि जो रस, विशेषतः प्रयुक्त हुए है, उनमें करूण, वात्सल्य और वीर प्रमुख है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि इस काव्य में सीता के ही उत्तर चरित का वर्णन किया गया है जो वनवास से लेकर समाधि तक मूल रूप से उनके ही जीवन की घटनाओं को चित्रित करता है। अतः इस काव्य में अगींरस की दृष्टि से देखा जाए तो शान्त रस का ही नाम आता है। अन्य करूण वात्सल्य आदि तो उसके अगंरूप में ही परिपुष्ट होते हैं। रस के अतिरिक्त इस काव्य में धविन का भी वर्णन किया गया है।

प चम अध्याय के अन्तर्गम महाकाव्य के शिल्प विमर्श में सर्वप्रथम अलंकार का विवेचन किया है। इसमें सीता चरितम् महाकाव्य में शब्दालंकार व अर्थालंकार दोनों का ही चित्रण किया है। शब्दालंकार में यमक, का उपयोग किया है। अर्थालंकार के अन्तर्गत

उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, अतिश्योक्ति अर्थालंकार के अन्तर्गत उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, अतिश्योक्ति अपह्नुति, दीपक, दृष्टानत, निदर्शना, पर्यायोक्त, प्रतिसुपमा, विषम, व्यतिरेक, लंकार का वर्णन किया है। अलंकार के बाद सीताचरितम् में छन्दों का प्रयोग किया गया है। छन्दों में द्विवेदी जी ने वंशस्थ, द्रुतलिम्बित, श्योद्वता प्रदर्षिणी, वसन्ततिलका, मालिनी, शिखरिणी, मन्द्राकानता, पृथ्वी, पुष्पिताग्रा, सुन्दी, उपजाति, आदि छन्दों का प्रयोग किया है। काव्य की पद्यात्मक विद्या की रचना तो पूर्णतया छन्दोबद्ध श्लोंाकों में की जाती है अतः इस विद्या में छन्दों का महत्व अधिक है, इसलिए रेवाप्रसाद द्विवेदी जी को शायद यही छन्द अतिशप प्रिय थे जिनका उल्लेख उन्होंने इसमें किया है। छन्द के बाद कवि ने गुणों को विवेचन किया है। महाकाव्य के लक्षण देते हुए आचार्यों ने गुणों का प्रथक विवेचन तो नहीं किया है तथापि अंग के साथ अंगों की सत्ता स्वतः ग्राह्य हो जाती है अतः उसकी विशेष आवश्यकता भी नहीं है। जिस प्रकार शौर्य आदि सत्त्व अर्थात् अन्तःकरण के ही धर्म है स्थूल शरीर के नहीं, उसी प्रकार माधुर्यादि भी रस के ही धर्म हैं, वर्णों के नही किन्तु समुचित वर्णों के द्वारा ही वे व्यंजित होते हैं, द्विवेदी जी ने अपने महाकाव्य में माधुर्य, ओज, प्रसाद, आदि गुणों का प्रयोग किया है। छन्दों के बाद महाकाव्य में वैदर्भी, प चाली, गौड़ी, रीति का प्रयोग महाकवि ने किया है।

षस्तु अध्याय में कवि की भाषा शैली की विशेषताओं का वर्णन किया गया है। क्योंकि अपने वक्तव्य को सुन्दर तथा प्रभावशाली बनाने के लिए रचना में जिस कौशल का विनियोग किया जाता है उसे शैली कहते हैं। वस्तुतः शैली कवि था लेखक शीलगत धर्म हैं जो उसकी अभिव्यक्ति की प्रत्येक विद्याा में संस्कार रूप से विद्यमान रहती है। इस महाकाव्य में संस्कृत भाषा अपने समस्त सौन्दर्य में अलंकृत होकर भक्तीर्ण हुई है।

अन्तिम निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि महाकाव्य काव्यशास्त्रीय दृष्टि से एक महत्वपूर्ण महाकाव्य है। साथ ही यह महाकाव्य महाकाव्य के लक्षणों से भी युक्त है। सीता केवल पतिव्रता पत्नी का ही आदर्श नहीं है अपितु एक महान् नारी है जो लोक कल्याण के लिए अपने समस्त सुखों के साथ अपना जीवन भी त्यागने के लिए तैयार है। सीता को प्रतीक रूप में गृहीत कर महाकवि ने नारी जाति की अस्मिता को स्थापित करने का अत्युत्तम उपक्रम किया है। नारीवादी चेतना को लेकर लिखे गये महाकाव्यों में यह अप्रतिम महाकाव्य है।

शोध सारांश

शोध सारांश

संस्कृत का समृद्ध साहित्य विश्वधरा का प्राचीनत साहित्य है किन्तु आ वैश्वीकरण वैज्ञानिक एवं संचार क्रांति के युग में इसे विश्व का नवीनतम साहित्य कहें तो अतिश्योंक्ति नहीं होगी क्योंकि इस साहित्य के गर्भ में हमारे वेदों पुराणों तथा उपनिषदों में से सभी नवीन सिद्धानत, तकनीकियाँ, प्रवृतियाँ, धर्म–दर्शन, योग, जीवन–मूल्य आदि बहु आयामी तथ्य विद्यामन है। जिसके आगे वैपश्चिती दृष्टियाँ नतमस्तक हैं (अचम्भित है)।

संस्कृत वाड्मय की अक्षय ज्ञान निधि युग युगान्तरों से मानव के समग्र कल्याण की साधिका रही है। लौकिक साहित्य में रामायण और महाभारत आर्ष महाकाव्य इसके आदि स्त्रोत हैं। सीता का चरित्र सहस्त्राब्धियों से देश, काल तथा परिस्थित्यानुसार साहित्य सर्जकों का ह्रदय नित नूतन उद्भावनाओं द्वारा उन्मीलित करता रहा है तथा साहित्य मर्मज्ञों, सामाजिकों, मनीषियों तथा दार्शनिकों द्वारा अधीत और अध्यापित किया जाता रहा है। अधुना यह प्रश्न उठाना स्वाभाविक है–सीतारचित्र ही क्यों ? इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि आज सतत् बढ़ रही उपसंस्कृति के परिणाम स्वरूप हमारा समाज भोगवाद तथा भौतिकवाद के दलदल में धंसता जा रहा है। सृष्टि के नैरन्तर्य के संवाहक नर–नारी प्रकृष्टेन चारित्रिक दुर्बलताओं के शिकार होते जा रहे हैं।

शोध ''उत्तरसीताचरितम् महाकाव्य का काव्यशास्त्रीय अध्ययन'' के अन्त में शोध की उपलब्धि के रूप में हमारे अध्ययन को जो निष्कर्ष निकलता है उसे निम्न प्रकार प्रतिपादित किया जा सकता है।

प्रथम अध्याय विश्वविश्रुत आधुनिक संस्कृत साहित्य के मूर्धाभिषिक्त मूर्धन्य

महाकवि महामहोपाध्याय 'श्री रेवाप्रसाद द्विवेदी' जी का जन्म मध्य–प्रदेश में पुण्यसलिला नर्मदा जी के तट पर स्थित साँची के नादनेर ग्राम में 22.08.1935 में हुआ था। जो वर्तमान में 'नन्दनगर' है। आपके पिता स्व. पण्डित नर्मदा प्रसाद द्विवेदी व माता श्रीमती लक्ष्मी देवी का स्वर्गवास तभी हो गया था जब आप प चम् कक्ष्या के छात्र थे। तत्पश्चात् आपकी शिक्षा आपके मामा प. शालिग्राम जी परसाई के सान्निध्य में हुई। इसके बाद मध्यमा की परीक्षाएँ प्रथमश्रेणी में उत्तीर्ण कर आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत महाविद्यालय से शास्त्री एवं शास्त्राचार्य की परीक्षा प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान पाकर उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् आप वेद विज्ञान के अध्ययन के लिए जयपुर आये। पुनः काशी आकर 1959 में आपने एम.ए. की परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में प्रथमस्थान पाकर उत्तीर्ण की। शोध पत्र में नामा न के साथ ही आपको मध्यप्रदेश के दूधाधारी श्री वैष्णव– संस्कृत महाविद्यालय में व्याख्याता पद पर नियुक्त किया गया। इसके बाद 1970 में का हि.वि.वि. वाराणसी में साहित्य विषय के रीडर तथा साहित्य विभागाध्यक्ष के पद पर कार्यरत रहे। 1973 में आपको प्रोफेसर पद के लिए चुना गया। का.हि.वि.वि. में 18 वर्षों तक साहित्य विभाग के अध्यक्ष और तीन बार स ाय प्रमुख रहे। 1990 में सेवानिवृत्ति के बाद का हि.वि.वि. कार्यकारिणी समिति के सदस्य के रूप में 3 वर्ष तक कार्य किया। का.हि.वि.वि. कार्यकारिणी द्वारा आपको पुनः प्रोफेसर पद पर (1992–1995) नियुक्त किया गया। इसके अतिरिक्त आपको बाहर से भी प्रोफेसर पद के लिए आमंत्रित किया जाता रहा, किन्तु आप बाहर मिले प्रोफेसर पद पर नहीं गये। सेवानिवृत्ति के बाद विश्व विद्यालय अनुदान आयोग द्वारा 'अमेरीटस फैलो' नामक दुर्लभ पद पर दो वर्षों के

लिए आपको चुना गया। का.हि.वि.वि. द्वारा भी 1993 में 'अमरीटस प्रोफेसर' की सम्मानित' नियुक्ति प्रदान की गयी। शासकीय सेवा में रहते हुए देशभर के संग्रहों से प्राप्त तेइस हस्तलेखों के आधार पर विश्वभर में पहली बार 'रघुवंशदर्पण' नामक हेमाद्रिकृत रघुवंश टीका का सम्पादन किया और उसी पर 1935 में रविश र विश्वविद्यालय से पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। सम्पादित टीका को पटना के काशी प्रसाद जायसवाल शोधसंस्थान ने 1973–74 में प्रकाशित भी किया। इसी अवधि में आपके छपे ग्रन्थों–i) आनन्दवर्धन ii) अल ारविमर्शिनी सहित 'अल ारसर्वस्व' पर जबलपुर विश्वविद्यालय ने 'डॉ. ऑफ लेटर्स' की उपाधि आपको 1974 में प्रदान की।

संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञों एवं रसिकों के लिए यह परम हर्ष का विषय है कि भावयित्री और कारयित्री प्रतिभा के धनी संस्कृतज्ञ श्री रेवाप्रसाद द्विवेदी सनातन जी हमारे बीच जीवित हैं। हम बाबा विश्वनाथ से उनके सुदीर्घ जीवन की प्रार्थना करते हैं जिससे वे अपनी वाग्र्थरूपी वाग्देवी से संस्कृत साहित्य को समृद्ध करते रहें।

सम्प्रति ग .I के पावन तट पर बसी बाबा विश्वनाथ की नगरी काशी (वाराणसी) में निवास कर अपने शोधों, अपनी नवीन उद्भावनाओं से वाग्देवी की सेवाकर संस्कृत साहित्य को भारत तथा विश्व की अनमोल धरोहर के रूप में प्रतिष्ठित' करने के कार्य में मनसा, वाचा, कर्मणा संलग्न है।

द्वितीय अध्याय :– के अन्तर्गत महाकाव्य के उद्गम पर अतिसुक्ष्म रूप से प्रकाश डाला गया है। प्राचीन महाकाव्य परम्परा व आधुनिक महाकाव्य परम्परा दोनों

का उल्लेख किया गाय है। प्राचीन महाकाव्य परम्परा के अन्तर्गत सर्वप्रथम अग्निपुराण में उपलब्ध महाकाव्य का लक्षण प्रस्तुत करते हुए अलंकारशास्त्रियों – भामह, दण्डी, रूद्रट, हमचन्द्र, विद्यानाथ और आचार्य विश्वनाथ द्वारा प्रतिपादित महाकाव्य के लक्षणों को प्रतिपादित किया गया है। आधुनिक महाकाव्य परम्परा के अन्तर्गत आधुनिक काव्यशास्त्रियों राजेन्द्र मिश्र, राधावल्लभ त्रिपाठी एवं रहस बिहारी द्विवेदी के महाकाव्यों के लक्षणों को प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक और प्राचीन काव्यशास्त्रियों द्वारा प्रदत्त लक्षणों में हमें कोई विशेष दृष्टिगत नहीं होता है किन्तु सर्गों के विषय में राजेन्द्र मिश्र जी ने आठ स्थान पर उसकी तिगुनी (24) कहकर उसकी व्यापकता का विस्तार किया है। इसके साथ ही आर्वाचीन काव्यशास्त्रियों ने महाकाव्य के वर्ण्य विषय में भी परिवर्तन किया है। आधुनिक काव्यशास्त्रियों ने जीवन की वास्तविक दशाओं, देश–काल की स्थिति के अनुसार कथानक को अडीकृत करके उसे महाकाव्य का वर्ण्य विषय बनाने एवं महिला पात्रों को आधृत कर महाकाव्यों की रचना करने तथा लोकवन्ध–जनाश्रय जैसे विषयों को गृहीत कर महाकाव्यों को प्रणीत करने का उल्लेख किया हैं। हमनें प्राचीन तथा आधुनिक महाकाव्यों के वर्ण्य विषय से सम्बद्ध सूची को भी प्रस्तुत किया है। प्राचीन महाकाव्य परम्परा के कवियों व उनकी कृतियों (कालिदास–श्रीहर्ष) का वर्णन किया गया है। हमने सुविधा की दृष्टि से आधुनिक महाकाव्य परम्परा को भी वर्ण्य विषय की दृष्टि से सूचीबद्ध किया है। यद्यपि सभी महाकाव्य जो उपलब्ध हो पाए हैं उनको पढ़ने से ऐसा कहा जा सकता है कि प्राचीन व आधुनिक महाकाव्य परम्परा के बीच कोई विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती है क्योंकि जो आज आधुनिक है वही कई शताब्दियों के बाद प्राचीन हो जाएगा।

तृतीय अध्याय के अन्तर्गत हमने शोध के विषय का व्यापक रूप से अन्वेषण किया है। हमारे शोध का विषय ''उत्तरसीता चरितम् महाकाव्य का काव्यशास्त्रीय अध्ययन'' है। अतः हमनें काव्यशास्त्रीय अवधारणाओं पर अवलम्बित समग्र आयामों का उन्मीलित किया है। इसमें प्रथम हमने महाकाव्य के अन्तर्गत आए पात्रों का व्यापक चित्रण किया है जैसे की नाम से ही विदित है उत्तरसीता चरितम् अर्थात यह नारीप्रधान महाकावय है इस महाकावय में सीता को नायक के समान गुणों से विभूषित किया है इसलिए पहले मैने नारी पात्रों का चरित चित्रण किया है। जिसके अन्तर्गत हमनें नायिक के भेदों उपभेदों का वर्णन किया अन्य काव्यशास्त्रियों के द्वारा वर्णित नायिकाओं के भेदो पभेदो का भी उल्लेख किया है तदोपरान्त सीताचरितम् कि नायिका सीता पर प्रकश डाला है उसके नायकिय गुणों का उल्लेख किया है रेवाप्रसाद द्विवेदी ने जैसे नायक के गुणों का वर्णन होना चाहिए वैसे ही नायिका के गुणों का भी वर्णन किया इसके बाद उसका मनोवैज्ञानिक वर्णन भी किया है और अन्य स्त्री पात्रों में उर्मिला तथा कौशल्या का भी उल्लेख किया है। इसके बाद पुरूष पात्रों का वर्णन किया है जिसके अन्तर्गत रामलक्ष्मण, जनक, चन्द्रकेतु आदि का वर्णन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय के अन्तर्ग महाकाव्य में वर्णित रस परिपाक का वर्णन किया है क्योंकि महाकवि मम्मट ने कहा है ''तद्दोषौशब्दार्थो सगुणावनलकृति पुनः क्वावि अर्थात महाकाव्य में रस युक्त शब्द व अर्थ है तो उसमें चाहे गुण हो या ना हों। अलंकार हो या ना हो वह काव्य कहलायेगा क्योकि ''वाक्य रसात्मक काव्य'' रस युक्त वाक्य ही काव्य है। अर्थात ने काव्य की आत्मा रस है। 'सीताचरितम्' काव्य में यद्यपि अनेक रसों का समावेश नहीं है तथापि जो रस, विशेषतः प्रयुक्त हुए है, उनमें

करूण, वात्सल्य और वीर प्रमुख है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि इस काव्य में सीता के उत्तर चरित्र का वर्णन किया है अर्थात लंका से आने के बाद की कथा का वर्णन किया गया है। इस महाकाव्य में सीता को कहीं भी हर्ष और विषाद का अनुभव नही हुआ वह पूरे काव्य में एक समान ही रही है। अथार्त जो वनवास से लेकर समाधि तक मूलरूप से ही रही है। उनकी ही दृष्टि से देखा जाए तो शान्तरस का ही नाम आता है। अन्यकरूण, वात्सल्य आदि तो उसके अंगरूप में ही परिपुष्ट होते हैं। रस के अतिरिक्त इस काव्य में ध्वनि का भी वर्णन किया गया है।

पंचम अध्याय के अन्तर्गत महाकाव्य के शिल्प विमर्श में महाकवि ने सर्वप्रथम अलंकार का विवेचन किया है अलंकरोति इति अलंकार अर्थात जो अलंकृत करता है या जो शोभित करता है वह अलंकार है यद्यपि काव्य की आत्मा रस को कहा गया है यदि काव्य में रस न हो तो अलंकार काव्य की शोभा नही बढाते। काव्य में सर्वप्रथम रस आना चाहिए अलंकार चाहे हो या ना हो यदि है तो ये केवल काव्य की शोभा को बढाते है आत्मा तो रस ही है।

इसमें सीता चरितम् महाकाव्य में शब्दालंकार व अर्थालंकार दोनों का ही चित्रण किया है। शब्दालंकार के यमक का उपयोग किया है अर्थालंकार के अन्तर्गत उपमा, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, अतिश्योक्ति दीपक दृष्टान्त, निदर्शना, पर्यायोक्त, विषम, व्यतिरेक, अलंकार का वर्णन किया है। अलंकार के बाद सीता चरितम् में छन्दों का प्रयोग किया है। छन्दों में द्विवेदी जी ने वंशस्थ, द्रुतलिम्बित, रथोद्धता, प्रहर्षिणी, बसन्ततिलका, मालिनी, शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता, पृथ्वी, पुष्पिताग्रा सुन्दरी, उपजाति आदि छन्दों का प्रयोग किया है। काव्य की पद्यात्मक विधा की रचना पूर्णतया छन्दोबद्ध श्लोंकों में की जाती है। अतः इस विधा में छन्दों का महत्व अधिक है,

इसलिए रेवाप्रसाद द्विवेदी जी को शायद यही छन्द अतिशय प्रिय थे जिनका उल्लेख उन्होंने इसमें किया है। छन्द के बाद कवि ने गुणों का विवेचन किया है। महाकाव्य के लक्षण देते हुए आचार्यों ने गुणो का पृथक विवेचन तो नहीं किया तथापित अंग के साथ अंगो की सत्ता स्वतः ग्राह्य हो जाती है। अतः उसकी विशेष आवश्यकता भी नहीं है। जिस प्रकार शोर्य आदि सत्य अर्थात् अन्तःकरण के ही धर्म हैं, स्थूल शरीर के नहीं, उसकी प्रकार माधुर्यादि भी रस के ही धर्म है, वर्णों के नहीं किन्तु समुचित वर्णों के द्वारा ही वे व्यंजित होते हैं। द्विवेदी जी ने अपने महाकाव्य में माधुर्य, ओज प्रसाद आदि गुणों का प्रयोग किया है। गुणों के बाद महाकवि ने महाकाव्य में वैदर्भी, पांचाली और गौड़ी रीति का प्रयोग किया है।

षष्ट अध्याय में कवि की भाष शैली की विशेषताओं का वर्णन किया गया है। क्योंकि अपने वक्तव्य को सुन्दर तथा प्रभावशाली बनाने के लिए रचना में जिस कौशल का विनियोग किया जाता है उसे शैली कहते हें। वस्तुतः शैली कवि या लेखक का शीलगत धर्म है जो उसकी अभिव्यक्ति की प्रत्येक विधा में संस्कार रूप से विद्यमान रहती है। इस महाकाव्य में संस्कृत भाषा अपने समस्त सौन्दर्य से अलंकृत होकर अवतीर्ण हुई है। महाकवि की भाषा शैली पर महाकवि बाणभट की शैली का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है क्योंकि बाणभट ही अपनी लम्बी लम्बी समास युक्त स्पना के लिए संस्कृत साहित्य के जगत में प्रसिद्व हैं। उसी प्रकार द्विवेदी जी ने अपने काव्य में अधिकतर लम्बे लम्बे समासों का प्रयोग किया है। महाकवि की भाषा सरल व भोजपूर्ण है पाठक के मन को आकर्षित करने वाली है। पठन पाठन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि सरलता को महाकवि ने

कालिदास से लिया है और पदलालित्थ महाकवि बाणभट से लिया है। महाकवि ने अपनी शैली में नवीन शब्दों का भी प्रयोग किया है।

अन्तिम निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि महाकाव्य काव्यशास्त्रीय दृष्टि से एक महत्वपूर्ण महाकाव्य है। साथ ही यह महाकाव्य के लक्षणें से भी युक्त है। सीता केवल पतिव्रता पत्नी का ही आदर्श नहीं है अपितु एक महान नारी है जो लोक कल्याण के लिए अपने समस्त सुखों के साथ अपना जीवन भी त्यागने को तैयार है सीता को प्रतीक प्रतीक रूप में गृहित कर महाकवि ने नारी जाति की अस्मिता को स्थापित करने का अत्युत्तम उपक्रम किया है। नारीवादी चेतना को लेकर लिखे गये महाकाव्यों में यह अप्रतिम महाकाव्य है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि महाकवि के महाकाव्य में चित्रित सीता का चरित्र संस्कृत वाड्मय में अतिमहत्वपूर्ण है और सीता को प्रतीत रूप में ग्रहित कर महाकवि ने नारी जाति की अस्मिता को स्थापित करने का अत्युत्तम उपक्रम किया है।

सन्दर्भग्रन्थ सूची

सन्दर्भ एवं सहायक ग्रन्थ सूची

क्र. सं.	ग्रन्थ	लेखक / सम्पादक	प्रकाशक
1.	अनर्घराघव	मुरारि सं.रामचन्द्र मिश्र	चौखम्बा संस्कृत विद्या भवन, वाराणसी–1 प्रथम संस्करण, सन् 1960
2.	अभिषेक नाटक	भास सं. रामचन्द्र मिश्र	चौखम्बा संस्कृत विद्या भवन, वाराणसी–1 प्रथम संस्करण, सन् 1962
3.	अभिज्ञान शाकुन्तलम्	महाकवि कालिदास प्रणीत, व्याख्याकार– डॉ. विश्वनाथ शर्मा	आनन्द मित्तल, आदर्श प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर–3 द्वितीय संस्करण
4.	अर्वाचीनसंस्कृतम्	प्रधानसम्पादक – डॉ. रमाकान्त शुक्ल सम्पादक – डॉ. अभिनव शुक्ल	देववाणी परिषद्, दिल्ली, 6 वाणी–विहार, नई दिल्ली, 110051
5.	अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्	लेखक – डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी सम्पादक व व्याख्याकार डॉ. रमाकान्त पाण्डेय	जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, वर्ष – 2009
6.	आधुनिक संस्कृत काव्य परम्परा	केशवराव मुसलगाँवकर	चौखम्बा भवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, सन् 2004
7.	आधुनिक संस्कृत साहित्य के नये भावबोध	म[ुजुलता शर्मा	संस्कृत ग्रन्थागार, दिल्ली, सन् 2010

8.	आधुनिक संस्कृत साहित्य	हीरालाल शुक्ल	रचना प्रकाशन, 45, ए, खुल्दाबाद, इलाहाबाद–1, प्रथम संस्करण, सन् 1971
9.	आधुनिक संस्कृत साहित्य	दयानन्द भार्गव	राजस्थानी ग्रन्थागार, सोजती गेट के बाहर, जोधपुर, प्रथम संस्करण, सन् 1988
10.	आश्चर्यचूडामणि	शक्तिभद्र टी. शŠर	श्री बालमनोरमा प्रेस, मयलोपाड़ा, मद्रास, द्वितीय संस्करण, सन् 1933
11.	आधुनिक साहित्य संदर्भ सूची ग्रन्थ	सम्पादक – राधावल्लभ त्रिपाठी	राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, सन् 2012
12.	आर्य संस्कृति के आधार ग्रन्थ	बलदेव उपाध्याय	नन्दकिशोर एण्ड सन्स, चौक, वाराणसी–1, प्रथम संस्करण, सन् 1962
13.	उत्तरसीताचरितम्	रचयिता – श्री रेवाप्रसाद द्विवेदी प्रकाशक – श्री सदाशिवकुमार द्विवेदी	कालिदास संस्थान, 28, महामनापुरी, वाराणसी–221005, छठा परिष्कृत संस्करण, सन् 1990
14.	उदीयमान भारतीय समाज और शिक्षा	ओंकार सिंह त्यागी एवं डॉ. बिजेन्द्र सिंह	अरिहंत शिक्षा प्रकाशन 50, प्रताप नगर – II टोंक फाटक, जयपुर
15.	उत्तररामचरित और आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्य	डॉ. कृष्ण गोपाल मिश्र	57, नाटाणी भवन, मिश्रा राजाजी का रास्ता, चाँदपोल बाजार, जयपुर – 302003 सन् – 2000

16.	काव्यालंकारकारिका (अभिनव काव्यशास्त्र)	रेवाप्रसाद द्विवेदी	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, सन् 1977
17.	काव्यादर्श	रचयिता – आचार्य दण्डी सं. आचार्य रामचन्द्र मिश्र	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
18.	कालिदास का भारत	भगवतशरण उपाध्याय	भारतीय ज्ञानपीठ 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड़, नई दिल्ली – 110003 चौथा संस्करण, सन् 2010
19.	जानकीहरणम्	कुमारदास सं. ब्रजमोहन व्यास	मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, सन् – 1966
20.	जानकीजीवनम्	अभिराजराजेन्द्र मिश्र	वैजयन्त प्रकाशन 8, वाघम्बरी मार्ग, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, सन् – 1988
21.	जानकीपरिणय	मुकुन्द	सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी, सन् 1986
22.	जानकीजीवनम्	दशरथ द्विवेदी	राधापब्लिकेशन, दरियागंज, नई दिल्ली, सन् – 2004
23.	ध्वन्यालोक (लोचन सहित)	आनन्दवर्धन सं. पट्टाभिराम शास्त्री	संशो.–चौखम्बा संस्कृत सीरिज, काशी, सन् 1940

24.	नारी चेतना के आयाम	डॉ. अलका प्रकाश	लोकभारती पुस्तक–विक्रेता तथा वितरक, 15–ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद–1 प्रथम संस्करण, सन् 2007
25.	नई सहस्राब्दी का महिला सशक्तिकरण अवधारणा, चिन्तन एवम् सरोकार	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	ओमेगा पब्लिकेशन्स 4378/4बी, जी4, जे.एम.डी. हाउस, मुरारी लाल स्ट्रीट, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली–110002 प्रथम संस्करण – सन् 2010
26.	प्रतिमा नाटक	महाकवि भास टी.+सं. तरु. वै. गणपति शास्त्री	श्रीधर मुद्रण यन्त्रालय त्रिवेन्द्रम, सन् 1924
27.	प्रसन्न राघव	जयदेव सं. शेषराज शर्मा शास्त्री	चौखम्बा विद्या भवन चौक, बनारस, सन् 1956
28.	बाल रामायण	रामस्वरूप शास्त्री	बालसंस्कृत कार्यालय घाटकोपर, बम्बई 77 सन् 1963
29.	बीसवीं शताब्दी का संस्कृत लघुकथा–साहित्य	रुचि कुलश्रेष्ठ प्रकाशक – प्रो. वेम्पटि कुटुम्ब शास्त्री कुलपति राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान	राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, मानित विश्वविद्यालय, 56–57, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, जनकपुरी, नई दिल्ली –110058, प्रथम संस्करण, सन् 2008

30.	भारतीय नारी : दशा और दिशा	आशारानी व्होरा	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नई दिल्ली – 110002 प्रथम संस्करण, सन् 1983
31.	भारत में समाज	मोतीलाल गुप्ता	राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, ए–26/2, विद्यालय मार्ग, तिलक नगर, जयपुर – 302004 छठा संशोधित संस्करण सन् 1990
32.	भट्टिकाव्यम्	भट्टि जयम›लकृत टीकया जयम›लया समेतम् बापटोपाÐन शŠरभट्टसूनुना गोविन्द शास्त्रिणा संशोधितम्	निर्णयसागरमुद्रणयन्त्रालय बम्बई, शकाब्दा : 1809 ख्रिस्ताब्दा : 1887
33.	भवभूति और उनका उत्तररामचरित	डॉ. रामाश्रय शर्मा	परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली, सन् 2007
34.	भारतीय साहित्य का इतिहास	विन्ट्रनित्स	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, सन् 2008
35.	भारतीय शिक्षा का इतिहास	बी.पी. जौहरी पी.डी. पाठक	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा सन् 1981
36.	मनृस्मृति	व्याख्याकार – डॉ. श्रीकृष्ण ओझा	राजवर्धन जैन राज प्रकाशन मन्दिर, चौड़ा रास्ता, जयपुर–3

37.	महिला सशक्तिकरण	निधि भारद्वाज	सागर पब्लिशर्स, 837, सोमानी बिल्डिंग, प्रथम मंजिल, एस.बी.बी.जे. बैंक की गली, चौड़ा रास्ता, जयपुर–302003 संस्करण सन् 2012
38.	महिला और मानवाधिकार	एम.ए. अंसारी	ज्योति प्रकाशन 187 बरकत नगर, टोंक, फाटक, जयपुर–302015 प्रथम संस्करण – सन् 2000
39.	महिला जागृति और सशक्तिकरण	सम्पादक– प्रो. (डॉ.) सवलिया बिहारी वर्मा, डॉ. एम.एल. सोनी एवं डॉ. संजीव गुप्ता	प्रेमचन्द बाकलीवाल आविष्कार पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, 807, व्यास बिल्डिंग, चौड़ा रास्ता, जयपुर–302003 प्रथम संस्करण – सन् 2005
40.	मानवाधिकार एवं महिलाएँ	नारायण नाटाणी	सबलाइम पब्लिकेशन्स जयपुर, प्रथम संस्करण सन् 2005
41.	रघुवंश एक विश्लेषण	देवीदत्त शर्मा	देववाणी परिषद्, दिल्ली, प्रथम संस्करण, सन् 1981
42.	रघुवंश महाकाव्यम् (स×जीवनी टीका सहित)	कालिदास सं. साहित्याचार्य हरगोविन्द मिश्र (हिन्दी व्याख्याकार)	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, षष्ठम् संस्करण, सन् 1994

43.	रामकाव्यों में नारी	डॉ. श्रीमती विद्या	प्रकाशन संस्थान 4615/21 दयानन्द मार्ग, दरियागञ्ज, नई दिल्ली, 110002 प्रथम संस्करण, सन् 1985
44.	रामचरितमानस	तुलसीदास	गीता प्रेस, गोरखपुर
45.	रामायण के कुछ आदर्शपात्र	जयदयाल गोयन्दका	गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् 2045
46.	रेवाप्रसाद द्विवेदी व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. बेला मलिक	पब्लिकेशन स्कीम, हेड ऑफिस 57, मिश्र राजाजी का रास्ता, जयुपर, शोरूमः सी–12,13 प्रथम मंजिल, गंगा मंदिर संसारचन्द्र रोड़, जयुपर–302001 प्रथम संस्करण सन्– 2003
47.	रामकथा के पात्र	डॉ. भ. ह. राजूरकर	प्रकाशक ग्रन्थम्, रामबाग, कानपुर – 12, प्रथम संस्करण, सन् 1972
48.	रामकथा	फादर कामिल बुल्के	हिन्दी परिषद्, हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, पंचम संस्करण, सन् 1997
49.	वैदेहीविवाहम्	के. एस. कृष्णामूर्ति शास्त्री	के.एस. कृष्णस्वामी शास्त्री, नं. 15, VI मेन रोड़, राजा अन्नामलाईपुरम्, मद्रास, सन् 1959

50.	वनेनिर्वासितासीता	डॉ. विशुद्धानन्द मिश्र	आचार्य श्रीमती निर्मला मिश्रा, पुरस्कार समिति, वेदमन्दिर कूचा पांडा बदायूँ उ.प्र. सन् 2004
51.	वैदेही चरितम् महाकाव्य	कामेश्वर सिंह	कामेश्वर सिंह, संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा, सन् 1985
52.	वैदिक साहित्य, संस्कृति और समाजदर्शन (डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार के व्यक्तित्व और कृतित्व का प्रामाणिक विवेचन)	सम्पादक डॉ. विष्णुदत्त राकेश	वाणी प्रकाशन, 4697/5, 21 ए दरियागंज, नई दिल्ली –110002
53.	वैदिक संस्कृति के आसुरी प्रभाव	आचार्य चतुरसेन	सन्मार्ग प्रकाशन, 16 यू.बी. बैंग्लो रोड़, दिल्ली–110007 प्रथम संस्करण, सन् 1984
54.	विभिन्न युगों में सीता का चरित्र चित्रण	डॉ. सुधा गुप्ता	प्रज्ञा प्रकाशन, 1531, वज़ीरनगर, कोटला–मुबारिकपुर, नई दिल्ली – 110003 प्रथम संस्करण – सन् 1978
55.	शैक्षिक प्रबन्ध एवं विद्यालय संगठन	ओंकार सिंह त्यागी डॉ. कृष्णचन्द्र गौड़ डॉ. बिजेन्द्र सिंह	अरिहंत शिक्षा प्रशासन 50, प्रताप नगर – II टोंक फाटक, जयपुर

56.	शिक्षा सिद्धान्त	रमन बिहारी लाल	रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ सन् 1977
57.	शिक्षा के दार्शनिक और समाजशास्त्रीय सिद्धान्त	रमन बिहारी लाल	रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ सन् 1979–80
58.	शिक्षा के सिद्धान्त, आधार और कला	डॉ. सरयू प्रसाद चौबे एवं लक्ष्मीनारायण अग्रवाल	हॉस्पिटल रोड़, आगरा–3
59.	श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण	वाल्मीकि सं. साहित्याचार्य पाण्डेय पं. रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम' (अनुवादक)	गीताप्रेस, गोरखपुर तृतीय संस्करण
60.	श्रीजानकीचरितामृतम्	रामस्नेही दास	श्रीमती कमला अम्बा, गुप्तारघाट, फैजाबाद, प्रथम संस्करण सन् – 1957
61.	श्रीरामचरिताब्धि रत्नम्	नित्यानन्द शास्त्री	प्रकाशन आचार्य, नित्यानंद स्मृति संस्कृत शिक्षा एवं शोध संस्थानम् गिरिजा निकेतनम् ए–136, लेक गार्डन, कोलकाता (प.ब.) 700045
62.	श्रीरामकीर्ति महाकाव्यम्	सत्यव्रत शास्त्री	ईस्टर्न बुक लिंकर्स नई दिल्ली

63.	सीताचरित महाकाव्य	कृष्णमूर्ति शास्त्री	श्रीरामकृष्ण प्रेस, मदुराई, सन् 1953
64.	संस्कृत और संस्कृति	डॉ. राजेन्द्र मिश्र	मोतीलाल बनारसी दास, बंग्लो रोड़, जवाहर नगर, दिल्ली–6 तृतीय संस्करण, सन् 1962
65.	संस्कृत महाकाव्य की परम्परा	डॉ. केशवराव मुसलगाँवकर	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, सन् – 1991
66.	संस्कृत काव्यशास्त्र और काव्य परम्परा	राधावल्लभ त्रिपाठी	प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, सन् 1981
67.	संस्कृत साहित्य का इतिहास और उसका विकास क्रम, द्वितीय भाग	कन्हैयालाल पोíार	जवाहरलाल जैन, मंत्री रामविलास पोíार, स्मारक ग्रन्थमाला समिति, नवलगढ़, प्रथम संस्करण सन् – 1938
68.	संस्कृत काव्यशास्त्र का आलोचनात्मक इतिहास (300 ई. पू. से 2005 ई. तक)	रेवाप्रसाद द्विवेदी	कालिदास संस्थान, वाराणसी, सन् 2007
69.	सीतारामीयम्	डॉ. शंकरदेव अवतरे	साहित्य सहकार, 29/26 – बी, गली नं. 11, विश्वास नगर, दिल्ली – 110032 सन् 2005

70.	संस्कृत महाकाव्यों में नारी के अधिकार एवं कर्त्तव्य	डॉ. मंजु शर्मा	ईस्टर्न बुक लिंकर्स, 5825, न्यू चन्द्रावल, जवाहर नगर, दिल्ली–110007 प्रथम संस्करण, सन् 2003
71.	सीतास्वयंवर महाकाव्य	के.एस. श्रीनागराजन्	वी.वी. सुब्बैया एण्ड सन्स, बैंगलोर, सन् 1949
72.	सीतारावणसंवादझरी	श्रीराम शास्त्री व सीताराम शास्त्री	परिमल पब्लिकेशन, शक्तिनगर, दिल्ली, प्रथम संस्करण, सन् 1995
73.	सीतारावणसंवादझरी	कालूरी हनुमन्त राव	हैदराबाद, सन् 1987
74.	संस्कृत का समाजशास्त्र (स्वतन्त्रता – संग्राम और संस्कृत –साहित्य)	हीरालाल शुक्ल	भारतीय विद्या प्रकाशन, 1. UB, जवाहर नगर, बैंग्लो रोड़, दिल्ली–110007 2. पोस्ट बोक्स 1108, कचौड़ी गली, वाराणसी–221001 प्रथम संस्करण, सन् 1989
75.	संस्कृत–वा3मय का वृहद् इतिहास, सप्तम–खण्ड आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास	प्रधान सम्पादक – पद्मभूषण आचार्य श्री बलदेव उपाध्याय सम्पादक डॉ. जगन्नाथ पाठक	अरुण कुमार ढौंडियाल निदेशक – उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, प्रथम संस्करण–विक्रम संवत् 2056 (2000 ई.)
76.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	आचार्य बलदेव उपाध्याय	शारदा निकेतन, 5बी, कस्तूरबा नगर, सिगरा, वाराणसी–221010 दशम

			संस्करण, सन् 2001
77.	संस्कृत के महाकाव्य पद्धिचक में व्युत्पत्ति	डॉ. श्याम के. मुसलगाँवकर	ईस्टर्न बुक लिंकर्स, 5825, न्यू चन्द्रावल, जवाहर नगर, दिल्ली–110007 प्रथम संस्करण, सन् 1996
78.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	रामदेव साहू	श्याम प्रकाशन, फिल्म कॉलोनी, चौड़ा रास्ता, जयपुर–302003 प्रथम संस्करण, सन् 2001
79.	संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास	डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी	विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी – 221001 प्रथम संस्करण–2001 ई. द्वितीय संशोधित, परिवर्धित संस्करण–2007 ई. तृतीय संस्करण – 2010 ई.
80.	स्वातन्«योत्तर युग में संस्कृत राम–काव्य	डॉ. श्रीमती प्रतिभा शास्त्री	परिमल पब्लिकेशन्स, 27/28 शक्ति नगर, दिल्ली–110007 प्रथम संस्करण, सन् 1993
81.	संस्कृत महाकाव्यों का समालोचनात्मक अध्ययन	डॉ. रहस बिहारी द्विवेदी	न्यू भारतीय बुक कॉर्पोरेशन, दिल्ली
82.	संस्कृत शास्त्रों का इतिहास	डॉ. बलदेव उपाध्याय	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
83.	संस्कृत साहित्य का	वाचस्पति गैरोला	चौखम्बा संस्कृत संस्थान,

	इतिहास		वाराणसी
84.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	ए.बी.कीथ	अनुवादक मंगलदेव शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी
85.	संस्कृत का अर्वाचीन समीक्षात्मक काव्यशास्त्र	महामहोपाध्याय प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र	विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी – 221001 प्रथम संस्करण – 2010 ई.
शब्द कोश :–			
1.	अंग्रेजी–हिन्दी शब्द कोश	फादर कामिल बुल्के	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
2.	संस्कृत–हिन्दी कोश	वामन शिवराम आप्टे	प्रकाशन न्यू भारतीय बुक कॉर्पोरेशन दिल्ली, अष्टम् संस्करण, सन् 2004
3.	संस्कृत–शब्दार्थ कौस्तुभ (संस्कृत – हिन्दी – कोश)	पं. तारिणीश झा	चौखम्बा, संस्कृत भवन, वाराणसी
पत्र पत्रिकाएँ :–			
1.	कालिदास	कालिदास संस्कृत अकादमी	मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, उज्जैन की शोध पत्रिका
2.	स्वर म›ला	राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर	
3.	समकालीन भारतीय साहित्य	साहित्य अकादमी दिल्ली	

4.	दूर्वापत्रिका संस्कृत त्रैमासिकी द्वितीयोन्मेषः	कालिदास अकादमी उज्जैन (म.प्र.)	
5.	वैचारिकी जनवरी–फरवरी	सम्पादक–डॉ. बाबूलाल शर्मा भारतीय विद्या मंदिर, 12/1 नेली सेन गुप्ता सरणी, कलकत्ता 700087	
6.	दृक् नवम अS̆	काव्यशास्त्रीय मानदण्ड एवं संस्कृत–नवलेखन राजेन्द्र मिश्र कृत	दृग् भारती, इलाहाबाद, 1/32 एम.आई.जी आवास विकास कॉलोनी योजना–3 इलाहाबाद (यू.पी.) 211019
7.	28–32 पंचशील शोध समीक्षा	स्त्री विमर्श के अवधारणात्मक आयाम कल्पना पंत कृत	
8.	101–104 पंचशील शोध समीक्षा	भारत में स्त्री चेतनाः परिवर्त्तन की दिशाएँ डॉ. सुभाषचन्द्र धायल	
9.	सुसंस्कृतम्	वाल्मीकि रामायण में प्रतिबिम्बित सीता का तेजस्वी व्यक्तित्व, वर्ष 3 अS̆ 1	

रिसर्च पेपर

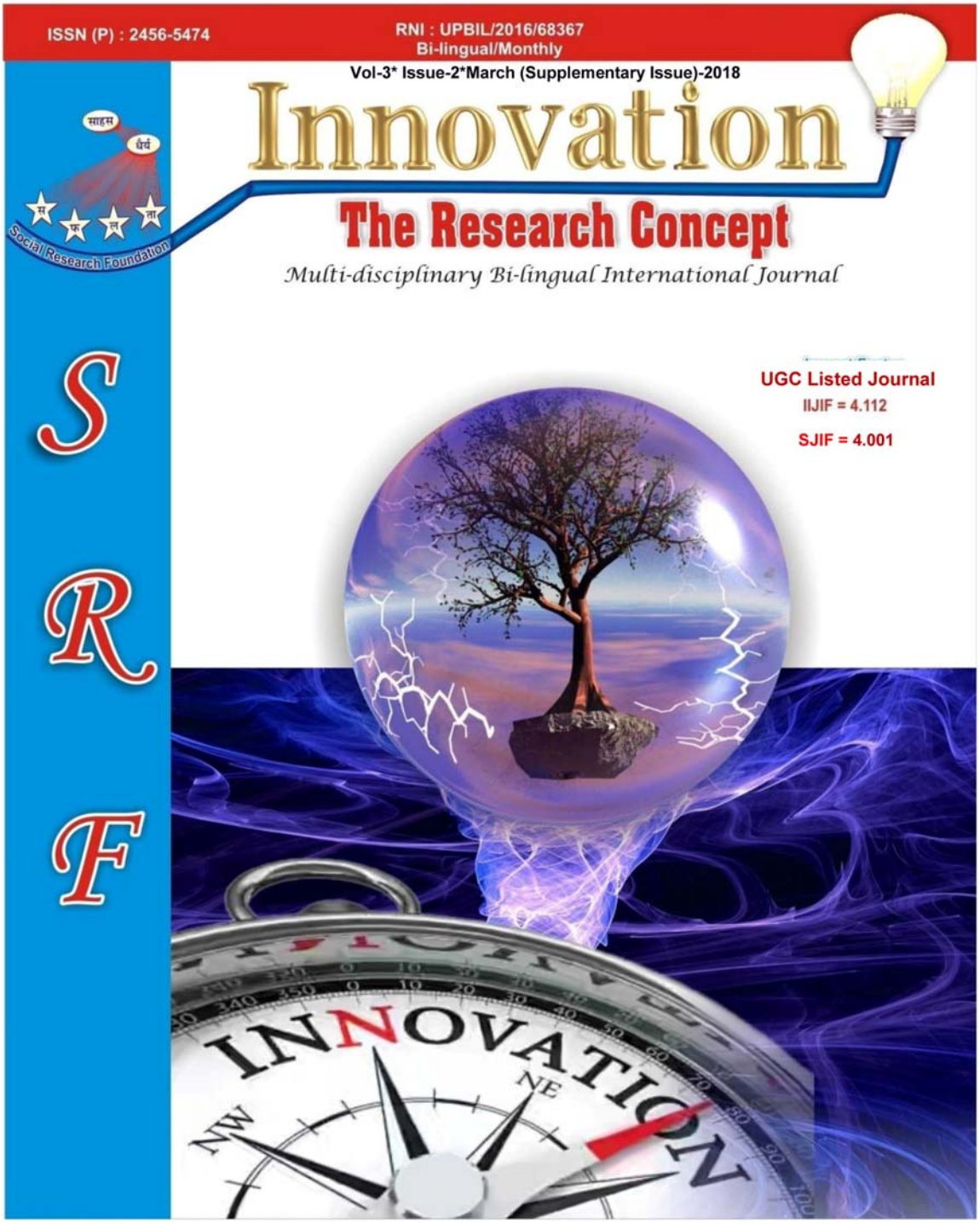
ISSN (P) : 2456-5474
RNI : UPBIL/2016/68367
Bi-lingual/Monthly
Vol-3* Issue-2*March (Supplementary Issue)-2018
Innovation
The Research Concept
Multi-disciplinary Bi-lingual International Journal
UGC Listed Journal
IIJIF = 4.112
SJIF = 4.001
Social Research Foundation
INNOVATION

ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-3* Issue-2*March (Supplementary Issue)-2018
Innovation The Research Concept

उत्तरसीताचरितम् में नारी जागरण

जयनन्दिनी सिंह
शोध छात्रा,
संस्कृत विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय,
झालावाड़, राजस्थान

अल्का बागला
व्याख्याता,
संस्कृत विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय,
झालावाड़, राजस्थान

सारांश

महामहोपाध्याय श्री रेवा प्रसाद द्विवेदी सनातन जी ने अपने महाकाव्य उत्तरसीताचरितम् में सीता को आधुनिक नारी के समान अपना निर्णय लेने वाली बताया है जो अपने परिवार का व अपना भला–बुरा स्वंय सोचने वाली है ना कि कोरी मान्यताओं को सहन करने वाली है। सीता का यह आचरण पितृ सत्तात्मक परिवार को चुनौती देने वाला है। सीता का यह स्वरूप पुरूष का मूल अनुगमन करने में पति राम को विचार शून्य जानकर सीता ने अपना पत्नी धर्म निभाते हुऐ स्वंय वनगमन का निर्णय लेकर यह सिद्ध किया है कि वह आत्मबल, आत्मक्षमता व स्वंय सही गलत का निर्णय लेने में समर्थ है जो कि वर्तमान समय में महिला सशक्तिकरण का मुख्य बिन्दु है।

मुख्य शब्द : समुपस्थापित, समप्रिया, त्वरित, प्रगल्भते, स्नहेदाह, क्षमालते, विशल्यतां, स्वी, परिहीयते, स्पृहा, दूमनुमन्यतान्तमाम्, शैत्य विप्रकर्षमिह, वामविधायिनि, समीहते, वगाहा, वगाहितुं।

प्रस्तावना

बीसवीं शताब्दी में यह गौरव का विषय है कि रेवाप्रसाद द्विवेदी प्रणीत उत्तरसीताचरित तथा अभिराजराजेन्द्र मिश्र सृजित जानकी जीवन उभय महाकाव्यों में सीता के चरित (व्यक्तित्व) तथा सीता निर्वासन को महाकवियों ने स्वचिन्तन एवं स्वनवीन मौलिक उद्भावनाओं से संजोकर उत्तमोत्तम प्रकल्प के रूप में समुपस्थापित किया है। महाकवि का तृतीय सर्ग नारी चेतना नारीवाद, नारी विमर्श, नारी अस्मिता तथा महिला सशक्तिकरण से आप्यायित है। महाकवि ने सीता को सशक्त नारी के रूप में अभिव्यक्त किया है जो अपने निर्णय लेने में स्वंय समर्थ है। सीता राज्यसभा में राम की विक्रिया को देखकर स्वं ही वनगमन को तैयार होती हैं। वनगमन के लिए कवि ने बड़े ही सटीक तर्क समप्रिया (सीता) द्वारा अभिव्यक्त कराए हैं जो कि बलात् ही समस्त नारी जगत् को प्रेरित करने वाली है। कवि ने राम को निर्णय लेने में असमर्थ बताकर सीता को त्वरित निर्णय लेने वाली बताया है। महाकवि ने उद्धरण इस प्रकार हैं :–

अस्तु में भवदभीप्सिता स्थितिर्हन्त कुत्रचिदपि क्षमातले।
विश्वमस्तु तु विशल्यां गतं काममद्य सह कीर्तिभिस्तव।।

प्रस्तुत श्लोक में सीता करती हैं कि (मैं जहाँ आप चाहें, रह सकती हूँ केवल विश्वमानव को निष्कंटक रहना चाहिए, आपकी कीर्ति के साथ) सीता के कहने का भाव यह है कि यदि आपको मन में यह शंका है कि मैं अकेली गर्भिणी स्त्री कहां रहूँगी तो आप इसकी चिन्ता ना करें क्योंकि यदि आपकी कीर्ति और यश में मैं कांटा हूँ तो फिर मुझे आपके यश की स्पृहा स्वरूपा कहीं भी रहना स्वीकार है क्योंकि आपका सम्मान ही मेरा सबसे बड़ा आश्रय है। इसी बात का समर्थन सीता अनेक तर्कों को उपस्थित कर देती है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुतअर्वाचीन संस्कृत साहित्य में काव्य, नाट्य, कथा एवं समीक्षाग्रन्थों को अपनी पारखी दृष्टि व नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा, अर्थगार्म्भीय व पदलालित्य से उत्कृष्टता के शिखर पर पहुंचाने वाले महामहोपाध्याय रेवाप्रसाद द्विवेदी के महाकाव्य को सुधी पाठकों के समक्ष रखना ही मेरा मुख्य उद्देश्य हैं।

उत्तरसीताचरित

आर्य! यावदवधि प्रजाहिते दीक्षितोऽसि सुखामात्मनस्त्यजेः।
स्नेहदाहसहितो ही दीपको विश्वमुज्जवलयिंतु प्रगल्भते।।[1]

(आर्य, जब तक आप प्रजाहित की दीक्षा लिऐ हुऐ हैं, आपको अपना सुख छोड़ना होगा। दीपक स्नेहदाह लेकर ही विश्व को प्रकाशित कर पाता है।) तात्पर्य है कि राजा राम के लिए प्रजा का हित व कल्याण प्रथम कर्तव्य है भले ही उसके लिए उन्हें दीपक के समान जलना पड़े या कष्ट सहना पड़े।

आर्य! यद्यपि मनस्विनीजनः स्त्रीति विश्वचनीयतास्पदम्।
लोकनायकविवेकदीपकस्तत्कृते न परिहीयते परम्।।[2]

(आर्य, मनस्विनी नारियों को कलेव स्वी होने के कारण संसार शंका की दृष्टि से देखता है और उनकी बदनामी करता है, किन्तु लोकनायक के विवके का दीपक उनके लिए नहीं बुझता।)

प्रस्तुत श्लोक में महाकवि ने यह विडम्बना प्रकट की है कि मात्र कोमला स्त्री होने के कारण सदियों से आज तक संसार नारी को ही शंका की दृष्टि से देखकर उसकी बदनामी करता है जबकि मात्र स्त्री होना, कोमलता को धारण करना ही उसका स्वभाव नहीं है क्योंकि जो सत् व असत् की परीक्षा में निपुण पुरूष है वह अपने विवके से उनकी शुद्धि का मापन कर ही लेते हैं अर्थात् राम की दृष्टि में तो सीता पवित्र ही है।

सीता राम को लोकापवाद से बचाने के लिए वनगमन करने का स्वंय निर्णय लेती है। सीता को यह आचरण भारतीय नारी को भारतीय संस्कृति के सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित करने वाला है। महाकवि का कथन है–

प्राणतोपि यशसि स्पृहा गुरूः सुर्यवंशिषु हि या प्रशस्यते।
तां विभाज्य कलुषा स्नुषाऽ वो याति दूरमनुमन्यतान्तमाम्।[3]

सुर्यवंशियों में जो प्राणों से भी अधिक यश की स्पृहा प्रशंसा पूर्वक प्रसिद्ध है। उसे देख आपकी यह कलंकित पुत्रवधु दूर जा रही है, अनुमति दें।

यामि मातर इतः स्वतस्ततों यामि,
यामि विपिनं न मे व्यथा।
कीर्तिकायमवितुं सुमानुषा मृत्युतोपि
न ही जातु बिभ्यति।।[1]

इसलिए माताओं में यहां से जाती हूँ स्वंय ही जाती हूँ, और मुझे इसकी कोई व्यथा नहीं। अपनी कीर्ति की रक्षा के लिए अच्छे दम्पत्ति और सत्पुरूष मृत्यु से भी कभी नहीं डरते।

याम्हं विपिनमेकला गुरूं त्वं पुरवे पररिक्ष सर्वतः
त्यक्तधारमपि वारि शैत्यतो विप्रकर्षमिह नैव लिप्सते।।[2]

आज जल में जा रही हूँ और अकेली जा रही हूँ। तुम अपने अग्रज की रक्षा पूर्ववत् करते रहना सब प्रकार से दा ही जल धारा को छोड़ सकता है, शैत्य को नही।।

इन श्लोकों के माध्यम से महाकवि ने सीता की दृढ़ इच्छा शक्ति को व्यक्त किया है जो किसी भी परिस्थिति में अड़िग रहने वाली है।

इन श्लोकों ने अपने स्वामी राम व उसके वंश की गरिमा को ही उच्च स्थान देते हुऐ तथा दोषरहित होने पा भी स्वंय को कलंकित कहकर, राम को अपने वनगमन की अनुमति में सहायात पहुँचाती है। अतः सीता ही राम को निर्णय लेने में सशक्त बनाती है एवं माताओं से भी अनुमति लेती है। यहाँ कवि ने सीता को आधुनिक नारी के समान अपना निर्णय लेने वाली बताया है जो अपने परिवार का व अपना भला बुरा स्वंय सोचने वाली है नाकि कोरी मान्यताओं को सहन करने वाली है। सीता का यह आचरण पितृ सत्तात्मक परिवार को चुनौती देने वाला हैं। सीता का यह स्वरूप पुरूष का मूल अनुगमन करने में नहीं बल्कि निर्भिक होकर अपने मन्तव्य को व्यक्त करने की प्रेरणा देता है। पति राम को विचार शून्य जानकर सीता ने अपना पत्नी धर्म निभाते हऐ स्वंय वनगमन का निर्णय लेकर यह सिद्ध किया है कि वह आत्मबल, आत्मक्षमता व स्वंय सही गलत का निर्णय लेने में समर्थ है जो कि वर्तमान समय में महिला सशक्तिकरण का मुख्य बिन्दु है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त समस्त उद्धरणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि महाकवि ने उत्तरसीताचरित में सीता को नारी जागरण की नायिका (नेत्री) के रूप में प्रतिष्ठित किया है। प्रत्येक नारी को सीता की तरह जीवन जीने की प्रेरणा दी है। धन्य है सीता की प्रतिभक्ति, धन्य है प्रजाहित और पति की कीर्ति के लिय आत्मत्याग। निश्चित ही द्विवेदी जी की सीता अधिक सजीव और उदात्तचरितान्विता है। जैसा कि पुस्तक के आशिषः में डॉ. चिन्तामणि ने लिखा है–

भवतां सीता कालिदा सीतातोऽधिकं
सप्राणा समधिकमुदात्ता च।

सीता के द्वारा महाकवि ने नारी के अस्तित्व, सत्ता, अस्मिता, स्वाभिमान को प्रतिष्ठित किया है। महाकवि ने सीता के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन को निरूपित कर उसे नवीन क्रांति लाने वाली असाधारण महिला के रूप में चित्रित किया है। यदि आज की नारी सीता के इस रूप का अनुकरण करे तो उसे कभी भी किसी परिस्थिति में अभागेपन का रोना, भाग्य को कोसना नहीं पडेगा। वह अपनी क्षमताओं को पहचानकर उसका ही उपयोग करने में सफल होगी। महाकवि की सीता नारीवादी चेतना से युक्त महिला सशक्तिकरण की अन्वर्थ सांस को चरितार्थ करने वाली एक सशक्त तेजस्विनी दृढ़ शक्तिशाली, आत्मबल से युक्त, निर्भि साहर्मा, स्वविवेक से निर्णय लेने वाली नारी है। सीता के माध्यम से कवि ने आधुनिक नारी को स्फूर्ति प्रदान की है।

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची

1. *रामचरितमानस तुलसीदास गीता प्रेस, गोरखपुर*
2. *रामायण के कुछ आदर्श पात्र जयदयाल गोयन्दका गीता प्रेस, गोरखपुर*
3. *जानकी जीवनम् राजन्द्र मिश्र वैजन्त प्रकाशन, इलाहाबाद*
4. *भारतीया साहित्य का विन्ट्रनिट्ज मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली सन् 2008*
5. *रामकथा के पात्र डॉ भ. ह. राजूरकर प्रकाशक ग्रन्थम्, रामबाग, कानपुर–12,*

पाद टिप्पणी

1. *उत्तरसीताचरित–3/10*
2. *तत्रैव–3/14*
3. *तत्रैव–3/25*
4. *उत्तरसीताचरित – 1/32–35*

ISSN (P) : 2456-5474
RNI : UPBIL/2016/68367
Bi-lingual/Monthly
Vol. 3* Issue 3* April 2018

Innovation

The Research Concept

Multi-disciplinary Bi-lingual International Journal

Impact Factor
SJIF = 3.42
IIJIF = 4.112
UGC Listed Journal

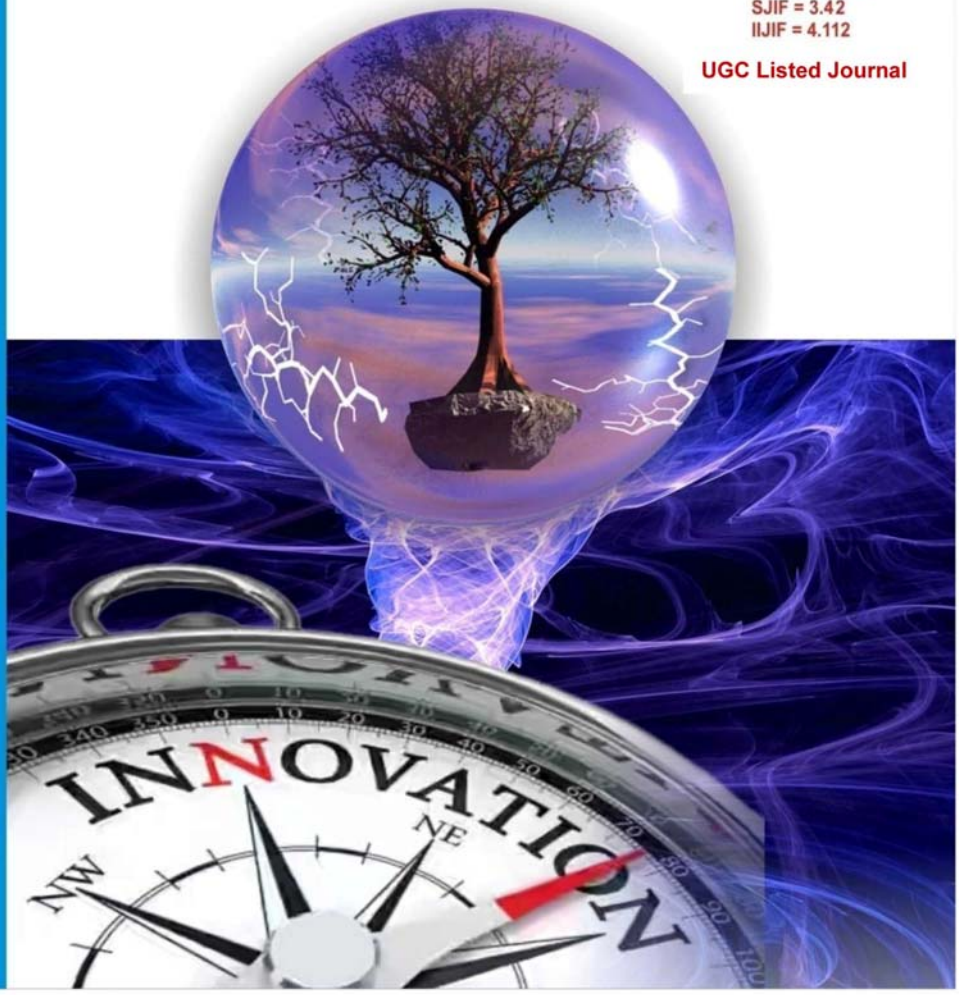

ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-3* Issue-3*April- 2018
Innovation The Research Concept

महाकाव्य का मुख्य उद्देश्य

जयनन्दिनी सिंह
शोध छात्रा,
संस्कृत विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय,
झालावाड़, राजस्थान

अल्का बागला
व्याख्याता,
संस्कृत विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय,
झालावाड़, राजस्थान

सारांश

प्रस्तुत महाकाव्य में सीता केवल करणा की पात्र नहीं हैं वह पतिव्रता पत्नी का आदर्श मात्र ही नहीं है बल्कि वह एक महान् स्त्री है जो मावनता के कल्याण के लिए अपने समस्त सुखों के साथ–2 अपना जीवन भी त्यागने के लिए तैयार हैं। भगवान राम के राज्य सिंहासन के आधे भाग पर विराजमान होकर भी जनापवाद के कारण स्वयं ही कौशल्या आदि माताओं और राम को अभिवादन करके लक्ष्मण द्वारा चालित रथ से अयोध्या नगरी को छोड़कर वन के लिए प्रस्धान करती हैं।

सीता कोई साधारण स्त्री न होकर महामुनियों के रक्त से समुद्भूत दिव्य ज्योति हैं। महायोगी विदेहराज में प्राप्त विनय और माता पृथ्वी से प्राप्त रत्नरूपदेह की साकार प्रतीक है। योग विजा के कारण समस्त प्राकृतिक कष्टों को सहने में समर्थ है। ग्रहस्थ आश्रम में रहते हुए वधुभाव से सबको यथोचित आदर सम्मान देते हुए अपनी इच्छा से पति के साथ वन जाकर पतिव्रत धर्म का पालन करती हैं तथा पति द्वारा जनहित के लिए प्राप्त वनवास को सहर्ष स्वीकार कर लेती हैं।

मुख्य शब्द : सहस्त्राब्दियाँ, शालती, प्रश्नव्यूहों, चिन्तनशरों, नारीविमर्श, भद्रासन, परूषवाणी, निश्चेष्ट, मूर्च्छित, भवदभीप्सिता, विशल्यतां, स्पृहागुरूः, मनुमन्यतान्तमाम्, विक्रिया, आप्यायित, यार्मिमातर, सुमानुषा, याम्यहं, शैत्यतो, लधुकलेवर, फलश्रति, राष्ट्रदेवी, संक्रमणकाल, नवोन्मेषशालिनी, स्वमत्यानुसारेण, उन्मीलित, श्लाधनीय, उकेरा

प्रस्तावना

विदेहराजजनकनन्दिनी, मिथिलानरेश की पुत्री, आयोध्यानरेश की पुत्रवधू, राजाराम की राजमहिषी, राम की अनन्यस्वरूपा, अनिन्द्य–सुन्दरी पुथ्वी से जायमान सीता समस्त आर्याव्रत (भारतभूमी) की उत्कृष्ट स्त्रीरत्न हैं। लेकिन उनकी उत्पत्ति तथा निर्वासन दोनों ही भारतीय ऐतिह्य में अद्यतन अन्वेषण का विषय बना हुआ है और यह अनुसन्धान अधुनातन जारी हैं।

पुरा इतिहास चतुर्विंशति साहस्त्री (वाल्मीकि–रामायण) रामचरितमानस, रामानन्दसागर, निर्मित टेलीविजन पर प्रसारित धारावाहिक रामायण के माध्यम से भारत के हर प्रान्त तथा हर धर्मावम्बियों, बालक, युवा, वृद्ध (नर–नरी) सभी के अर्न्तमन में बसी सीता एक ऐसा चरित्र है, जिसकी उत्पत्ति, विवाह, चौदहवर्ष वनवास, रावण द्वारा अपहरण, पौल्सत्यगृह में निवास, अग्निपरीक्षा, राम द्वारा निर्वासन, धरती में समाहित होना जिसके भाग्य के विपरिणाम में हर्ष एवं दुःख का विचित्र समन्वय है। किन्तु पतिपरायण सीता का राम द्वारा निर्वासन इतना क्रूर एवं हृदयविदारक है कि सहस्त्राब्दियाँ व्यतीत हो जाने पर भी उनके निर्वासन (परित्याग) का प्रश्न अर्न्तमन को सदा व्यथित करता है। एतद् विषयक जिज्ञासाएँ हमें अधुनातन शूल बनकर शलती हैं, शर बनकर बेधती हैं, हमें गैर संस्कृतिवादियों के प्रश्नव्यूहों में ला खड़ा करती हैं, नारीवादी चिन्तकों के चिन्तनशरों से उद्वेलित करती हैं, हर बुद्धिजीवी के मस्तिष्क में प्रश्नचिन्ह उबरता है, दार्शनिकों, मनीषियों द्वारा नाना प्रकार के तर्क उपस्थित किये जाते हैं। सीता निर्वासन पर उठे नाना विप्रतिपत्तियों का समाधान प्राच्यमहाकवियों ने अपनी नवीन उद्भावनाओं के द्वारा अपने महाकाव्यों और नाटकों में नहीं किया है। बल्कि पौरस्त्य महाकवियों ने सीता के चरित्र को आरेखित करने में वाल्मीक के ही पदन्यास का अनुकरण किया है

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में काव्य, नाट्य, कथा एवं समीक्षाग्रन्थों को अपनी पारखी दृष्टि व नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा, अर्थगार्म्भीय व पदलालित्य से उत्कृष्टता के शिखर पर पहुंचाने वाले महामहोपाध्याय रेवाप्रसाद द्विवेदी के महाकाव्य को सुधी पाठकों के समक्ष रखना ही मेरा मुख्य उद्देश्य हैं।

यथाः–रघुवंश, जानकीहरण, रावणवध, अनर्धराघव, उदात्तराघव, कुन्दमाला इत्यादि नाटकों एवं महाकाव्यों में किसी भी महाकवि ने सीता निर्वासन के विषय में सर्वथा नवीन मौलिक उद्भावनाएं नहीं की है ना ही अपनी कल्पना शक्ति से कोई परिवर्तन करने का उपक्रम किया है। इसका कारण जहॉ तक मेरी समझ में आता है शायद प्राच्यकवियों की दृष्टि नारीवादी चिन्तन के प्रति उदासीन रही है। कवियों को तद्युगीन सामाजिक चेतना के अनुरूप नायिका का अबला, भीरू, करूणक्रन्दन करने वाली, सर्वसाहा वाला रूप ही अतिशय प्रिय रहा है। यही कारण है कि महाकवियों ने वैदिक कालीन तेजस्वी नारियों (गार्गी, अपाला, मैत्रेयी) के चरित्र को उपजीव्य बनाकर ग्रन्थों का प्रणयन नहीं किया है। जबकि अधुनिक युग नारीविमर्श (नारीवादी चिन्तन का युग) का काल रहा है। अतः इस युग में मैत्रेयी के चरित्र को लेकर 'श्री कृष्णा लाल जी' ने 'मैत्रेयी नाटक' 'ब्रह्म देव शास्त्री जी' ने 'सावित्री' 'राजेन्द्रमिश्र' ने 'विद्योतमा' आदि नाटकों का प्रणयन किया हैं। 'राम जी उपाध्याय' ने अपने संस्कृत नाटक' सीता अभ्युदयम्' में सीता को एक उच्च शिक्षिता, तेजस्विनी नारी के रूप में प्रस्तृत किया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्राच्य कवियों की दृष्टि नारी के प्रति सापेक्ष नहीं वरन् निर्पेक्ष रही हैं।

लेकिन संस्कृत साहित्य के इतिहास में यह बहुत गौरव का विषय है कि 19वीं, 20वीं शताब्दी में 'रेवाप्रसाद द्विवेदी' द्वारा प्रणीत 'उत्तरसीताचरीत' तथा 'अभिराजराजेन्द्र मिश्र' द्वारा रचित 'जानकी जीवनम्' महाकाव्य में दोनों महाकवियों ने सीता निर्वासन के प्रंसग को अपने महाकाव्यों में सर्वथा नवीन रूप में प्रस्तृत किया हैं। अपनी दिव्य कवित्व प्रतिभा से नवीन परिकल्पनाएं की है तथा उसके चारित्रिक सौष्ठव को नव्यता, दिव्यता प्रदान की है। यद्यपि महाकाव्य की कथावस्तु किसी सज्जन पुरूष अथवा महापुरूष पर आधारित होती है और उसके माध्यम से ही मानव जीवन की समग्रता का चित्रण इसमें किया जाता हैं। महाभारत के नामकरण के विषय में यह मत प्रकट किया गया है कि ''भरत वाच्यम महाभारतम मुच्यते'' अर्थात् भरतों की महत्ता के कारण ही इसके महाभारत कहा जाता है। इससे स्पष्ट है कि महाकाव्य में किसी महान् पुरूष की कथा को ही आधार बनाया जाता है। भामह ने 'सदाश्रय' और विश्वनाथ ने 'सज्जनाश्रय' कहकर इस मत की पुष्टि की है। सीता चरितम् महाकाव्य की कथावस्तु महापुरूष पर आधारित न होकर महान् स्त्री के चरित्र से सम्बंधित हैं। सीता यह केवल करूणा का पात्र नहीं है। वह पतिव्रता पत्नी का आदर्श मात्र ही नहीं है बल्कि वह एक महान् स्त्री है जो मानवता के कल्याण के लिए अपने समस्त सुखों के साथ–साथ अपना जीवन भी त्यागने के लिए तैयार है। भगवान राम के राज्य सिंहासन के आधे भाग पर विराजमान होकर भी जनापवाद के कारण स्वंय ही कौषल्या आदि माताओं और राम को अभिवादन करके लक्ष्मण द्वारा चलित रथ से अयोध्या नगरी को छोड़कर वन के लिए प्रस्थान करती हैं।

सीता कोई साधारण स्त्री न होकर महामुनियों के रक्त से समुद्भूत दिव्य ज्योति है महायोगी विदेहराज से प्राप्त विनय और माता पृथ्वी से प्राप्त रत्नरूपदेह की साकार प्रतीक हैं। योग विद्या के कारण समस्त प्राकृतिककष्टों को सहने में समर्थ हैं। ग्रहस्थ आश्रम में रहते हुए वधुभाव से सबको यथोचित आदर सम्मान देते हुए अपनी इच्छा से पति के साथ वन जाकर पतिव्रत धर्म का पालन करती हैं तथा पति द्वारा जनहित के लिए प्राप्त वनवास को सहर्ष स्वीकार कर लेती हैं।

वन में रहते हुए पुत्र जन्म के बाद ऋर्षि के आश्रम में मुनि पत्नीयों, गायों, या हिरनियों आदि की पीड़ा को स्वंय दूर करती हैं। मुनियों का वेश धारण उन्हीं के समान आचरण करती हैं और भूमि पर सोती हैं। स्वंय ही चटाई, वस्त्र आदि बनाती हैं तथा अपने पुत्रों को भी स्वंय सेवा का व्रत सिखाती हैं। दोनों बालकों को शिक्षार्थ कवि वाल्मीकि को सौंपकर सीता सन्यासी वेश धारण कर तप करती हैं और आश्रम में राम के आने पर भी परांड़मुख रहती हैं क्योंकि वशीजनों में त्यक्त वस्तु के प्रति फिर से आसक्ति पैदा नहीं होती। महाकवि द्वारा आयोजित सभा में उपस्थित राम, जनक, माताओं और समस्त साकेत निवासियों द्वारा चलने का अनुरोध किये गये जाने पर भी अपने जीवन का कोई कृत्य शेष न देखकर, उत्तम समय व स्थान जानकर सीता शांत चित्त से स्थिर, सुखद, सम तथा भद्रासन से शोभित पद्मासन पुनः लगा लेती हैं। सीता के व्यक्तिगत चित्रण से उनकी सदाश्रयता प्रकट होती है, जो महाकाव्य की कथावस्तु के लिए परम् आवश्यक हैं।

द्विवेदी जी ने अपने महाकाव्य की भूमिका में ऐसा किञ्चित् भी उल्लेख नहीं किया है कि वे सीता निर्वासन की घटना से व्यथित रहें हैं अथवा इस घटना पर उनका विश्वास नहीं है अथवा उत्तरकाण्ड वाल्मीकि की रचना नहीं हैं। उन्होनें इस सन्दर्भ में अपना मन्तव्य नहीं दिया लेकिन महाकाव्य के इतिवृत्त में सीता निर्वासन के प्रसड़ में सीता के चरित्र को आज के नारीवादी युग के अनुरूप सृजित किया हैं

द्वितीय सर्ग में गुप्तचर द्वारा लोकापवाद की घटना के श्रवण गोचर होने पर राम की विक्रिया को देखकर सीता मूर्च्छित हो जाती हैं। इस स्थिति में राम महागज द्वारा उठाये गये कमलिनी की भांति सीता को उठाते है और राजभवन में आकर माताओं को बुलाने का आदेश देते हैं। माताओं के उपस्थित होने पर राम वज्रतुल्य कठोरवाणी को सभा के समक्ष कहते हैं। उस परूषवाणी को सुनकर माताएं निश्चेष्ट हो जाती है और प्रजा मूक हो जाती है। ऐसी स्थिति में सीता स्वंय धैर्यपूर्वक कहना प्रारम्भ करती हैः–

अस्तु में भवदभीप्सिता स्थितिर्हन्त कुत्रचिदपि क्षमातले।
विश्वमस्तु तु विशल्यतां गतं काममद्य सह कीर्तिभिस्तव।।[1]

सीता स्वंय ही वनगमन की अनुमति मांगती हैः–

प्राणतोपि यशसि स्पृहागुरूः सूर्यवंशिषु हि या प्रशस्यते।
तां विभाव्य कलूषा स्नुषाडद्या वो याति दूर
मनुमन्यतान्तमाम्।।[2]

राम की विक्रिया को देखकर शायद सीता का अर्न्तमन अदम्य साहस और धैर्य से आप्यायित हो जाता है और वे स्वंय वन में जाने का निर्णय ले लेती है। सीता का यह आचरण भारतीय नारी को भारतीय संस्कृति के शिखर पर प्रतिष्ठिता करने वाला हैः–

यार्मि मातर इतः स्वतस्ततो यामि, यामि विपिनं न मे व्यथा
कीर्तिकायमवितुं सुमानुषा मृत्युतोपि न हि जातु बिभ्यति ।।[3]

सीता लक्ष्मण से उनको अर्थात् स्वंय को वन में छोड़ने के लिए आदेशित करती हैं यथाः–

याम्यहं विपिनमेकला गुरूं त्वं पुरेव परिरक्ष सर्वतः।
त्यक्तधारमपि वारि शैत्यतो विप्रकर्षमिह नैव लिप्सते।।[4]

इन उद्धरणों से हम देखते हैं कि सीता आधुनिक नारी के अनुरूप स्वविवेक से निर्णय लेने में दक्ष है। अपवाद के भय से राम द्वारा गर्भवती का परित्याग किया जाना ही इस महाकाव्य की मूल कथा है। इस परित्याग के कारण समग्र कथावस्तु अग्रसर होती है और सीता का मुनि वेश धारण करके वन में निवास करते हुए उत्थान से परे की स्थिति होकर योगी बन जाना आदि का चित्रण किया गया है। अतः कवि ने अत्यन्त दक्षता पूर्वक अपने लधु कलेवर में समग्र कथा को समाहित करने वाली सीता के चरित्र की उत्कृष्टता को प्रकट करने वाले नाम का चयन किया है।

एतद् विपरीत अभिराजराजेन्द्र मिश्र ने अपने महाकाव्य 'जानकी जीवनम्' की भूमिका में ही स्पष्ट रूप से अपना मन्तव्य देते हुए लिखा है कि– मैं यह नहीं कहता की सचमुच यह घटना घटी थी अथवा नहीं परन्तु इतना अवश्य मानता हूँ कि रामकथा के आदिस्रष्टा प्राचेतस वाल्मीकि ने न तो सीतानिर्वासन को स्वीकार किया था और ना ही लिखा था महार्षिवाल्मीकि प्रणीत रामायण अयोध्या वर्णन से प्रारम्भ होता है तथा युद्धकाण्ड की फलश्रुति से समाप्त हो जाता है। सारे विवादास्पद प्रसंग (सीता निर्वासन शम्बूकवध आदि) रामकथा की परिधि से बाहर है।[5]

राजेन्द्र मिश्र ने अपने महाकाव्य में सीता निर्वासन की घटना को बहूत सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है 18 वें सर्ग6 में सीता निर्वासन के समस्त घटनाक्रम को लोकमत द्वारा उत्तमोत्तम प्रकल्प के रूप में प्रस्तुत किया हैं।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक महाकवियों ने सीता निर्वासन के प्रकरण को सर्वथा नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। और उनके चरित्र को भारतीय संस्कृति में सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित करने का सराहनीय प्रयास किया हैं।

उन्होंने भारतीय नारी को भारतीय संस्कृति के सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित किया है। सीता ने राक्षस संस्कृति के बीच रहकर भी राक्षस संस्कृति को ग्रहण नहीं किया बल्कि आर्य संस्कृति की रक्षा की है। माता कौशल्या का कथन है कि– 'तू राम और और लक्ष्मण से भी बड़ी है।[13] संस्कृत साहित्य के किसी भी मूर्धन्य विद्वानों ने सीता को राष्ट्रदेवी[14] राष्ट्र का गौरव15 तथा रामायण नामक मन्दिर की देव प्रतिमा16 नहीं कहा है। द्विपेदी जी का यह कथन राष्ट्र की महिमा को बढ़ाने वाला हैं।

इस प्रकर हम देखते हैं कि द्विवेदी जी ने बदलती संस्कृतियों के संक्रमणकाल में सीता चरित्र के माध्यम से समन्वय स्थापित करने का स्तुत्य प्रयास किया है। इस प्रकार महाकावि ने अपनी नित्य नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से सीता के चारित्रिक सौष्ठव को स्वमत्यानुसारेण उन्मीलित करने का श्लाघनीय कार्य किया है। महामहोपाध्याय द्विवेदी जी ने सीतानिर्वासन के सन्दर्भ में सीता के चरित्र को अधुनिक युगीन चेतना के अनुसार उकेरा है। इसके पहले किसी महाकावि ने इस प्रसंग में सीता के चरित्र का रेखाड़न नहीं किया हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *रामचरितमानस तुलसीदास गीता प्रेस, गोरखपुर*
2. *रामायण के कुछ आदर्श पात्र जयदयाल गोयन्दका गीता प्रेस, गोरखपुर*
3. *जानकी जीवनम् राजन्द्र मिश्र वैजन्त प्रकाशन, इलाहाबाद*
4. *भारतीया साहित्य का विन्ट्रनिट्ज मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली सन् 2008*
5. *रामकथा के पात्र डॉ भ. ह. राजूरकर प्रकाशक ग्रन्थम्, रामबाग, कानपुर–12,*

उत्तरसीताचरित महाकाव्य का काव्यशास्त्रीय अध्ययन

Poetry Study of Uttarsitacharit Epic

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
की
पीएच. डी. (संस्कृत) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–सारांश

कला संकाय
संस्कृत

शोधार्थी
जयनन्दिनी सिंह

शोध-निर्देशक
डॉ. अल्का बागला
संस्कृत विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड़ (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)
वर्ष 2018

प्रमाण–पत्र

मुझे यह प्रमाणित करते हुए प्रसन्नता है। कि शोध प्रबन्ध उत्तरसीताचरितम् महाकाव्य का काव्यशास्त्रीय अध्ययन शोधार्थी जयनन्दनी सिंह ने कोटा विश्वविद्यालय कोटा के पीएच.डी. के नियमों के अनुसार निम्नलिखित आवश्यकताओं के साथ पूर्ण किया है–

1. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के नियमानुसार कोर्स वर्क किया हैं।
2. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के 200 दिन के आवासीय आवश्यकता नियम को पूरा किया है।
3. शोधार्थी ने नियमित रूप से अपना कार्य प्रगति प्रतिवेदन दिया है।
4. शोधार्थी ने विभाग एवं संस्था प्रधान के समक्ष अपना शोध कार्य प्रस्तुत किया है।
5. शोधार्थी का बताई गई शोध पत्रिका में शोध पत्र का प्रकाशन हुआ है।

मैं इस शोध प्रबन्ध को कोटा विश्वविद्यालय कोटा के पीएच.डी. (संस्कृत विभाग) की उपाधि हेतु मूल्यांकनार्थ प्रस्तुत करने की अनुमति देती हूँ।

दिनांक.....

डॉ. अल्का बांगला

(शोध पर्यवेक्षक)

शोध सार

क्रान्तदर्शी कवि की नवनवोन्मेष शालिनी प्रज्ञा स्वर्णावरण से आवृत मिथ्या के भीतर अन्तः सत्ता का साक्षात्कार करती है तो कवि सन्वेदना अजस्त्र काव्यधारा के रूप में प्रवाहित हो उठती है चिन्तन एवं काव्य के सहज प्रस्फुटन की इस प्रक्रिया में कवि मानव हृदय से एकाकार होकर उसकी संवेदना को महसूस करता है तथा उसके हृदय में अन्तास्थल तक जाकर उसकी पीड़ाओं को समाधान की दिशा देकर जीवन को आनन्दरूपी उत्सव से परिपूर्ण कर देता है और निश्चित रूप से काव्य का यही लक्ष्य है। कवि की हृदयानुभूति की परस्पर पूर्णता प्रदान करने वाले शब्दार्थ रूप में सम्यक अभिव्यक्ति पूरे समाज को, उसकी पीड़ा को उसके मन को विचारों को संवेदनाओं को भावों को प्रतिबिम्बित करती है एवं उनको समाधान की एक दिशा प्रदान करती हे।

कवित्व प्रतिभा के धनी महामहोपाध्याय श्री रेखा प्रसाद द्विवेदी सनातन द्वारा 19वीं शताब्दी में प्रणीत उत्तरसीता चरितं 10 सर्गो का महाकाव्य है। सीता का चरित्र सहस्त्राब्दियों से देश, काल तथा परिस्थित्यानुसार साहित्य सर्जकों को नित नूतन उद्भावनाओं द्वारा उन्मीलित करता रहा है। साहित्य मर्मज्ञों सामाजिकों मनीषियों तथा दर्शनिकों द्वारा अधीत व अध्यापित किया जाता रहा है। आज सतत् बढ़ रही अपसंस्कृति के परिणाम स्वरूप हमारा समाज भोगवाद तथा भौतिकवाद के दलदल में धंसता जा रहा है। ऐसे संक्रमित होते हुए काल में पौनः पुण्येन अनुशीलन से ही समाज एवं राष्ट्र का कल्याण होगा और हमारी सभ्यता, संस्कृति, संस्कार, परम्परा, धर्म, दर्शन और जीवन मूल्य संरक्षित हो सकेगें। चरित्र पर ही भारतीय राष्ट्र की नींव टिकी हुई है। इसी दृष्टि को लेकर महाकवि ने इस ग्रन्थ का प्रणायन किया है।

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में काव्य, नाट्य, कथा एवं समीक्षाग्रन्थों को अपनी पारखी दृष्टि व नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा अर्थगार्म्भीय व पदलालित्य से उत्कृष्टता के शिखर पर पहुंचाने वाले महामहोपाध्याय रेवाप्रसाद द्विवेदी के महाकाव्य को सुधी पाठकों के समक्ष रखना ही मेरा मुख्य उद्देश्य है। इसी दृष्टि को लेकर प्रस्तुत महाकाव्य का काव्यशास्त्रीय अध्ययन विषय के प्रथम अध्याय में महाकवि के

व्यक्तित्व एवं कर्तव्य का निरूपण किया है। द्वितीय अध्याय में काव्यशास्त्रीय परम्परा में अधतन उपलब्ध काव्यशास्त्रों का कालानुक्रमिक विवरण प्रस्तुत किया है। तृतीय अध्याय में काव्यशास्त्रीय परम्परा के अनुसार उत्तरसीताचरितम् महाकाव्य में पात्रों का विवेचन किया है। जिसके अन्तर्गत महाकाव्यों की पात्रसूची नायिका का काव्यशास्त्रीय स्वरूप उत्तरसीताचरित की नायिका का विवरण फिर नायक का काव्यशास्त्रीय स्वरूप व अन्य पात्रों का परिचय। चतुर्थ अध्याय में रस को निरूपित किया है महाकावि ने मुख्य रस के रूप में वीर व करूण रस को स्वीकारा है तथा अन्यरसों का वर्णन सामान्य है। पंचम अध्याय में महाकाव्य का शिल्प विमर्श कया गया है जिसके अन्तर्गत शीतिविवेचन, गुणविवेचन अलंकार विवेचन, छन्द विवेचन और इन सबका उत्तरसीताचरित में प्रयोग का वर्णन किया है। षष्ठ अध्याय में महाकवि की भाषाशैली के अर्न्तगत सुक्ति प्रयोग, मुहावरा प्रयोग लोकोक्ति प्रयोग नूतन शब्दों का प्रयोग तथा अन्य कवियों का द्विवेदी जी की भाषाशैली पर प्रभाव का वर्णन किया है। सप्तम अध्याय में समसामयिक दृष्टि से मूल्यांकन तथा उपसंहार के सप्तम अध्याय का समापन किया हे। इस महाकाव्य में निबद्ध विचार दर्शमिक है, अभिव्यक्ति कवित्वमयी भाषातेजोमयी तथा मथानक प्रवाहमय है।

घोषणा– पत्र (शोधार्थी)

मै घोषणा करती हूँ कि शोध–प्रबन्ध ''उत्तरसीताचरितम् महाकाव्य का काव्यशास्त्रिय अध्ययन'' मेरे द्वारा प्रस्तुत किया गया है वह पीएच.डी. (संस्कृत) की उपाधि के लिए आवश्यक है मैने यह शोध कार्य डॉ. अल्का बागला व्याख्याता संस्कृत विभाग राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड़ के निदेशन में पूर्ण किया है। और जहां दूसरे शब्दों का प्रयोग किया गया है। वह मेरे द्वारा विभिन्न मान्य स्त्रोतो से लिये गये हैं। अपरिहार्य स्थिति में ली गई ऐसी हर सामग्री का यथास्थान सन्दर्भ एवं आभार व्यक्त कर दिया गया है जो कार्य इस शोध प्रबन्ध में प्रस्तुत किया गया है।

मै इसकी घोषणा करती हूँ कि मैने विश्वविद्यालय के सभी अकादमिक नियमों का निष्ठा एवं ईमानदारीसे पालन किया है तथा किसी तथ्य को गलत नहीं प्रस्तुत किया है। मै समझती हूँ कि किसी भी नियम के उल्लघन पर मेरे खिलाफ प्रशासनिक कार्यवाही की जा सकती है और मेरे खिलाफ जुर्माना भी लगाया जा सकता है। यदि मैने किसी स्त्रोत से बिना उसका नाम दर्शाये या जिस स्त्रोत से अनुमति की आवश्यकता हो, बिना अनुमति के लिया हो।

दिनांक :

जयनन्दिनी सिंह
(शोधार्थी)

प्रमाणित किया जाता है कि शोधार्थी जयनन्दिनी सिंह द्वारा उपर्युक्त सभी सूचनायें मेरी जानकारी के अनुसार सही है।

दिनांकः

डॉ. अल्का बांगला
(शोध पर्यवेक्षक)

प्राक्कथन

सनातन कवि रेवाप्रसाद द्विवेदी जी प्रणीत यह 10 सर्गों का महाकाव्य है। क्रमशः 1968, 75, 90 में इसका प्रकाशन कालिदास संस्थान वाराणसी से हुआ है। महाकवि का नाम नवीन प्रतिमानों के संस्थापक आचार्यों की परम्परा में अग्रणी है। एतदर्थ प्रकृत महाकाव्य भी नवप्रस्थापना परम्परा का प्रमुख महाकाव्य है। रामायण उत्तरकाण्ड की कथा पर आधृत यह महाकाव्य सर्वथा मौलिक तथा नवीन आयामों को उन्मीलित करने वाला है। यह महाकाव्य आधुनिक नारीवादी युग के अनुरूप प्रणीत किया गया है। सीता का चरित्र सहस्त्रब्धियों से देश, काल तथा परिस्थित्यानसार साहित्य मर्मज्ञों को प्रोत्साहित करता रहा है। तो यह प्रश्न उठना तो स्वाभाविक ही है कि – सीता चरित्र ही क्यों ? यद्यपि इस विषय पर साहित्य सार्जकों द्वारा अत्यधिक लेखन कार्य किया गया हैं फिर राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय में अध्ययन के दौरान डॉ. वत्सला के उद्‌बोधन से अभिप्रेरणा पाकर मेरे अर्न्तमन में रचना धर्मिता की दिशा में कुछ सिसृक्षा जागृत हुई जिसके परिणामस्वरूप मैंने यह शोध प्रबन्ध लिखने का निर्णय लिया तदर्थ मैं उनके लिए हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। मेरे लेखन कार्य में मेरी सुयोग्या विद्यानुरागिणी, तेजस्विनी शोध निर्देशिका डॉ. अल्का बागला ने स्वप्न को साकार रूप प्रदान किया।

शोध प्रबन्ध को परीक्षार्थ प्रस्तुत करने के इस शुभ लग्न में सभी उपदेशक व सहायक लोगों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। इसी क्रम में हाड़ौती के प्रतिष्ठित कवि तथा साहित्यकार पूर्व विभागाध्यक्ष के.बी. भारतीय जी के प्रति भी हार्दिक श्रृद्धा निवेदित करती हूं तदोपरान्त शोध का प्रारूप व विषय विस्तार को सुनिश्चित करने में डॉ. अशोक कँवर शेखावत जी ने मेरी जो सहायता की है उसके लिए उन्हें हृदय से धन्यवाद देती हूँ। इसके बाद विभाग के सभी गुरूजनों के प्रति भी अपना आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने परोक्ष व अपरोक्ष रूप से अपने सुझावों से मुझे लाभान्वित किया है।

आधुनिक युग में अभिनव प्रस्थापनों की प्रतिष्ठापना में मूर्धाभिषिक्त एवं मार्तण्ड की तरह प्रकाशमान सम्प्रति काशी में विराजमान श्री रेवाप्रसाद द्विवेदी के

व्यक्तित्व व कृतिव्य को उनके सुयोग्य व विद्वान पुत्र श्री सदाशिव द्विवेदी जी ने जो का.ही.वि.वि. वाराणसी, कला संकाय, संस्कृत विभाग के पद पर शोभायमान हैं, उन्होंने शोध प्रबन्ध से सम्बन्धि सामग्रियों को रजिस्टर्ड डाक से मेरे पास प्रेषित किया उनके लिए भी मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ।

मैं अपने परमपूजनीय, आदरणीय, श्रद्धेय एवं सम्माननीय माता श्रीमती फूलकुमारी व पिता श्री ब्रम्हासिंह एवं श्वश्रु श्रीमती रामा देवी व श्वसुर श्री हरिबक्श सिंह के प्रति शिरसा प्रस्तुत हूँ। जिनके स्नेह व सतत् प्रोत्साहन के बिना यह कार्य कदापि पूर्ण न हो पाता अपने परिवार के स्नेहिल भाई–बहिन की सहायता भी मेरे लिए अमूल्य रही है मैं विशेष आदर के साथ अपने पति श्री गुलाब सिंह की सोत्साह सहायता का स्मरण करती हूँ। साथ ही अपने भाई विश्व प्रताप, सूर्य प्रताप, भावना, रत्नाकर, रोहिणी, त्रीवेणी के प्रति भी अपना धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ।

शोधकार्य में पुस्तकालय की अनिवार्यता अपरिहार्य है, इसलिए पुस्तकालय की पुस्तकों के प्रति भी चिरऋणी हूँ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के टंकणकर्ता श्री रईस बेग जी को धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने अल्पावधि में विशुद्ध टंकण कार्य सम्पन्न किया।

अन्त में विद्वानों के समक्ष शोध प्रबन्ध को प्रस्तुत करती हुई नम्र निवेदन है कि पर्याप्त प्रयास करने पर भी यदि अज्ञान, अनवधान, अनभिज्ञता के कारण इसमें कुछ त्रुटियाँ रह गई हो तो उन्हें क्षमा की दृष्टि से देखने का अनुगृह करेंगे। यह शोध प्रबन्ध काव्यशास्त्रीय परम्परा में शोधार्थियों के लिए सहायक व मार्क प्रशस्त करने वाला होगा।

डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	शीर्षक	पृ.सं.
1. प्रथम अध्याय	**कवि रेवाप्रसाद द्विवेदी का जीवन वृत एवं कर्तृत्व**	**1–15**
	1. जन्मस्थान एवं जन्मकाल।	
	2. विद्यार्थी जीवन एवं शैक्षणिक उपलब्धियां	
	3. पद, कार्यभार एवं कार्यक्षेत्र।	
	4. पुरस्कार एवं विविध सम्मान प्राप्ति।	
	5. काव्यकार का सम्पूर्ण रचना संसार।	
2. द्वितीय अध्याय	**द्विवेदी जी के महाकाव्य का वस्तुविश्लेषण**	**16–122**
	1. प्राचीन महाकाव्य परम्परा	
	2. आधुनिक महाकाव्य परम्परा	
	3. सीताचरित पर आश्रित महकाव्यों का वर्णन	
	4. सीताचरित का महाकाव्यत्व	
	5. उत्तरसीताचरितं महाकाव्य का सर्गानुसार कथावस्तुविधान	
	6. महाकाव्य का मूलमंत्र।	
	7. जीवन दर्शन एवं साम्प्रतिकी प्रासंगिकता।	
3. तृतीय अध्याय	**विवेच्य महाकाव्य का पात्र विवेचन व महाकाव्य के पास विषयक काव्यशास्त्रीय प्रतिमान**	**123–162**
	1. महाकाव्य की पात्र सूची।	
	2. नायिका का काव्यशास्त्रीय स्वरूप।	
	3. सीताचरितम् की नायिका एवं अन्य नारी पात्र।	
	4. नायक का काव्यशास्त्रीय स्वरूप।	
	5. सीताचरितम् का नायक एवं अन्य पुरुषपात्र।	

4. चतुर्थ अध्याय	**महाकाव्य का रस एवं ध्वनि विमर्श**	**163–178**
	1. रस स्वरूप विषयक काव्यशास्त्रीय अवधारणा।	
	2. ध्वनि–स्वरूप विषयक काव्यशास्त्रीय अवधारणा।	
	3. उत्तरसीताचरितम् महाकाव्य में रस योजना।	
5. पंचम अध्याय	**महाकाव्य का शिल्प विमर्श**	**179–222**
	1. अलंकार विवेचन।	
	2. छन्द विवेचन।	
	3. गुण विवेचन।	
	4. रीति विवेचन	
6. षष्ठ अध्याय	**कवि की भाषा शैली**	**223–227**
7. उपसंहार		**228–233**

संकेत सक्षेप

1. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी – का.हि.वि.वा.
2. कालीदास संस्थान वाराणसी – का.सं.वा.
3. चौखम्भा संस्कृत सीरिज वाराणसी – चौ.सं.सी.वा.